

हिन्दी भक्ति-शृङ्गार का स्वरूप

(एक आलोचनात्मक शोधपूर्ण-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० मिथिलेश कान्ति

एम० ए० एन-एस० बी डी० क्रिम्०
डिप० एम० एस० डी० साहित्यरत्न
शिक्षा-विभाग बिहार सरकार

प्रामाण्य

प० बनारसीदास चतुर्वेदी
(संस्कृत-सदस्य)

डॉ० शम्भू

डॉ० नगेन्द्र

भाष्यदा—हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक

चैतन्य प्रकाशन

कानपुर

प्रकाशक

पं० रामबुलारे बाबूपयी
ग्रन्थालय—शैतम्भ प्रकाशन
कानपुर

② शैतम्भ

प्रथम संस्करण जनवरी १९६३

मूल्य दस रुपये

समर्पण

भारतस्मृति घम्मा धीर बाबू जी
के
कर-कर्मों में

अभिमत

डाक्टर मिचिनेस नागिडकी के दिखी यक्ति गृधर का स्वल्प (प्रबन्ध) को मैंने दफर-उधर से देगा है और उसे अपने शास्त्रिय विषयों से परिपूर्ण पाया है। निस्सन्देह उन्होंने बाफर परिश्रम किया है। उनका हार्डिकीय वैज्ञानिक है और बिना किसी मद्दुल के उम्मीने ऐसी बातों का बिबनेपस किया है जिन पर लिखते हुए प्राचीनबाबा लिखते। उनके गल्प की देखकर यह बिस्वास हो जाता है कि यानोचना-बदलि पहले की मवेशा काफी प्रगति कर गई है। पी मिचिनेस कामि की की सफरता पर मैं उनका हार्डिक अभिनन्दन करता हूँ।

—बनारसीबास बतुर्बेदी

२२, मार्च ऐनेम्बू, गई बिस्ती

१४ १२ १२

दो शब्द

मैंने डॉ० मिश्रसेय कांति के ग्रन्थ का समलोचन किया है। केवलक ने वैनी दृष्टि से हिन्दी अक्षर-काम्य में निहित भ्रूंगार भाषणा का विश्लेषण किया है। उसकी विचार पद्धति स्वतंत्र है और उसमें विश्वस्य ही अपन मतस्य को प्रभावत् व्यक्त करने में काङ्क्ष का परिचय दिया है। यह विषय वास्तव में घस्पठ विवाद-ग्रस्त है और संभावना है कि विद्वानों का एक वर्ग प्रस्तुत प्रबन्ध की स्थापनाओं को स्वीकार न करे, परन्तु अनुसंवाता का प्रथमा दृष्टिकोण सर्वथा प्रभावित है और उसकी प्रति पारम-द्वैती वैज्ञानिक एवं तर्क-सम्बन्ध है।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी में डॉ० मिश्रसेय कांति के इस ग्रन्थ का प्रसार होगा।

हिन्दी विधाप

—नयेन्द्र

विश्वी विश्वविद्यालय

अभिमत

डाक्टर विबिलेण काण्टिजी के हिन्दी भवित भू गार का स्वल्प (प्रबन्ध) को मैंने इपर-उपर से देखा है और उनमें समस्त सातव्य विषयों से परिपूर्ण पाया है। निस्सन्देह उन्होंने काफी परिश्रम किया है। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है और बिना किसी सन्दोह के उन्होंने ऐसी यातों का विश्लेषण किया है जिन पर लिखते हुए प्राचीनवादा भिन्न करते। उनके ग्रन्थ को देखकर यह विश्वास हो जाता है कि सामोचना-मंडलि पहले की अपेक्षा काफी प्रगति कर गई है। श्री विबिलेण काण्टि जी की सफलता पर मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—बनारसीबास चतुर्वेदी

११, गार्स ऐवेन्यू, नई दिल्ली

१४ १२ ५२

दो शब्द

मैंने डॉ० मिचिलरा कांति के शब्द का समीक्षण किया है। मैंने एक नै पंजी हृष्टि से हिन्दी अक्षि-काव्य में तिहित श्रुंभार भावना का विस्तारण किया है। उसकी विचार पद्धति स्वयं है और उसमें विद्वय ही अपन मस्य को मयावत् व्यक्त करने में साहस का परिचय दिया है। यह विषय वास्तव में अत्यन्त विवाह-अस्त है और धनावना है कि विद्वानों का एक बयं प्रस्तुत प्रवृत्त को स्थापनाओं को स्वीकार न करे, परन्तु समुसभाता का अपना हृष्टिकोसु सर्वथा धनावित है और उसकी प्रति पाद-पेसी वैचारिक एवं लक्ष-समय है।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी में डॉ० मिचिलरा कांति के इस शब्द का आदर होगा।

हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

—अपेन्द्र

अपनी बात

घात्र से लगभग दस बय पूर हिन्दी भक्ति गृथार की प्रत्येक समस्याओं ने मुझे अपनी ओर आकृष्ट किया था। अभी से मैं इस साहित्य का अध्ययन मनन और चिंतन करता आ रहा हूँ। यह साहित्य अति विशाल और गहन है; इनकी समस्यार्थें अटल हैं। इनकी सभी समस्याओं का मैं समाधान पा गया हूँ यह कहना कठिन है। फिर भी मैं जो कुछ जान सका हूँ उसका एक प्रबंध इस प्रबंध में प्रस्तुत है। इस विषय का विस्तृत अध्ययन मेरे खोज-मन्त्र में है।

भक्ति-गृथार के इस अध्ययन में मैंने भक्ति और साहित्य-शास्त्र के अतिरिक्त गृथार मनीषिज्ञान और वाचशास्त्र का भी सहारा लिया है। धारणा है कि यह प्रबंध भक्ति गृथार के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक होगा।

इस प्रबंध को लिखने की प्रेरणा श्री रामबुसारे बाबुपेयीजी ने दी। मैं उनका अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ। मेरी अग्रजा श्रीमती डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव ने मुझे बराबर प्रोत्साहन दिया। उनके स्नेह का सदा धारा बही है।

—लेखक

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	ब्रह्म में काम की परम्परा	१
२	ब्रह्म में काम-तत्त्व का रहस्य	२१
३	मक्ति शू पार की बीठिका	३९
४	मक्ति शू पार की प्रतीकात्मकता	४६
५	मक्ति-काव्य में प्रेम का स्वरूप	६०
६	मक्ति शू पार के नायक	९४
७	मक्ति शू पार में नायिका का स्वरूप	१००
८	मक्ति-शू पार में संशय-वर्णन	१३३
९	मक्ति-शू पार में विप्रर्लभ-वर्णन	१८१
	उपसंहार	२१७
	सहायक सूचि	२१९



प्रथम अध्याय धर्म में काम की परम्परा

धर्म और काम-भावना का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का है। विश्व के समस्त सभी धर्मों में काम का किसी न किसी रूप में प्रवेश है। इतना ही नहीं ऐसे भी अनेक धर्म हैं जिनकी भित्ति ही काम पर आधारित है। भारतीय धर्मों में यज्ञ-सम्प्रदायों के लिए तो यह और भी सत्य है। हिन्दी यज्ञ-साहित्य में प्रवाहित होश्यासी काम की अत्यन्त बेमधासी भावना से कौन अपरिचित है। यथार्थ में यदि यज्ञ-साहित्य से काम भावना निकाल दी जाए तो उसका बाह्य जो कुछ बच रहेगा वह अत्यन्त नीरस अकार्यक और प्रायः महत्त्वहीन होगा। इस काम-भावना के विकास से न जाने कितने यज्ञ-सम्प्रदायों की नींव ही हिन जायी।

धर्म और काम के इस व्यापक साहचर्य के अनेक कारण हैं। वह न तो बनायास ही है और न ही इसे जान बूझकर मानव-काम-तुष्टि को ध्यान में रख कर धर्म का मूलाधार बनाया गया है। यह सम्बन्ध सहज और स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध के मूल कारणों को भारतीय धार्मिक साधना की पृष्ठभूमि में समझकर ही हम हिन्दी भक्तिशास्त्रीय ऋषयों के स्वरूप को हृदयगत कर सकते हैं। इसीका उचित विवरण एवं विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है।

धर्म में काम के स्वरूप के अध्ययन में यथेष्ट संतर्कता की आवश्यकता है। काम मानव की मूल पूर्व अत्यन्त बेमधासी भावना है। धर्म से इसका सम्बन्ध धार्मिक इतिहास के अर्थ रूप में है। धर्म और काम यह साहचर्य इतने प्रकार के अध्ययन की ही आवश्यकता प्रदान करता है। फलस्वरूप अध्याय अन्तर्गत अपना समुल्लस को बैठना है। वह जो मैं से किसी एक को महत्त्व देने मयता है और किसी एक को ही सर्वोपरि मान बैठना है। वह या तो धर्म का सम्पूर्ण रूप में कामात्मक मानने मयता है अथवा यदि वह हमारे पास का हुआ तो समस्त कामात्मकता को धार्मिकता प्रदान करने मयता है। दोनों ही दो सीमाओं पर हैं। अतएव विषय की रोककता एवं उसकी मादकता से यथार्थ रहते हुए सत्य की ओर के मार्ग को ब्रह्म कर बिना किसी ब्रह्म निरिचन मायना की पुष्टि की हठधर्मों की निम्ने हमें धर्म में काम का अध्ययन करना चाहिए।

धर्म में काम के स्वरूप को समझने के लिए आदित्य मानव के धर्म का अन्वयन एवं उससे विकसित हुए धार्मिक इतिहास का अध्ययन करना होगा। यह सर्वप्रथम हम आदिम मानव के धर्म में काम का स्वरूप देखेंगे।

आदिम मानव के धर्म में काम-भावना

ऐसा अनुमान है कि आदिम मानव का जीवन अत्यन्त धार्मिक वातावरण में व्यतीत होगा था। पशुधर्म में वह सामान्य जगत में न रहकर अत्यधिक धार्मिक भावना से बौद्ध-प्रौढ एक समाचारक जगत में रहता था। इसका विशेष कारण था। उसकी शक्तिशाली अल्प तथा सीमित थी। सुन्दर व प्रत्येक कार्य में उसे रहस्यवादी बनना दृष्टिगोचर होती थी। प्रकृति के रीति रूप को देखकर उसे नम और उसके साम्य रूप को देखकर आनन्द होता होगा। उसने प्रत्येक वस्तु में विभिन्न शक्तियों का अनुमान किया होता और सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में अपने ही अनुकूल किन्तु शक्ति में अपने से कहीं अधिकमान ईश्वर की कल्पना की होगी। ईश्वर की मानव स्वरूप में कल्पना करने का कारण उसमें मानव-सुख में सुखों का आरोप किया गया होगा। फिर मानव को सुखकर बननेवासी वस्तुएँ ईश्वर की भी प्रिय एवं सुखकर हैं यह विचार स्वतः विकसित हुआ होगा। उसके शोच की शक्ति करने तथा अपने दृष्ट-मापन के लिए उस प्रयत्न करने के लिए उसकी उपासना में उसकी प्रिय वस्तुओं का प्रयोग होने लगा होगा। आदिम कार्यापासना का आरम्भ संभवतः ही 'सुख' की भावना के आधार पर हुआ होगा। सुख की तीव्रतम अनुभूति संयोग में है और इच्छा के सम्बन्ध में भी यह बात सांगू हो गई होगी। उपासनात्मक प्रदान करनेवाली शक्तियाँ उन आदिम मानव के लिए (जैसा कि आज का सुन्दरतम मानव के लिए भी है) सबसे अधिक महत्वपूर्ण रही होगी। किन्तु इस समय तक उसे सम्भवतः संयोग और संतानोत्पत्ति का सम्बन्ध बात न रहा होगा।

समय बीतने के साथ-साथ आदिम मानव को सम्योग-क्रिया और सम्मानोत्पत्ति का सम्बन्ध ज्ञान हुआ होगा। आदिम मानव के जीवन में संज्ञान का विशेष महत्त्व था। परन्तु काम-भावना गौरी-बाहरी तथा कबीरों की शक्ति लक्षण पर ही आधारित थी। विभिन्न जातियों में अलग-अलग होनेवाले बुद्धों में जन-मानस (सामाजिक) ही थी। इन कर्मों की पूर्ण लक्षण द्वारा होती थी। ऐसा अनुमान है कि जिस क्रिया द्वारा लक्षण उत्पन्न हानी से उन शिवा का महत्त्व अपने आप बढ़ता गया। इन प्रकार धर्म के अन्वयन काय की स्वीकृति हुई होगी और कामोपासना संज्ञान प्राप्त कराने वाली तथा प्रयत्न-बुद्धि है इन विभाग का विकास हुआ होगा। संयोग के का पान—आन्तर और संज्ञान का संबंध हाते ही सम्योग शिवा का प्रत्येक प्रयत्न प्रयत्न-बुद्धि एवं धार्मिक पान निपा पया होगा।

जिस प्रकार आदिम मानव सिंह एवं अन्य जमती जंतुओं से बचाव के लिए उनके लक, दाँत बचवा बास आदि को अपने साथ रखता था अबवा जिस प्रकार अभिमूर्धित जस द्वारा पापों के प्रायश्चित्त का विद्वान्त था जसी प्रकार जसका बहु जी विश्वास था कि बहु अपनी कर्म की वृद्धि भी ऐसी क्रिया द्वारा कर सकता है जिसका सम्बन्ध प्रजनन से है। अमरीका की 'मय' जाति में यह नियम है कि खेत बोने के पूर्व किसान अपनी स्त्रियों और रत्नों से कई दिनों तक असम सोये जिससे कि खेत बोने के दिन बहु अधिक प्रचंड रूप से सम्भोग कर सके। ऐसी भी प्रथा है कि खेत में प्रथम बीजारोपण के लक्षर पर बनेक निवृत्त स्त्री-पुरुष खेत में सम्भोग करें जिससे कृषि की वृद्धि हो सके।

आदिम वासियों के प्रजनन-मृत्यु भी इसी श्रेणी में आते हैं। कृषि और मानव प्रजनन की समानता के आकार पर हम मृत्यु में स्त्री और पुरुष, दोनों ही भाग लेते हैं। ये मृत्यु अंत में सम्भोग में पर्यवसित हुआ करते हैं। इसी प्रकार आखेट के लिए—पशुओं की वृद्धि के लिए स्त्री-पुरुष विभिन्न पशुओं का रूप धारण कर उनकी समीप क्रिया का नाट्य क्रिया करते हैं।

हम क्रियाओं का मूल मनोविज्ञान यह है कि आदिम मानव के जीवन में धर्म पूर्णतः धुमा-मिमा था। आदिम मानव का तर्क था कि एक प्रकार की क्रिया से उसी प्रकार की सभी वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं। इसी कारण ऐसी क्रियाएँ विकसित हुईं जो जीवन से सम्बद्ध भाविकता से आत प्रोत और आदिम जीवन के लिए प्रभावशाली थीं।

यह संभव है कि सगमय सभी धर्मों में प्राप्त उत्पत्ति एवं सृष्टि पर विशेष बल का मूल कारण उत्पत्ति और वृद्धि-सम्बन्धित संपूर्ण क्रियाएँ ही हों। एक बार उत्पत्ति और धर्म का सम्बन्ध निश्चित हो जाने के बाद यह स्वाभाविक ही है कि कामोपायना तथा काम प्रतीक स्वयमेव प्रचलित हो गए हों। इस संबंध में संक द्वारा 'इमोषन्स आफ मैन' नामक पुस्तक में उद्धृत इनकाप का निम्नलिखित विचार प्रष्टम् है

"काम प्रतीक और कामात्मक विशेषताओं तथा संभोग-क्रिया का महत्त्व धर्म के सृष्टि उत्पत्ति और वृद्धि पर विशेष बल देने के कारण हुआ है। एक ऐसी शक्ति की कल्पना ही, जिस तक मानव पहुँचने का प्रयत्न कर सके अथवा जिसके द्वारा इस जीवन की कठिनाइयों से बहु बच सके—उस शक्ति पर आधारित है जो कि सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति से संबंधित है।

अंधार में उत्पन्न होमेवासी सभी वस्तुओं में मानव-धिसू का जन्म मानव के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। अतः यह कोई आश्चर्य नहीं कि प्रजनन एवं जमये

सम्बन्धित क्रियाएँ अत्यधिक धार्मिक महत्त्व प्राप्त कर में। इसके अतिरिक्त आदिम मानव ने जो कि आज के सुगम्य मानव से नहीं अधिक पवित्र और स्पष्टबक्ता था इन बातों को इनही स्पष्टता से व्यक्त किया होगा कि हमारे आज के विचारों को बचका समता है और हम उसे समस्त समस्त बीटते हैं। (पृ० १६०—१६१)

आदिम जातियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्रकृति की दो शक्तियाँ—स्त्री और पुरुष—आदिम जातियों के धर्म में स्वीकृत ही गई थी। यह स्वीकृति विरह-व्यापिनी है और विभिन्न स्थलों पर इसका स्वतंत्र रूप में विकास हुआ है। इस विकास का कारण मानव-मात्र की भावनाओं की मूल एकता है। इस स्वीकृति ने कालांतर में उपामना का रूप धारण कर लिया होगा और इसी कारण स्त्री पुरुष जनमैत्रियों प्रकृति की मूर्ति एक ब्रह्म के सक्ति की तथा इनसे सम्बन्धित देवताओं की प्रतीक बन गई होगी। इन दोनों वर्गों का संबंध प्रकृति की प्रजनन-क्रिया एवं जगत्-धीवन का प्रतीक बन गया क्योंकि आदिम मानव में प्रकृति एवं उसकी क्रियाओं के प्रति यज्ञ की मात्रा अत्यधिक थी।

भारतीय आदिम जातियों के धर्म में काम-तत्त्व

भारतीय आदिम जातियों का अभी तक विलुप्त अध्ययन नहीं हुआ है। जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है उसके अनुसार उनके धर्मों में काम की भयंकर महत्ता है।

मध्य भाग के बौद्ध लोगों में जाया की वार्षिक पूजा होती है। पूजा के उपरांत भोज होता है। इस उपामना के संबंध में बिरोध ज्ञान नहीं है क्योंकि यह एवांगत में होती है। जहाँ तक ज्ञान है यह श्रृंगारिक होती है तथा इसमें संतोष की पूर्ण छूट रहती है। बशिशत के कोड़ा में मूल देव की उपामना में 'सन्तो-वस्तो' भाव होता है। इसमें स्थानात्म मंदिरों का प्रचुर व्यवहार होता है। यह भोज कम से कम समय में होता है और इसमें सर्व प्रकार की काम-क्रियाओं की छूट रहती है। इसी प्रकार पश्चिमी संसार के संघातों का संबंध उत्सव भी प्रतिबन्ध होता है। इसमें काममात्री जाया धन के समान क्रियाएँ होती हैं और विवाह के रूप में इनका अंत होता है। समस्त अधिराष्ट्रिय मुरक-युरातियों इसमें एक-दुसरे से सम्मान करते हैं और धर्म में प्रत्येक पुण्य जायमी पवित्र की स्त्री का विवाह के लिए चुन सता है।

बौद्ध धर्म में काम-तत्त्व

धर्म के प्राचीन-तः ज्ञान-वर्धन केर है। सभी हिन्दू सम्प्रदाय अपना मूल वेदा से जोड़ते हैं। इसका यह भाग्य नहीं है कि वे प्राचीन-तः विद्येवाएँ केने में लगी बन में प्राप्त है जिग रूप में वे बाद में प्रथमा हुई। जहाँ तक काम-तत्त्व का

सम्बन्ध है। इसका अर्थ कबल इतना ही है कि तत्कालीन धर्म-व्यवस्था में यह स्वीकृत था और उसका उस समय प्रकार था।

संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में काम-तत्त्व

ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति स्वधा (प्रकृति) एवं धमिष्ठ (आत्मा) के संयोग से हुई है। (१०-१२६-५)। इसमें पिता की पुत्री से संयोग-कामना एवं संयोग का भी उल्लेख है। (१०-६१-५७)। इसकी व्याख्या करते हुए सामन कहते हैं कि प्रजापति ही पिता हैं तथा पुत्री ऊषा है। इन प्रकार का उल्लेख अथर्व (१-६ २-१) ऐतरेय (३-३३) तथा शाण्ड्य महाब्राह्मण (६-२-१०) में भी है। ऋग्वेद में यम से यमी के सम्प्रयोग प्रस्ताव का भी वर्णन है। यम भाई और यमी बहन है। यमी कहती है 'मन्ना बह युवक (मार्द) ही क्या हुआ निमके होते हुए मैं अनाभिनी की माँति भटक रही हूँ। मैं कैसी बहन हूँ या मार्द के होते हुए भी संताप भोग रही हूँ। आकाश का भी पहिचान की माँति हम एक-दूसरे से मिस जाएँ। जिस प्रकार लता बूट के चारों ओर लिपट जाती है उसी प्रकार मैं भी तुम से मिसूँ। आदि। (१०-१०-१-१४) स्वामी ब्याजम्ब ने यम-यमी को पति पत्नी माना है जो कि विधेय संयोग नहीं प्रतीत होता है यद्यपि इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं पड़ता। संयोग प्रस्ताव की स्थिति तो असुस्पष्ट है ही। पुकरवा और उर्वशी के अस्थिर ब्राम्हण्य प्रेम का वर्णन भी ऋग्वेद में प्राप्त है। सोपामुद्रा ने भी ऋग्वेद में पति पत्नियों में समागम का लिए कहा है तथा काम को धर्म के अंतर्गत स्थान दिया है। (१-१७६-२)

ऋग्वेद में शिरस तथा शिरस-वेदों—शिरस-पुत्रकों का उल्लेख भी मिलता है। ये इन्द्रोपासना के विरोधी थे। इन्हें इन्द्र ने पराजित किया था। इस उल्लेख के स्पष्ट है कि ऋग्वेद के समय में शिरसोपासक संप्रदाय थे। आर्य इनसे जुड़ा करते थे तथा उन्हें ही इसका विरोध भी किया था।

अपवर्णक में भी अनेक शू नारिक उल्लेख मिलते हैं यथा—

“हे पुरुष तू पत्नी के निरुन्नी पर आ जा। हाथ का सहारा दे। प्रसन्न बिल होकर पत्नी को बिपका से और हर्ष मनात हुए तुम दोनों कृतान् वरपन्न करो जिससे सविता देव भी तुम दोनों की आयु बढ़ावें।” (१४-२-३६) तथा—

‘हे स्त्री। विद्यात भोग मन्ना ने ही अपनी पत्नियों को प्राप्त कर मेने के अनन्तर उन्ना सगीर में जाने घरीर को पूरी तरह से मिलाते आय है। अतः हे ऐश्वर्यधामिनी। हे संतान चाहनेवासी। तू भी अपने पति से मिल। हे परमेश्वर। आज मुझे अपनी पत्नी में जीवन-अपन करना है। संयोग में इन प्रकार से कामोपेक्षा की प्रार्थना की गई है।

हिन्दी भक्ति-ग्रन्थ गार का स्वल्प

अपवैध में परकीया सम्बन्ध से मिलते जुलते सम्बन्ध का भी स्पष्ट उल्लेख है। इसका अनुसार अपने पति व अतिरिक्त उपपति रखनेवासी स्त्री अज-अब दोष' शिवा द्वारा बियोग से बच सकती है और यदि उनका उपपति भी इस शिवा को करता है तो मृत्यु के बाद दोनों को एक ही लोक प्राप्त होता है। (१-५-२७ २८)। इतना ही नहीं स्वर्ग प्राप्ति के लिए किए जानेवाले वृद्ध ऐसे मापनों का भी उल्लेख है जिन्हें विवाहिता स्त्री सबसे अपने उपपति के साथ ही कर सकती है।

बैदिक यज्ञों में गाए जानेवाले स्तोत्रों और गाननों में अथवा कपाम, गृह या बलि के सम्बन्ध में जाते किन्ता पारम्परिक मनभ्रम यों में हा किन्तु वृद्ध ऐसे भी सिद्धांत हैं जो कि गभीर गमान रूप से परिख्याप्त हैं। समस्त यज्ञ का सिद्धांत पर आधारित है कि संयुक्तिकरण आध्यात्मिक एवं आत्मवोत्पादक है। यथाच में संभोग स्वयं अग्निहोम है। यह धार्मिक कृत्य है। ये 'सर्व' को बंध कर गोपनीय रखते से क्योंकि बंध करना संयुक्तिकरण है और इसलिए इसे छिपा कर करना चाहिए। बिरत-उद्योगिता का निर्माण प्रजनन के साहायक होने के कारण किया जाता था। मर का छिपाते समय दयाला अनुचित समझा जाता था। जिस प्रकार पति-वस्त्री यदि संभोग करते हुए देख लिए जाते हैं तो वे भाग जाते हैं क्योंकि यह बात सज्जाजनक है। उगी प्रकार यदि कोई व्यक्ति द्वार व अतिरिक्त बिनी अथवा स्थापन में सब का देगता है तो उससे कहना चाहिए कि ऐसा न करे क्योंकि यह संभोग देगने व गमान है। हाँ! वह उसे द्वार से देग रखता है क्योंकि द्वार देगताओं के निर्मित है। इसी प्रकार हविर्दान का भी चारों ओर से बंध करने गोचरों हैं कि एकांत में प्रजनन होता रहेगा क्योंकि दूसरों द्वारा देगी गई प्रजनन क्रिया अनुचित है। अतः हविर्दान देगने वाले का भी मना कर देना चाहिए, क्योंकि वह संभोग देगता है। (घनपत्र २-१ ३-२ ४-१ ७ ९ १० ११-१ आदि)

ऐनदेय अग्नि में आषा-आग्नेय के साथ पाठ के प्रथम पर वा पाठ संयुक्त को व्यक्त करता है —

जब होनर्द अनुष्ठान छंद के प्रथम पर— प्रती देवाय अग्नेय वा उषा रण करता है तो उसे दूसरे पर व बिलय कर उष्णरित करता है क्योंकि संभोग के समय स्त्री अपनी अंगों का विष्णुक्ति करता है। होनर्द उपपत्ति छंद के अंतिम शीतो परा को आइकर बना है क्योंकि संभोग व समय पुरा अपनी अंगों को गटाकर रखता है। वह संभोग का प्रतीक है। इस प्रकार होनर्द पाठ व प्रारम्भ में ही अनुष्ठान-विज्ञान का संसारण करना है जिससे कि प्रजनन अधिक हो। इस शिवा से अथवा व्यक्तिगत गति और समुपन प्राप्त करना है। (२-४-३)

बैदिक कार्य अथवा देवी की उपासना करनी नहीं करना था। देवी को

आहुति देने के पूर्व सूर्य को भी अर्पित करने का विधान है, क्योंकि हम प्रकार देवियों का सूर्य से संभोग हो जाता है।

इस सम्बन्ध में यह विधान है कि सूर्य के लिए भी अर्पित करते समय बार बार सन्धी मंत्रों का उच्चारण बनावश्यक है। एक बार का उच्चारण ही संवेष्ट है क्योंकि एक पति से ही अनेक पत्नियाँ संभोग कर लेती हैं। अतः हातरू जब देवियों को आहुति देने के पूर्व सूर्य मंत्र का पाठ करता है तो वह सूर्य का सभी देवियों से संभोग करा देता है। (एतरस १-४-४)

पशुपत-मर्दान के लिए छत्रोमास यज्ञ में त्रिष्टुम और लगती छत्रों को पुरुष और स्त्री में पात करके सह-उच्चारण करते हैं। दोनों का यह सह-उच्चारण संभोग का चोत्क माना जाता है। (बही १-२-१)

पीछे कहा जा चुका है कि वैदिक युग में केवल पुरुष या केवल स्त्री द्वारा उपासना नहीं की जाती थी। अतः यदि किसी व्यक्ति के पत्नी नहीं है तो वह कैसे उपासना करे? इसके सम्बन्ध में कहते हैं कि श्रद्धा ही उसकी पत्नी है और सत्य का सम्बन्ध सर्वोत्तम है तथा श्रद्धा और सत्य मिलकर स्वर्ग को भी विजय कर लेते हैं। (बही ७-२-९)

छत्रपत्र में इहा कहती है कि यदि तुम यज्ञ के अवसर पर मेरा उपासना करोगे तो तुम्हारी समस्त अनिमायाएँ पूर्ण होंगी। (१-८-१ भाषि)

उपनिषद्-संघों में काम-सत्य

उपनिषदों में भी काम की महत्ता तथा स्वीकृति के संकेत प्राप्त हैं।

छान्दोग्य में आत्म यज्ञ के अर्थ प्रकरण में भौतिक क्रियाओं को धार्मिक रूप दिया गया है। उसके अनुसार—

'बह (पुरुष) का भोजन करने की इच्छा करता है जो पीने की इच्छा करता है और जो रममाण (प्रसन्न) नहीं होता—वही इनकी बीधा है। फिर वह जो खाता है जो पीता है और जो रति का अनुभव करता है—यह छत्रपत्रों की सादृश्यता को प्राप्त होता है। तथा वह जो हँसता है जो मसख करता है और जो संभोग करता है—वे सब स्तुत घात्र की ही समानता का प्राप्त होते हैं तथा जो तप बान ब्राह्मण (नरसत्ता) अहिमा और सत्य बचन हैं वे ही इसकी रक्षिता हैं। इसीसे कहते हैं कि प्रसूता हापी' अथवा 'प्रसूता हुई' वह इसका पुनर्जन्म ही है तथा मरण ही अवनुबन्धान है। (कल्याण उपनिषदांक ३० ४२५)

जाने चलकर 'पुरुष की अग्नि के रूप में उपासना' प्रकरण में कहा गया है —

'गौतम ! पुत्र ही अग्नि है । उसका शोक ही समिष् है प्राण भूम है जिह्वा उपाता है यद्यु अंगारे हैं और शोक विस्फुरितग है । इस अग्नि में देवमय अन्न का होम करते हैं उग्र आहुति में शीघ्र उरग्न होता है । (यही पृ० ४१३)

इसी प्रकार स्त्री की अग्नि-रूप में उपागता' प्रकरण में कहते —

गौतम ! स्त्री ही अग्नि है । उसका उपस्थ ही समिष् है पुत्र्य जो उग्र अंगरे करता है वह भूम है यानि उपाता है तथा जो भीतर की ओर करता है वह अंगारे हैं और उनसे जो मुग होता है वह विस्फुरितग है । इस अग्नि में देवमय शीघ्र का होम करते हैं उग्र आहुति में गम उरग्न होता है । (यही पृ० ४१३, देखें पृ० १०४ भी)

इसीम 'बोकार की व्याख्या' नामक प्रारम्भिक प्रकरण में कहते हैं —

'बापी ही अक्षा है प्राण साम है 'ऊँ यह अक्षर ही उद्गीष है । बा बापी और प्राण तथा अक्षा और साम हैं यह एक ही जाड़ा है दो नहीं । अर्थात् बापी अथवा अक्षा तथा प्राण अथवा साम एक दूसरे से पुरक हैं । बापी और प्राण का अथवा अक्षा और साम का यह जोड़ा ऊँ रूप में अक्षर-मूर्ति संयुक्त किया जाता है । त्रिग समय स्त्रा और पुत्र्य भाषण में प्रेमपूर्वक मिसते हैं उग्र समय के अक्षर ही एक-दूसरे की कामना पूरा करते हैं । इसी प्रकार यह बापी और प्राण का जोड़ा जब बोकार में मलाया जाता है तब यह गदा १ लिए पूर्व नाम इत-इत ही जाता है । दग रहस्य का आनन्दवाता जो कोई उपागक इन उद्गीष स्वल्प अक्षराधी परमेस्वर की उपागता करता है वह निरक्षय ही सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति में समर्थ होता है । (यही पृ० ४०९)

आगे अक्षर 'शाम देव्य मामोपागता' में विद्युत वक्षता की गई है —

'स्त्री-पुत्र्य का अक्षर हिंकार है पारस्परिक मन्दाप-प्रस्ताव है यह शयन उद्गीष अक्षिभुग-अक्षर प्रदिहार है समाप्ति निषण है । यह जो पुत्र्य इय विभूम में कामदेव्य-नाम का स्थित जानता है तथा जाड़े में रहता है उनका कभी वियोग नहीं होता । विद्युती भाव में उगने गताम उरग्न होती है । यह पूर्व आयु का उपभोग करता है । उग्रम जीवन अर्थात् करता है प्रजा और पशुओं के कारण मरान् होता है तथा जीति में कारण महान् होता है ।' (यही पृ० ४१७)

अक्षर में इसीमें वा बोचन परिशर्तों के भाष्य में लिखा है कि काम देव्य-नाम आनन्दवाता अक्षिभुग न विद्युती भी स्त्री उपाग्य नहीं है । यह नवने महामय रूप मचना है ।

पुत्र्योपनिषद् में अक्षि उपागति की चर्चा करते हुए बतायाते हैं — परब्रह्म पुत्र्योपनिषद् में अक्षिभुग तो उसकी अक्षिभुग यानि वा एक अंग अक्षिभुग अक्षिभुग

उत्पन्न हुआ जिसकी समिधा सूर्य है अर्थात् जो सूर्य बिम्ब के रूप में प्रथमवर्णित रहता है अग्नि से अन्नमा उत्पन्न हुआ अन्नमा से मेघ उत्पन्न हुए। मेघों से वर्षा द्वारा पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुई। उन औषधियों के मक्षण से उत्पन्न हुए कीर्त्य की अब पुत्र्य अपनी जाति की स्त्री में सिचन करता है तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परम पुत्र्य परमेश्वर से ये नाना प्रकार के अन्नपर जीव उत्पन्न हुए हैं। (उपनिषदोंक पृ० २७३)

इवेतावतरोपनिषद् का मंत्र तथा संख्य-शास्त्र के बीज मंत्र का वसेप द्वारा उचत मठावसंवी अर्थ करते हैं कि प्रकृति एक तिरंभी बकरी है जो बद्ध जीव रूप यक्रे क संभोग से अपनी ही वीसी तिरंभी त्रिगुणमयी संतान उत्पन्न करती है। (वही पृ० १८४-८२)

बृहदारण्यक तो अपनी प्रतीकात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध ही है। काम की पूर्णता तथा इसकी इच्छाओं का वर्णन करते हुए हममें कहा गया है— पहले एक यह आत्मा ही था। उसने कामना की कि मेरे स्त्री हो फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊँ तथा मेरे धन हो, फिर मैं कर्म करूँ। बस इतनी ही कामना है। इच्छा करने पर इसके अधिक कोई नहीं बाता। इसीसे अब भी एकाकी पुत्र्य यह कामना करता है कि मेरे स्त्री हो फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊँ तथा मेरे धन हो तो फिर मैं कर्म करूँ। वह अब तक हममें से एक को भी प्राप्त नहीं करता तब तक वह धपमे को अपूर्ण ही मानता है। उसकी पूर्णता इस प्रकार होती है—'मन ही इसका आत्मा है बाणी स्त्री है प्राय संतान है बीज मेघ मानुष वित्त है क्योंकि यह मेघ से ही पी आदि मानुष-वित्त की जागता है। बीज वैन-वित्त है क्योंकि वीत से ही यह सुगता है। आत्मा (शरीर) ही इसका कर्म है क्योंकि आत्मा से ही यह कर्म करता है।' (वही पृ० ४१४)

बृहदारण्यक में चारों बर्णों की सृष्टि का उपाक्याम भी प्राप्त है। इसके अनुसार "बह (प्रथम पुत्र्याकार आत्मा) भयभीत हो गया। इसीसे अकेला पुत्र्य भय साठा है। उसने यह विचार किया 'यदि मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं है तो मैं किससे डरना हूँ?' उसी इसका भय निवृत्त हो गया। किन्तु भय क्यों हुआ? क्योंकि भय तो दूसरे से ही होता है। वह रमक नहीं करता था। इसी कारण अब भी एकाकी पुत्र्य रमक नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा की। तब प्रकार परस्पर आश्रयिता स्त्री और पुत्र्य होने हैं वींया ही उसका परिणाम हो गया। उसने इन अपनी बेइ को ही दो भागों में विभक्त कर डाला। उससे पति और पत्नी हुए। इतलिय यह शरीर बद्ध बृगल (द्विजल अन्न के बस) के समान है। इतलिय बह (पुत्र्याकार) आकाश स्त्री से पूर्ण होता। वह उस

उत्पन्न हुआ, जिसकी समिधा सूर्य है, अर्थात् जो सूर्य बिम्ब के रूप में प्रकटित रहता है अग्नि से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ चन्द्रमा से मेघ उत्पन्न हुए। मेघों से वर्षा द्वारा पृथ्वी में नाना प्रकार की बीपधियाँ उत्पन्न हुईं। उन बीपधियों के मक्षान से उत्पन्न हुए बीर्य को जब पुरुष अपनी जाति की स्त्री में सिचम करता है तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वर से ये नाना प्रकार के बराबर जीव उत्पन्न हुए हैं। (उपनिषदांक पृ० २७३)

वेदान्ततरोपनिषद् का मंत्र तथा सांख्य शास्त्र के बीज मंत्र का श्लेष द्वारा उक्त मतावसंधी वर्ण करते हैं कि प्रकृति एक तिरंगी बकरी है जो बड़ जीव रूप बकरे के संयोग से अपनी ही जैसी तिरंगी मिश्रणमयी संतान उत्पन्न करती है। (बही पृ० ३५४-८३)

बृहदारण्यक तो अपनी प्रतीकारम्भ धैमी के लिए प्रसिद्ध ही है। मानव की पूर्णता तथा उसकी इच्छाओं का वर्णन करते हुए हममें कहा गया है— 'यहमे एक यह आत्मा ही था। उसने कामना की कि मेरे स्त्री हो फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊँ तथा मेरे पन हो फिर मैं कर्म कर्क'। यह इतनी ही कामना है। इच्छा करने पर इससे अधिक कोई नहीं पाता। इसीसे अब भी एकाकी पुरुष यह कामना करता है कि मेरे स्त्री हो फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊँ तथा मेरे पन हो तो फिर मैं कर्म कर्क'। यह अब तक इनमें से एक को भी प्राप्त नहीं करता तब तक यह अपने को अपूर्ण ही मानता है। उसकी पूर्णता इस प्रकार होती है— 'मन ही इसका आत्मा है बाकी स्त्री है प्राय संतान है और शैत्र आतुप बिल है क्योंकि यह शैत्र से ही पौ आदि मानुष-बिल की जानता है। यौन शैत्र-बिल है क्योंकि श्रोत से ही यह सुनता है। आत्मा (शरीर) ही इसका कर्म है क्योंकि आत्मा से ही यह कर्म करता है।' (बही पृ० ४६३)

बृहदारण्यक में चारों वर्णों की सृष्टि का उपाकमान भी प्राप्त है। इसके अनुसार "यह (प्रथम पुरुषाकार आत्मा) अग्रभीठ हो गया। इसीसे अकेला पुरुष भय खाता है। उसने यह विचार किया, "बकि मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं है तो मैं किससे डरना हूँ?" अभी इसका भय निवृत्त हो गया। किन्तु भय क्यों हुआ? क्योंकि भय तो दूसरे से ही होता है। यह रमण नहीं करता था। इसी कारण अब भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उसने दूसरे की इच्छा की। शिव प्रकार परस्पर अतिविनिग स्त्री और पुरुष होने हैं बस ही उसका परिमाण हो गया। उसने इन अपनी देह को ही दो भागों में विभक्त कर जामा। उससे पति और पत्नी हुए। इसलिये यह शरीर बड़ बुनन (विदल अग्न के बड़) से समान है। इसलिये यह (पुरुषार्थ) आकाश स्त्री से पूर्ण होता। यह उस

(स्त्री) से समुक्त हुआ उसीसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। उन (घटरूपा) ने यह विचार किया कि 'अपने से ही उत्पन्न करने यह भुक्तस समागम क्यों करता है ? अच्छा मैं छिप जाऊँ। बत वह गौ हो गई तब दूमरा यानी मनु रूपम होकर उसमें संभोग करने लगा इसमें गाय-बैल उत्पन्न हुए। तब वह घोड़ी हो गई और मनु अरब बोल हो गया। फिर वह गर्वमी हो गई और मनु यदम हो गया और उससे ममागम करने लगा। इससे उरुबाभ पया उत्पन्न हुए। तबतन्तर घटरूपा बकरी हो गई और मनु बकरा हा गया और उसमें ममागम करने लगा। इसमें बकरी और भेड़ों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार चीटी स लेकर ये जितने मियुन हैं उन सभी की उरुहोने रचना कर बारी। (उपनिषदांक पृ० ४)

इसीमें आगे चलकर पुरुष और प्रजासमा के संबन्ध का वर्णन स्त्री-पुरुष के मिश्रण में किया गया है। 'व्यवहार में जिस प्रकार अपनी प्रिया नारी का आभिगम करनेवाले पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है और न भीतर का उसी प्रकार यह पुरुष प्रजासमा से आभिगमि होने पर न कुछ बाहर का विषय जानता है और न भीतर का। (वही पृ० ४६०)।

धार्मिक कृत्यों ही को देवस मेषुन का स्वरूप नहीं दिया गया है। इसका विपरीत मेषुन-क्रिया का भी धार्मिक संस्कार रूप में माग्यता ही गई है। (घनपम साद्यायन भीन सूत्र कात्यायन भीन सूत्र मैत्रयीय आरण्यक ऐतरेय आरण्यक तथा सूह-सूत्र आदि)। छाबोग्य उपनिषद् में सामवेद्य-सामोपासना की वर्णा हम कर चुके हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में संहिता के रूप में प्रजा का वर्णन करके संतान-शान्ति का रहस्य गमसाया गया है। भाव यह है कि इस प्रजा-विषयक संहिता में माना तो मानों पूर्ववर्ष है और पिता परवर्ष है। जिस प्रकार बोंनों बनों की मपि से एक नया बण बन जाता है उसी प्रकार माना-पिता के संयोग से उत्पन्न हुलेशासी संतान ही इस संहिता में दानों की मपि (संयुक्त-स्वरूप) है तथा माता और पिता का जो अनुकाल में घास्त्र-विधि के अनुसार यपोषिण नियमपूर्वक सतानोत्पत्ति के उद्देश्य से सहस्राय करना है वही संघान है। जो मनुष्य इस रहस्य को गमसकर संतानोत्पत्ति के उद्देश्य में अनुकाल में धर्म युक्त स्त्री-सहस्राय करता है वह अवरम अपनी इच्छा से अनुगार बोल संतान प्राप्त कर सता है। (उपनिषदांक पृ० ३१०)। आगे चलकर पुन कहा गया है— 'सबक नाम मुन्दर मनव्याचिन मीकिक व्यवहार करना घास्त्र विधि के अनुसार गर्भाधान करना और अनुकाल में नियमित रूप से स्त्री-सहस्राय करना तथा कुटुम्ब को बढ़ाने का उपाय करना—इस प्रकार हमें सभी बोल कायों का अनुप्याय करते रहना चाहिए। (वही पृ० ३२०)। बृहदारण्यक में ता मन्ता नोत्पत्ति विज्ञान का एक समूर्ण प्रकरण हा है। (वही पृ० २०४ २ ६)। स्त्री

की यज्ञ-कृद् तथा संभोग-व्यापार की यज्ञता का भी स्पष्ट उल्लेख है। इन क्रिया के समय संभोग-व्यापार आवश्यक है। इसके इस स्वरूप को प्राप्त करनेवाला ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। इससे व्यतिरिक्त वैदिककाल के कामदेव यज्ञ और महायज्ञ में तथा अथर्ववेद के तथाकथित तीर्थाय यज्ञ में के कामिकोपनिषद् एवं अन्य तांत्रिक उपनिषदों में भी मीचुन एक धार्मिक कृत्य के रूप में स्वीकृत है।

उपयुक्त विस्तृत उल्लेख से यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में वैदिक धर्म में धार्मिक क्रियाओं की न कबल संभोग क्रिया से तुल्य ही की जाती थी वरिष्ठ संभोग-क्रिया को एक धार्मिक कृत्य के रूप में स्वीकार भी किया जाता था। इन प्रकार वैदिक काल और धर्म में काम की यज्ञेय प्रतिष्ठा थी।

रामायण और महाभारत में काम-तत्त्व

रामायण और महाभारत में अनेकानेक स्थलों पर नारियों के रूप का हृदयघाही वर्णन है, तथा अनेक शूयारी कथाओं का संकेत है जैसे अशुरार्यों का शूयौ ऋषि का कामोद्दीपन करना इन्द्र का बहिष्कार के साथ व्यभिचार वामु का कुशनाम की कन्याओं से बलात्कार तथा कृष्ण-देवयानी लप्ता-संहरण और लक्ष्मण-वधवती के उपाख्यात आदि। इन सभी में काम की अत्यन्त जीवन्त परंपरा प्रकाशित होती है।

बौद्ध धर्म में काम-तत्त्व

हिंसा-पूर्व सिद्धि बौद्ध पुस्तक 'कथा-वत्थु' में 'एकाभिप्पार्यो' नामक रीति के प्रथम का उल्लेख है। यह रीति बौद्ध वेतस्मक तथा उत्तरापथ के निवासियों में प्रचलित थी। इस रीति के अनुसार परस्पर यौनात्मक संबंध किया जा सकता है। एक ही बिहार के रहनेवाले, एक प्रकार की उपासना करनेवाले तथा एक ही विचार-वाच और भावनासे स्त्री-पुरुष परस्पर संभोग कर सकते हैं। (एकाभिप्पार्येण मियुमो वम्मो सेवित्थो)।

उपयुक्त ग्रन्थ में ही एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि अमानुष बर्हंत के क्षेत्र में धर्म के लिए मीचुन करते हैं (बर्हंतानम वम्मन्ता अमानुससा मियुतम् पम्मप्प पठि उबंठी)। इन पर बुद्धबोध की व्याख्या से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उस समय उत्तरापथ में ऐसे सम्प्रदाय प्रचलित थे जिनमें मिस्र और मिस्रियों को काम-संबंध स्थापित करने की आज्ञा थी। यह संबंध धार्मिक साधन के लिए किया जाता था।

मज्झिम निकाय (भाष १ पृ० १०१) में बुद्ध ने ऐसे ब्राह्मण और भ्रमणों का उल्लेख किया है जो कि मिस्रियों से काम-संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की हानि नहीं समझते थे।

प्राप्ति के लिए स्त्री भित्तों आवश्यक है। डा० घास्त्री द्वारा नैपाल से साईं नई बंड रोपन महात्म' में स्त्री के साथ साधना करने की विधि का विस्तृत वर्णन है।

कण्ह्या आदि सिद्धों ने अन्य पक्ष वर्णों की स्त्री के सेवन करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए अपनी स्त्री के भोग की आवश्यकता बतलाई है और महाशुभ का प्रतीक भासिपन-वद जोड़ा माना है। अन्यत्र स्थितियों विशेषतः डोगिनी रजनी आदि का अभाव सेवन इस साधना का आवश्यक अंग है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कण्ह्या के डोगिनी भीतों का उद्धरण अपने इतिहास में किया है।

नाथ सम्प्रदाय ने मद्यपि शुभार के माधियम से अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न किया है किन्तु फिर भी शिव-शक्ति की भावना के कारण कुछ शुभारमयी वाणी माध पंथ के किसी किसी ग्रन्थ (जैसे शक्ति-पंचम-अंज) में मिल जाती है।

बन्धन धर्म में काम-तत्त्व

बैष्णव धर्म की ओर यदि हम अपनी दृष्टि फेरें तो आसवार भक्त विष्णु, हरिवंश भागवत ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों तथा नारद पांचरात्र में प्रेम-भक्ति का विकास और काम-संबंध का स्पष्ट उल्लेख है। भक्ति-साहित्य की पीठिका रूप में पुराणों में प्राप्त शुभार का हम विस्तृत उल्लेख करेंगे। इन समस्त ग्रन्थों तथा पूर्व उल्लेखित विवरणों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तर है जिसे भूलना नहीं चाहिए। बैष्णव धर्म में काम की स्वीकृति उच्च साधना-रूप में नहीं है जैसी कि वैदिक आदि धर्मों में है। इनमें देवी-देवताओं की काम श्रद्धा का ही विषय वर्णन है। ये सब बैष्णव धर्म में भी काम की स्वीकृति का संकट करते हैं।

विदेही धर्मों में काम-तत्त्व

भारतीय धर्म ही नहीं विदेही धर्मों में भी काम की प्रचुर मात्रा मिलती है। ईगाई धर्म-ग्रन्थ में 'सांग आक मासोमन' अपनी शुभारिकता के लिए प्रसिद्ध ही है। इनके अतिरिक्त भी उनमें अनेक शुभारिक अंश तथा कथाएँ प्राप्त हैं। यहाँ तक कि इन शुभारिकता से अभ्यसित होकर मनुष्यों में मूल बाह्यिक का स्वरूप बहुत कुछ बदल दिया गया है।

मुगलसमर्थों के सूखी-साहित्य और धर्म में भी काम-तत्त्व प्रचुरता से है। इन सबको बनामाना हमारा उद्देश्य नहीं है अतएव इनका संकेत-मात्र कर दिया गया है।

धर्म के धर्म क्षेत्रों में प्राप्त नाम का स्वरूप

धर्म व मूल अंश के अनिश्चितता उसमें सम्बन्धित अर्थ क्षेत्रों में भी स्पष्ट शुभार प्राप्त है। इनकी मरिणत जहाँ जाये की जा रही है।

दिल्लय में मृ पार

धर्म का दिल्प से त्रिद्वय सम्बन्ध है । देवासय मस्त्रिद्वय और गिरजे के रूप में धर्म का बंध बनकर दिल्प भी विश्व-व्यापक हुआ । यथार्थ में प्राचीन दिल्प धर्म के पीठों में ही अपने पुनर्-वैभव को प्राप्त हुआ है । भारत इसका प्रतिपाद नहीं है । जिस प्रकार धर्म के एक पक्ष में काम की प्रचुरता बिपसाई जा चुकी है वही प्रकार दिल्प में भी काम की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है ।

मंदिर

हिन्दू मंदिर सामूहिक रूप से एकत्र होकर पूजा करने का स्थान नहीं है । यह इष्टदेव के ऐश्वर्य प्रदर्शन हेतु निर्मित प्रासाद है जिसमें इष्टदेव की सपासना निश्चित पुजारियों द्वारा निश्चित एवं बिल्लुत नियमों के अनुसार होती है । मुमज मानों श्री मस्त्रिद्वय और ईशाद्वयों के गिरजे से यह इसी रूप में भिन्न है ।

मन्दिर केवम इष्ट क रहने का एक साधारण प्रासाद मात्र ही नहीं है बल्कि यह इष्टदेव का रूप भी है जिसमें प्रतीकों द्वारा सुष्टि की नियामक दक्षिणों का चित्रण रहता है । इसका निर्माण बाबनों में स्वीकृत विधायों के अनुसार ही किया जाता है और प्रत्येक वेपता के लोक के ही अनुरूप उसके मंदिर का निर्माण होता है । विभिन्न प्रकार के वेपताओं तथा बागनों के अनुसार मन्दिर भी विभिन्न प्रकार के होते हैं ।

मन्दिर के मतानुसार मन्दिर का निर्माण तीन भागों में होता है । इसका मुख्य भाग बीच में होता है जिसे धर्मगृह कहते हैं । इस धर्मगृह के ऊपर सात खंडों का शिखर होता है जोकि सप्त-लोक या सप्त-भूमि का प्रतीक है । इसी धर्मगृह में इष्टदेव की मूर्ति की स्थापना होती है ।

धर्मगृह के बाहे हो मण्डप होते हैं । ये स्तम्भों पर आधारित होते हैं और इनमें छारों द्वारा प्रकाश जाने की व्यवस्था रहती है । मुख्य मण्डपों के अतिरिक्त बनेक छोटे मण्डप भी हो सकते हैं । सम्पूर्ण मंदिर ऊँची कुटी पर निर्मित होता है जिस तक जाने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं ।

मंदिर के बाह्य और आभ्यांतर भागों में शिखरकारी और अलंकार रहता है । महीं पर की मूर्तियों का स्थान निश्चित होता है । मंदिर का प्रत्येक स्थान महत्वपूर्ण होने के कारण उसका कोई भी स्थान रिक्त नहीं रखा जा सकता है । हिन्दू मंदिर अपने अलंकरण की विशेषताओं के द्वारा ही पहचाना जाता है और यही इसकी अन्य मंदिरों से भिन्नता है ।

बात्रकम प्राण्ट अधिकतर प्राचीन मूर्तियों (मयुरा से प्राप्त) सामान्यतः प्रथम शताब्दी ई० के पचास वर्ष पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी ई० के पचास वर्ष

नाम मुजा उमा के स्कन्ध प्रवेष्ट से होती हुई उन्हें आर्तिगित करती है। उमा देवी सुम्बर स्नान तथा पीम नितम्बोपासी होनी चाहिए। उनकी दक्षिण मुजा शिव के दक्षिण स्कन्ध से होती हुई उनका आर्तिपत्र करती है। उनकी नाम मुजा से दर्पण होना चाहिए। उमा-महेश्वर की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर होनी चाहिए।

'रूप-मंडन' के अनुसार 'शिव की चार मुजाएँ होनी चाहिए और उनका दक्षिण की एक मुजा में त्रिशूल और दूसरे में मातुमुंम-क्षण होना चाहिए। उनकी एक नाम मुजा उमा के स्नान पर से होती हुई उनका आर्तिगत्र कर तथा दूसरी मुजा में सर्प होना चाहिए। महेश्वर का वर्ष प्रवास होना चाहिये। उमा का स्वरूप 'विष्णुमूर्ति' में ब्रजित रूप का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त रूपम (मयी) बभ्रुव काण्डिकेय और नृत्य करते हुए मू की शक्ति की मूर्तिमा भी अत्यन्त कलात्मक होनी चाहिए।

विर्वात्म भी श्रु गारिक मूर्ति का ही एक रूप है।

भारतीय मंदिरों के अतिरिक्त विदेशों में भी उपासना-गृहों में श्रु गार स्तूप प्राप्त हैं। इनमें से कुछ मष्ट हो गए हैं तथा अन्य मष्टहास्यों में पहुँचा दिए गए हैं।

धर्म में 'अरी' सम्प्रदाय का पेशान के निकट सिने न यू' में पैपार्यान्तू के तीन मंदिरों में श्रु गारिक स्तूप प्राप्त हैं। चीन के 'यिग-योय' जापान के 'शिन्टो' बेमजियम और फ्रांस में सल फ्रीन्टीन के सिनन की उपासना एंटवर्प के विरजाधर के द्वार की मूर्तिमा इटली की 'इस-मना मेम्बो' डार्सेट में टैडुल पहाड़ी पर 'अरनो चार्ट' जायर्सड में लैइला-म-जिम' नाम से प्रसिद्ध सायन केबीडरक तथा कार्नाल एवं हर्फोर्डवाबर में धर्म भी श्रु गारिक स्तूप प्राप्त हैं।

इस प्रकार धर्म-स्तूप रूप में भी श्रु गार विश्व-व्यापी है।

देवतासी

धर्म में श्रु गार के उत्सव में देवतासी या सबसे मिलती-जुलती प्रजाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। देवतासी प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। इसके मूल स्रोत एवं विकास का पता लगना सम्भव अमम्भव है। इसकी विद्व-व्यापकता एवं सभी स्थानों पर धर्म के साथ के समिष्ट सम्बन्ध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रथा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि धार्मिक भावना। इसका प्राचीनतम उत्सव मिस्र के सण्डहरो और मिनासियों में मिलता है। ग्रीस तथा इराक में भी इसके चिह्न पाए जाते हैं।

भारतवर्ष के दक्षिणी मंदिरों में ही इसका पूर्ण विकास हुआ है। वहाँ पर यह परम्परा सभी शताब्दी से मिलती है। माता पिता अपनी पुत्रियों को मंदिर

में बड़ा जाते थे। उनका विवाह वहीं के ठाकुरजी के साथ ही जाता था जिसकी उपासना वे पतिक्रम में करती थीं। किन्तु जिस प्रकार ठाकुरजी अपना सब काम अपने प्रतिनिधि पुजारी के हाथ करते हैं उसी प्रकार वे अपने वैवाहिक छत्र भी पुजारी हाथ करते सभे और देवदासियाँ पुजारियों की रखैस बन गईं। अनुमान है कि उनका उपयोग राजा और नगर के प्रतिष्ठित लोग तथा माभीयप सुख लेकर कर सकते थे। इस रूप में वे बेचर्याएँ थीं। दिन में इनका काम इष्टदेव के सम्मुख हाव-भाव-नृत्य द्वारा उन्हें पिलाता था और रात्रि को यह कार्य उन्हें पुजारी राजा या माभी के साथ भी करना पड़ता था। ऐसा भी हुआ है कि इनमें कुछ सुदृढ बाचरनों की अत्यन्त भावुक और कवयिनिर्वाही हुई हैं। इनका विशेष उम्मान हुआ है। अंशाल यामाबा' धामद ऐसी ही देवदासी थी। उसके भावात्मक पीठ किसी भी साहित्य की निधि हो सकते हैं। वे पर दक्षिण के 'तिरुप्पावड' नायक पुराण में मिलते हैं। इनमें अपने इष्ट के प्रति प्रेम अपने प्रमादुतम रूप में प्रवाहित हुआ है। बधिन में ये (देवदासियाँ) अब तक हीठी थीं। सामाजिक भावनाएँ इस प्रथा के विरुद्ध होने से इसे हाल में ही सरकार द्वारा बन्द कर दिया गया है। कहा जाता है कि अजलाप के मण्डिर में भी देवदासियाँ होती रही हैं यद्यपि उनकी प्रचुरता से नहीं जितनी कि वे दक्षिण में थीं।

परिचय में भी यह प्रथा सर्वत्र ही प्रचलित रही और अब भी है यद्यपि उनका स्वरूप कुछ भिन्न है। देवदासियों की अपेक्षे यह स्त्रियाँ 'गम्भ' कहलाती हैं तथा इनका विवाह ईसा-मसीह से कर दिया जाता है जिसकी ये पति-रूप में उपासना करती हैं। इनमें भी अनेक अष्ट भविर्ने हो गई हैं जैसे 'येरसा' मात्रि। मध्ययुगीन धार्मिक संस्थाओं में प्रव्याचार के आचार पर अनुमान है कि ये अधिकतर अग्य धर्मों की काम-विपासा पाठ करने के काम में ही आईं। जर्म द्वारा इस प्रथा को पूर्ण नाशयता प्राप्त है और आज भी ईसाई समाज में यह प्रचलित है।

अर्थात्

अर्थात् धर्म का बाह्य और कलात्मक रूप है। यह धार्मिक भावात्मक एवं शैक्षिक तथा दार्शनिक विचारों का बाह्य रूप है। इसका सामाजिक उपासना है और इनके अंतर्गत पूजा सेवा जप भोग आदि सभी वस्तुएँ जाती हैं। इनके द्वारा धार्मिक तरफ को स्पूल रूप में प्रकट कर जन-साधारण के लिए बोधकम्य बनाया जाता है। सभी व्यक्तियों के व्यक्तियों का प्रभावित करने की इनमें शक्ति भी है। इनके द्वारा मानव के विचारों में परिवर्तन और परिश्रम आती है। शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में परिवर्तन करके यह इष्ट अथवा धर्म के साथ स्वरूप को लादान कर देता है। यही कारण है कि अर्थात् धर्म का महत्त्वपूर्ण

अर्थ है। साधक साधक को सिखा ही जाती है कि वह स्वयं यत्निमुक्त छिब है। यह केवल कथन मात्र नहीं है। यह तो अनुभव करनेवाली वस्तु है और साधक अपने साधन द्वारा इस सत्य का साक्षात्कार करता है। इसी प्रकार भक्त का निकृष्ट में प्रिया-प्रियतम की केलि का साक्षात्कार केवल कथन मात्र नहीं है। यह तो जीवन में उतार कर अनुभव करने की वस्तु है। इसी ध्येय को दृष्टिगत कर तीर्त्नयात्रा स्यात्, ध्यान पूजा-वाठ, जपमाम सेवा जाप आदि का विधान है।

अर्थाविधि का महत्त्व एक अन्व रूप में भी है। धर्म का उद्देश्य विभिन्न प्रकार की साधारण मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों को पूर्वनिश्चित माध्यमों के आकार पर सत्य या असत्य बोधित करना भी है। प्रत्येक धर्म अपने नियम और साधना द्वारा जनता को ऐसी अनुभूतियों से बचाता है जो कि उनके धार्मिक आचार के विरुद्ध हैं। ऐसी अनुभूतियों को धर्म झूठी महत्त्वहीन बयबा पापभय बोधित कर देते हैं। इस सम्बन्ध में ब्रुंग ने ऐसे व्यक्तियों की बर्षा की है जिनको अनुभूतियाँ हुईं किन्तु वे उनके सम्बन्ध में धार्मिक माध्यमों को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे। उन अनुभूतियों के दूषित प्रभाव से छुटकारा प्राप्त कराने के लिए उन व्यक्तियों को उन भवामक और बीमत्स मार्ग से ले जाया पड़ा जहाँ मानसिक दम्ब उभर जाते हैं। मानसिक विकृतियाँ बढ़ जाती हैं और उतसत्तें मुँह छड़कर सामने आ जाती हैं तथा निरुत्साह पीड़ित करती हैं। इस कारण वे अर्थाविधि और साधन को मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। ऐसे व्यक्ति यदि धर्मों में विश्वास करते हैं तो अपनी अनुभूतियों को धार्मिक स्वरूप देकर उनके भ्रमंकर परिणाम से बच जाते हैं।

उपमुक्त कथन से स्पष्ट है कि धर्म का साधनात्मक बयबा अर्थाविधि-यस मनोविज्ञान की दृष्टि से दार्शनिक पक्ष से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका एक अन्य कारण भी है। दार्शनिक सिद्धांत सदैव सूक्ष्म और बोद्धिक होते हैं जबकि अर्थाविधि द्वारा उसी तत्त्व को कही अधिक स्पष्टता से धियाओ द्वारा स्पष्ट कर दिया जाता है। उम अयम तत्त्व को व्यक्त करने की मही सरसजम मनोवैज्ञानिक एव उपयुक्त विधि है। वे अर्थाविधियाँ यदि एक ओर अनुभूतियों पर आधारित होती हैं तो दूसरी ओर इनके पीछे सताधिया की परम्परा और विरवाय रहता है। वे अर्थाविधियाँ सभी धर्मों में प्राप्त हैं और स्वयं समाधि आदि के हाथ प्रकट हो सकती हैं। इनकी सत्यति कल्पना द्वारा नहीं होती। यथार्थ में इनका प्रारम्भ पालन-विकास की घट स्थिति में ही हुआ था। जबकि वह मस्तिष्क के पूर्व निश्चित उपबोग से अनभिज्ञ था। मानव के मस्तिष्क में विचार पहले आते और वह सोचने की क्रिया से अनिज्ञ बाद में हुआ। इन अनुभूतियों का विचार नहीं अनुभव हुआ था। वे अर्थाविधियाँ स्वयं-वन् मानव के अथनन मन में एकाएक उत्पन्न

किया है। भक्ति में होनेवाली हृदिकारक अनुभूतियों से बचाने में वे रसों से अधिक उपयुक्त और सफल हैं। रसों अनुभूति के भावार्थक पक्ष की उपेक्षा करता है जबकि अर्थाविधि इसी भावना पक्ष के द्वारा ही अपने को व्यक्त करती है। सांकेतिक सिद्धांतों का संकलन-मंजल होता रहता है किन्तु अर्थाविधियाँ यथामिथ्यों तक चलती रहती हैं।

उपरोक्त कारणों से रस में अर्थाविधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इष्ट की मष्टयाप सेवा शृंगार उपासना कीर्तन आरती जनके अप्रतिम सौंदर्य का चित्रण जनकी केवि का मनन आदि सभी भक्ति-सम्प्रदायों में अनिवार्य रूप से पाया जाता है।

अनुभूतियाँ

प्रत्येक रस में बहो क पहुँचे हुए सारक और चिह्नों की अनुभूतियों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे अनुभूतियाँ न केवल उस व्यक्ति की महत्ता की ही स्वीकृति कराती हैं बल्कि 'ईश्वर साक्षात्कार' और 'बहुँचे' होने का प्रमाण भी हैं। इन अनुभूतियों का साम्प्रदायिक मूल्य इन रूप में भी है कि इनके द्वारा सम्प्रदाय अपनी लम्बाई का डका भी पीटते हैं।

पारतीय संतों एवं भक्तों की अनुभूतियाँ प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं हैं। जो मूल प्राप्त हैं वे भी किचकती हैं। मुरबास के पास जल की झापी एक जल, कीर्तन बना देना भीतापत्री का स्वर्य बरबादा खोल देना, भक्त के साथ बेलना बाँटनाप घोष में बैठना प्रिया-श्रवणम की काम-कति में प्रवेश आदि का हस्तेश भिसता है। इनमें जिन सम्प्रदायों में शृंगारोपासना स्वीकृत है जनकी अनुभूतियाँ भी शृंगारमक होती हैं।

विदेशी संतों ने बहरस अपनी अनुभूतियों की विस्तृत चर्चा की है। जनकी अनुभूतियाँ भी अधिकतर शृंगारमक हैं। ईसा के प्रति परनी-भाव की जनकी उपासना रही है और उम्हूनि संयोगादि का अनुभव भी किया है।

ऐसी अनुभूतियाँ शैतन्यरेष के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध हैं जिनमें एका कृष्ण के प्रेम में वे व्याकुल हो जाते थे। तबमें उन समय प्रेम के समस्त सारिक विकार उत्पन्न हो जाते थे। यत्नों की ऐसी अनुभूतियाँ अधिकतर शृंगारिक ही हुना करती हैं और इनका स्वरूप अपनी-अपनी भाँसिक एवं साम्प्रदायिक मायताओं के अनुकूल हुना करता था।

उपरोक्त ऐतिहासिक उल्लेख के बाद रस और काम के पुरातन सम्बन्ध के विषय में संका नहीं रहे जानी। रस का काम से मईव सम्बन्ध रहा है और रस रूप में शृंगार की बसा स्वीकृति रही है।

द्वितीय अध्याय धर्म में काम-तत्त्व का रहस्य

धर्म में काम-तत्त्व की परम्परा का सुक्षिप्त विवरण प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। इस अध्याय में काम की इस स्थिति को समझने का प्रयत्न किया जाएगा। इस काम-तत्त्व की व्याख्या नृदान्त्रीय मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक आधार पर की जा सकती है। नृदान्त्रीय व्याख्या को अन्वयन धर्म के विकास एवं उसमें काम के प्रवेश के कारणों को बतलाया जाएगा। मनोवैज्ञानिक व्याख्या द्वारा धर्म और काम के सम्बन्ध को बतलाने का प्रयत्न किया जाएगा। दार्शनिक व्याख्या के अन्तर्गत् हिन्दू धर्म द्वारा इस काम-तत्त्व को समझने का जो प्रयत्न है उसका उल्लेख रहेगा। इन तीनों व्याख्याओं के आधार पर ही हम धर्म में काम-तत्त्व के रहस्य को समझ सकेंगे।

धर्म में काम-तत्त्व की नृदान्त्रीय व्याख्या

नृदान्त्र मानव की मूल भावनाओं और रीति-रिवाज के उत्थान और विकास का अध्ययन करता है। इस अध्ययन का आधार संसार में प्राप्त आदिम जातियों के रीति-रिवाज हैं जो कि बड़े अंश में उनमें अपने मूल रूप में अब भी प्रचलित हैं। मानव की मूल भावनाओं में धर्म और काम हैं। इनमें धर्म और काम के स्वरूप का अध्ययन नृदान्त्रियों का प्रिय विषय रहा है। उन्होंने धर्म और काम के संबन्ध की जो व्याख्या की है उसीकी संक्षिप्त रूप देखा नीचे की जा रही है।

नृदान्त्री 'सेबी' का विचार है कि धर्म का विकास मानव की अपनी परिस्थितियों के प्रति मानात्मक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ होगा। इस प्रतिक्रिया के द्वारा उसने प्राकृतिक शक्तियों के रहस्य को जानने तथा उनका अपने हित के लिए उपयोग करने का प्रयत्न किया होगा। यह प्रयत्न तीन प्रकार से हुआ होगा —

पुनारी पूजा-उपासना द्वारा चिकित्सक जड़ी-बूटी द्वारा और बोधा जादू-मन्त्रों द्वारा अपने मनमाने के लिए ऐसी शक्ति और महामत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा होगा। यह ऐसी शक्ति सभी कार्यों में अपेक्षित रहनी होगी क्योंकि सब समय मानव प्रकृति के अपने स्वरूप से अपेक्षित था। उस समय पुनारी,

विकसित और बोझा एक ही व्यक्ति रहते होंगे और इन तीनों कर्मों में विशेष अन्तर नहीं समझा जाता होगा। अभी भी सम्य सम्राज में ऐसे रूप प्राप्त होते हैं। आर्य मानव सम्राज में पुजारी विकसित और बोझा का एकमात्र ही सम्मान रहा होगा।

समय बीतने के साथ पुजारी और बोझा की स्थिति में अन्तर पड़ता गया। एक ओर धर्म का स्वाम ऊँचा होता गया तो दूसरी ओर जादू-टोना की शक्ति हेतु समझने लगे यद्यपि सम्राज इसका दृष्टिकोण न कर सका। पुजारी और भक्त का सम्मान यथावत रहा किन्तु बोझा के प्रति धर्म की भावना बढ़ गई। इसका कारण था। धर्म ने अधिकाधिक सामाजिक हित की भावना को अपनाया और जादू-टोने न व्यक्तिगत स्वार्थ को। कर्मस्वरूप एक की मूल शक्ति ईश्वरी और दूसरे की शक्ति मानी जानी लगी। (सेबी रिजिजन एण्ड साइकल पृ० ६१)

धर्म से जादू टोना एक भग्य रूप में भी भिन्न है। मेसिनोस्की के अनुसार पामिक क्रियाएँ साधन नहीं माध्यम हैं जबकि जादू एक क्रियात्मक कला है। यह एक मुनिवृत्त ध्येय की प्राप्ति का साधन है। इसकी क्रियाएँ यांत्रिक हानी हैं। इसका कार्य हम विश्वास पर होता है कि यदि किसीको साधन विधि का समुचित ज्ञान है तो ध्येय प्राप्ति साधारण एवं सरल है। उस समय मानव का विश्वास था कि उपयुक्त साधन द्वारा प्रत्येक कार्य सम्भव है। उसके फल को कोई शक्ति नहीं रोक सकती। अनुमानत इसीकी विवक्षित परम्परा में ही भारतीय यज्ञ आते हैं जिनके द्वारा सभी फल प्राप्त किए जा सकते हैं और उन फलों को रोकने की शक्ति किसी भी दैव-दानव में नहीं है। क्योंकि भारतीय ऋषियों ने सदा धर्म-कल्याण की भावना को यज्ञमान की दृष्टि से अधिक महत्त्व दिया इसीलिए उनके यज्ञों का सम्मान रहा। पर इनके विपरीत धर्म-कल्याण की उपेक्षा करने के व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए भी यह और प्रयोग होते रहे। अनुमान है कि जादू और धर्म का यह अन्तर सम्यता के विकास के साथ हुआ होगा। आर्य कालीन सामाजिक स्थिति में यह अन्तर नहीं था। जादू और धर्म दोनों ही साध-साध बनते थे। धर्म प्रयोग और प्रार्थना दोनों ही साध प्रयुक्त होते थे। यथार्थ में उस समय व्यक्तिगत और सामाजिक भावना का स्पष्ट अन्तर नहीं था। धर्म जादू विज्ञान कला नैतिकता आदि सभी बस्तुएँ थी किन्तु उनका श्रेष्ठ भवना रूप पृथक और स्पष्ट नहीं था। बहुत बार में ही ये सब पृथक हुए होंगे।

प्रारम्भ में धर्म जादू-टोना विज्ञान एवं नैतिकता के बीच कोई सुस्पष्ट विभाजक रेखा नहीं थी। बल्कि सभी एक ध्येय से जुड़े-जुड़े थे। इसी कारण से

धर्म आहु-टोना आदि सभी क्षेत्रों में काम भावना मिलती है। सम्पत्ता के विकास के साथ धर्म में नैतिकता के अधिकाधिक प्रवेश के कारण तथा सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व की दृष्टि से काम भावना एवं उसके स्तूल उपभोग की भावना का क्रमशः हास होता गया। उसका सूक्ष्मीकरण और उन्नयन भी हुआ। प्रजनन तृप्त्यों से उत्पन्न होनेवाले यौग-सम्बन्ध बर्य हो बये। अस्पृश्यामीन मैत्रुम सम्बन्धों की कमी होती गई, यद्यपि पुनः इसका बहिष्कार न हो सका। इसके विपरीत दूसरी ओर ऐसे धर्म-कर्म त्रिमये मानव की साधना-शक्ति पर ही समस्त बल है जिनमें सही विधि और फल प्राप्ति का अनिश्चय संभव है, उनमें स्त्री के काम-रूप का ही महत्त्व रहा और आज भी है। पान्तों की साधनाओं में स्त्री के महत्त्व का यही रहस्य है। उनमें स्त्री सिद्धि की दात्री है।

धर्म और काम भावना के इन संबंध को सभी स्वीकार करते हैं। किन्तु एक धर्म काम भावना को ही धर्म मानता है, तो विचारकों का दूसरा धर्म काम भावना और धर्म में केवल संबंध ही स्वीकार करता है, एकत्वता नहीं। स्पारबक ने 'इंसाइक्लोपीडिया आफ रिसेजन एण्ड एथिक्स' में दोनों धर्मों के मतों का संश्लेष किया है।

प्रथम मत 'अनुमान आधुनिक धार्मिक विश्वास आदिम युग के धार्मिक विश्वासों से विकसित हुए हैं। आदिम मानव में धर्म का विकास और बलीकिक तथा अमानव में विश्वास अपने तथा अपनी परिस्थितियों के प्रति अज्ञान से हुआ होगा। आज भी आज रूप में इन विश्वासों से मुक्त होकर भी हम उनसे छूट नहीं पाये हैं।

आदिम मानव में समस्त काम क्रियाओं के प्रति समीकिक शक्ति रही होगी। अग्नी-बूटी और उपवास द्वारा उत्पन्न अनुभूतियाँ भी उसे बलीकिक बगती होगी। ये सब उसके धर्म का अनिश्चय अंग बन गईं होंगी।

सम्पत्ता और शान के विकास के साथ धर्म में इन काम के प्रति प्रतिक्रियाएँ पठी होंगी। अनुमान है कि यह प्रतिक्रिया तीन रूप में हुई होगी। प्रथम में काम को सहज रूप में धर्म का अंग स्वीकार कर लिया गया होगा। प्रथम, मृग, काम, क्रियाओं को धार्मिक रूप दिया गया होगा और धार्मिक क्रियाओं को काम-स्वरूप बनाया गया होगा। वैदिक कालीन धर्म में धर्म और काम की ऐसी समता के अनेक उदाहरण हम पीछे देखे आए हैं। सम्मोय यज्ञ है तथा यज्ञ नृप्राण है तथा धर्मों का सम्मोय क्रिया रूप में पाठ्यदि इनी स्थिति के लोचक है। प्रतिक्रिया का दूसरा रूप धर्म में काम के दमन द्वारा प्रकट हुआ। धर्म में बलिधर्म का महत्त्व इनी कारण हुआ होगा। सम्भवतः इससे पीछे यह विचार रहा

और बृहस्पति मानव को सांसारिक बनानेवासी है। ब्रह्मचारी सभी बंधनों से मुक्त होने के कारण ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ हो सकता है। मनोबैज्ञानिक इस विचार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि अविद्वत् काम मानवा धर्म के क्षेत्र में कई युता तीव्र हो कर प्रकट होती है। इस रूप में ब्रह्मचर्य की मानता के पीछे काम का बल है। भारतीय धर्मों में काम के इस बल का रूप भी मिलता है। तपस्या मित्र-जीवन और वैराग्य का भारतीय धर्मों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन मित्रों और साधुओं के जीवन में काम के बल की प्रतिबिम्बा से कितनी कामुकता उत्पन्न हुई इसका प्रमाण बौद्ध धर्म के संघों व इतिहास में है। इसीके फलस्वरूप अनेक सम्प्रदायों में ब्रह्म रूप से ब्रह्मचर्य पर महत्त्व देते हुए मानसिक शुभार का द्वार खोल दिया गया। शुभारिक सम्प्रदायों में इसकी शुभार-सीमा का चिंतन-मनन ऐसी ही तुष्टि करनेवासी है। इन प्रतिबिम्बा का तीव्रता रूप स्पष्ट होकर काम को धर्म का अंग स्वीकार करने में है। इसका विकास 'स्वतंत्र प्रेम' के रूप में हुआ। स्वतंत्र प्रेम का अर्थ है अपनी पत्नी के अनिच्छित अंग स्त्रियों से संबंध की छूट। मित्र गृहस्थिमा आदि में परकीया का यही आधार प्रतीत होता है। स्वतंत्र प्रेम की इन स्वीकृति के दो ठरके दिये जाते हैं। प्रथम यह कि पारिष्टिक और आरिष्टिक संबंध भिन्न भिन्न हैं। पत्नी के रहते हुए भी अन्य स्त्री से आध्यात्मिक संबंध स्थापित किया जा सकता है। दूसरी यह कि आर्या पर पारिष्टिक क्रिया-कलापों का प्रभाव नहीं पड़ता। फलस्वरूप साधक उन सभी धर्मों को करने संगता है जिन्हें साधारणतः त्याग्य समझा जाता है। यह कार्य धार्मिक प्रभाव के साथ प्रकट रूप में किये जाते हैं।

धर्मों की अनुभूतियों में भी काम का स्वरूप मिलता है। इसे वे तीस-वर्षीय नीसा प्रवेश आदि नामों से व्यक्त करते हैं। ये अनुभूतियाँ धर्म और काम की मौखिक एकता व्यक्त करती हैं। ऐसा अनुमान है कि ये अनुभूतियाँ मानसिक व्याधि के लक्षण हैं क्योंकि अनेक मानसिक रोगियों में प्राप्त अनुभूतियाँ और प्रतीकों की अनुभूतियों में बड़ा साम्य है।

भारती की अनुभूतियों के संबंध में ठरके दिया जाता है कि उनका आत्मजन्य पपाविष्य अथवा असौखिक होता है। इन मन के भाषों का विचार है कि इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि भावनाएँ मूल रूप में एक हैं।

भारती की शुभार प्रभाव अभिव्यक्तियों को प्रतीक मानने के पक्ष में इन मत के साथ नहीं है। प्रो० जेम्स के विचार से सहमत होते हुए ये लोग इन भावनाओं की मौखिक धारणा है। बिना मौखिकता के इनमें बहु तीव्रता तथा तन्मयता नहीं आ सकती है जो कि भारत में उपलब्ध होनी है। इन संबंध में शुभार और धर्म में त्याग की समानता भी इतना ध्यान आह्वित करती है। यही कारण है कि

प्रेमी प्रेमीपान की प्राप्ति के लिए साधु, योगियों का रूप बनाते हैं। प्रेमाभ्यामी साक्षा के नायक इसका उदाहरण हैं।

इस धर्म में अतिम महत्त्वपूर्ण बात है मरत और संतों का इस कामात्मक साधनाओं और अनुभूतियों में कुछ विराम। वे इसे धर्म का अंग मानते हैं और इसकी अनेकता का प्रबल उनके सामने उठता ही नहीं। मध्ययुगीन हिन्दी-मठ-कवि ऐसे ही हैं।

धर्म और काम को एक माननेवासे लोगों का उपर्युक्त तर्क संक्षेप में इस प्रकार रहे जा सकते हैं —

(१) मठ और संतों की अनुभूतियों और भावियों में श्रु गारिकता है। उनकी साधनाएँ कामात्मक हैं।

(२) इन कामात्मक अनुभूतियों और साधनाओं में उनका कुछ विराम है कि वे पामिक हैं।

(३) उनकी ये अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ प्रतीकारत्मक नहीं हैं बल्कि वसार्थ हैं और

(४) इसका पीछे

(क) वैराग्य की प्रतिक्रिया है अथवा

(ख) दमित काम-वासना प्रकटन और मानसिक मोय रूप में व्यक्त हुई है अथवा

(ग) इस काम की (वीकृति शरीर के ऊपर आत्मा की महत्ता प्रतिपादित करने का कारण भी हुई है।

पूरा धर्म उन विद्वानों का है जो धर्म में श्रु गार के प्रभाव को मानते हुए भी उसको तसम्भ समझते हैं। उनके अनुसार कामात्मकता ऐसी क्रियाओं में ही अधिकतर प्राप्त है जिसको धर्म में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है जैसे वादू टोका, प्रेम-साधनाएँ आदि। धर्म में जो बोझी-बहुत कामात्मकता मिलती है वह केवल प्रजनन उत्सव देवदासी-प्रवा अथवा छिदोपासना के रूप में ही है। उनका विचार है कि ऐसे उत्सव जिनमें काम-स्वतन्त्रता रहती है काम-वासना के उन्मुक्त रूप नहीं हैं बल्कि प्रजनन और उत्पत्ति की शक्तियों के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन मात्र हैं। धर्म का सम्बन्ध नैतिकता से है और वह इस (काम) पवित्र को स्वीकार का उसका नियंत्रण करता है और पवित्रता का आदर्श स्थापित करता है।

इन लोगों के अनुसार धर्म में काम तीन रूपों में प्रकट होता है —

(१) देवियाँ (२) छिदोपासना और (३) पामिक और लौकिक प्रेम द्वारा।

संसार के सभी धर्मों में ऐसी देवियाँ हैं। रोम की 'वीनस' चीन की 'मकोशाइट', स्कैंडीनेविया की 'फ्रीमा', देवीमान की 'इतर एक्टिक' की

‘दमडीस्टइजीन’ भारत की राजा उर्बशी रमा मेनका विमला उमा आदि ऐसी ही देवियाँ हैं। इन देवियों के व्यवहार और उनकी उपासना से स्पष्ट है कि भक्तों के हृदय में इन देवियों का प्रेमात्मक स्वरूप ही मुख्य है। इन देवियों के प्रति इनके स्वामियों का व्यवहार भी अनेक बार अत्यंत वास्तविक ब्रिजित हुआ है।

धर्म में काम की प्रमुक्तता माननेवालों का कहना है कि इन देवियों का स्वरूप जब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक कि इनके प्रतीकों को न समझा जाए। इन प्रतीकों में विहन-योनि प्रतीक सबसे महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार सर्व से संबंधित मनसा-भंगल की कथाएँ भी श्रृंगारिक हैं। कुछ ठो कब छम-पुनठ बृष और यहाँ तक कि सौंद में भी काम प्रतीक देखते हैं। उनके अनुसार कमल ‘ऊँ’ तथा ‘जामीन’ भी काम-प्रतीक हैं।

इसका विरोध करते हुए द्वितीय मतवालों का कहना है कि अधिकतर देवियों का सम्बन्ध श्रृंगार से नहीं है। उदाहरणार्थ रोम की ‘मिनर्वा’ भारत की लक्ष्मी ‘सरस्वती’ और ‘सीता’ आदि। इसके अतिरिक्त कामांतर में प्रेम और वासना की देवियों का भी लक्ष्मी रूप विकसित हो गया। पार्वती और विमला ऐसी ही देवियाँ हैं। साव ही-शाम श्रृंगारिक देवियों के प्रचार का कारण उनकी बहुमता नहीं बल्कि मानव की दुर्बलताएँ हैं। इनका कहना है कि सर्वत्र काम की प्रधानता देखनेवालों का मस्तिष्क स्वयं काम से इतना संयुक्त है कि उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं है। इसका अनुसार शीर्ष और अपमत्ता के प्रतीक सर्व में काम-प्रतीक देखना अनुचित है। इसी प्रकार कमल सुंदरता पवित्रता और भाव्या रिमकता का प्रतीक है। उनमें भी काम देखना अपनी विकृत मानसिक स्थिति के कारण है। ऐसे लोग प्रत्येक वस्तु अपने दरबाने कमल वादात मामी आदि में काम-ही-काम देखते हैं जिसका वहाँ नामो निघान भी नहीं होता है।

धर्म का उद्देश्य सदा काम-वागला का नियंत्रण और दमन करना रहा है। भारत मिस यूरोप मैक्सिमो आदि सभी देशों में ब्रह्मचर्य तथा वीरग्य की प्रतिष्ठा करने का धर्म ने सदा प्रयत्न किया है। इन देशों में बिहार संघ कानबेट आदि का निर्माण इसी काम के नियंत्रण के लिए ही हुआ था और इन कार्य की और ये लयन से बने रहे। संभव है कि धर्म में काम की प्रतिष्ठा कम करने के कारण ही देवता बरताएँ आदि का जन्म कुमारी कन्या यज्ञ आदि से प्राप्त जब जग्य इन्द्रियों से अपवां प्राकृत्य द्वारा बननाया गया है। मयानिज देव-देवियों की वस्त्रता बहुत प्रचलित है। इन प्रकार धर्म ने ब्रह्मचर्य और वीरग्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। संघियों में देवतासिमा रही है और उनका दुष्प्रयोग भी हुआ है किन्तु अधिकतर मन्दिर बिहार आदि ने अपने यहाँ के स्त्री पुण्य भिदा-भिदुणियों आदि की पवित्रता की रक्षा का ही प्रयत्न किया है। बाविक इत्यों में स्त्री की महत्ता उतकी

प्रस्तुत किए हैं। जन्माव रोग के विकिरणकों ने बारंबार इस संबंध का उल्लेख किया है। उनके विचार से मनुष्य में यह काम-व्याधि विशेष रूप से भिन्नती है। इस सम्बंध में समाप्तकारण का कहना है कि वे मरीज जो कि अपने को कुमारी मरियम बर्न ईश्वर या मसीह की पत्नी समझते हैं, उनमें बागे या पीछे विद्युत काम भावना के सहाय अवयव प्रकट होते हैं। फौरन अपनी पुस्तक 'डाई सैन्सुमी फ्रैंज में अपना उर्क देते हैं कि धार्मिक भावना के मूल में अज्ञातरूप से काम भावना रहती है। अपनी पुस्तक 'सैन्सुएलियम अन्डरर जीबल' में ब्रमाय का कहना है कि एक धर्म में धर्म के इतिहास को मानव काम भावना का व्यक्त इतिहास कहा जा सकता है। धर्म और काम के संबंध का अध्ययन करनेवाले अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध की स्वीकार किया है। फ्रांस्ट एडिंग भी दोनों के सम्बंध को ज्योम्याधिग कहते हैं। इन सम्बंध में प्रसिद्ध नाम-शास्त्री है बसक एडिस का विचार है कि काम भावना धर्म भावना का मूल स्रोत है, किन्तु धर्म के सम्पूर्ण रूप को बनानेवासी नहीं है। उनके अनुसार काम भावना का प्रभाव पूर्ण विकसित धर्मों पर है किन्तु उसकी मूल गामयी इस भावना से नहीं प्राप्त हुई है। इससे सायब धर्म के विकास की सुष्ठ संभावनाओं को आप्रत किया है।

मनोवैज्ञानिकों के इन विचारों को बतमाने के उपर्यंत धर्म और काम के संबंध में समस्त मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को उनके महत्त्वानुसार कम से नीचे रखा जा रहा है। इन सिद्धांतों का संकेन पहले भी हो चुका है। इन सभी में सर्याय है पर पूर्ण सरय सायब इनमें से किसी एक में नहीं है।

काम-भावना के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

काम-भावना धार्मिक भावना से पक्क है। इन विचार के अनुसार दोनों में कोई भी संबंध नहीं है। कभी-कभी काम-भावना अपनी सीमा तोड़ कर धर्म में प्रवेश कर गई है पर दोनों में कोई संबंध नहीं है। इन विचार का कारण यह है कि संसार की गमी बस्तुओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है—एक तो पवित्र और दूसरी अपवित्र। एक धार्मिक और दूसरी अधार्मिक एक सौष्ठ और दूसरी निहृष्ट। यह विचार सत्य है। इन प्रकार का विभाजन आदिम मानव में नहीं था। जगमें धार्मिक और शूभार क्रियाओं में अन्तर प्राप्त नहीं है। यह विभाजन विभिन्न मानसिक अवस्था का है जिनमें काम भावना की प्रबलता को स्वीकृत करते हुए अपने धर्म को बचाने की भावना है। इन गिद्धांत की दुर्बलता इनकी विभाजन प्रबलता और नामको निहृष्ट मानने में है। यह गिद्धांत धर्म को अत्यंत सीमित और सूक्ष्म मानना है जो कि सत्य नहीं है।

(ख) काम-भावना और धर्म-भावना एक है। यह गिद्धांत प्रथम का

बिभीम है। इसके अनुसार धार्मिक भावना काम-भावना का ही परिवर्तित रूप है। काम भावना और धार्मिक भावना का विकास साथ-साथ हुआ है। धार्मिक और आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप एक है और उनके विकास की मर्यादाएँ भी एक हैं। ऐसा अनुभव होता गया है कि स्त्रियों में काम-विचार धार्मिक रूप धारण कर लेता है।

उपरोक्त विचार विकसित धर्मों के संबंध में लागू नहीं होते। आज तो धर्मों में जो काम का स्वरूप मिलता है वह वासना को नियंत्रित करने का लिए है। इसके अतिरिक्त धार्मिक प्रेम के मूल में काम का साथ-साथ साहचर्य और सीधे भावना भी है यह हमें नहीं भूलना चाहिए। संबंध काम-ही काम देखना अनुचित है। धर्म में बस काम भावना ही नहीं अन्य अनेक भावनाएँ भी हैं।

(ग) धर्म में काम का नियंत्रण है। धर्म का उद्देश्य जीवन को आदर्श बनाया है। इसलिए यह जीवन की सभी क्रियाओं का नियंत्रण करना चाहता है। इन क्रियाओं में काम भी है। पहले अधिकांश मानव का महत्व था। समाज का संवर्धन सुदृढ़ तथा व्यापक नहीं था। उस समय ब्रह्म-काम-संघर्ष का महत्व था। परिवार के संघटन के उपरान्त विवाह के स्थायित्व पर अधिक बल दिया जाने लगा होता। व्यभिचार बुरा समझा जाने लगा होता और काम भावना नियंत्रित की गई होगी। धर्म इसी नियंत्रण का स्वरूप है और इसीलिए धर्म ने काम-संघर्ष विवाह आदि को अपने अंतर्गत में लिया। इसने काम-भावना का एक ओर रोका और दूसरी ओर विवाह के रूप में उसका एक मार्ग भी दिखा। विवाह को धार्मिक क्रिया और स्थायी संबंध बनाकर धर्म ने काम भावना को सामाजिक बनाया और उसका नियंत्रण किया। इस रूप में धर्म और काम का सम्बन्ध है।

(घ) धर्म में काम की स्वीकृति है। सभी-कभी धर्म ने काम को विरोध रूप से स्वीकार कर उस प्रथम भी दिया है। इस प्रथम का कारण सामाजिक सामाजिक हाना है और इसका रूप धार्मिक। बड़े परिवारों और उनमें भी पुत्रों की उपयोगिता देखकर धर्म ने संतानोत्पत्ति और पुनर्जाति को धर्म ने मना तोल्यति और पुनर्जाति को धर्म का अंग बना लिया। जिला पुत्र उत्पन्न हुए बंग तो मष्ट होना ही है पितर भी पीड़ित होते हैं। इस प्रकार धर्म काम को बढ़ावा देता है। यह प्रथम देते हुए भी वह इसकी एक सीमा से आप नहीं बढ़ने देता है। इसी स्वीकृति के कारण भी धर्म में काम-भावना आई हो सकती है।

(ङ) धर्म में काम का नियंत्रण है। धर्म विविध भावों एवं मनोवैश्याँ का मिश्रित रूप है और काम भावना उनमें से एक है। धर्म के विकसित रूप में यह

काम भावना कम होती जाती है। धर्म में मय आत्म-सम्मान प्रेम कथना विज्ञाना आदि अनेक भाव और मनोवैशेषों का मिश्रण है। ये अपने स्वयं और हेतु रूप से परिष्कृत होकर धर्म में मिले हैं। जिस समय धर्म सुबक-सुबकियों को सामाजिक जीवन में प्रवेश कराता है उसी समय उसमें काम-भावना बिलसार्ई पड़ने लगती है। इस समय काम-भावना के साथ-साथ और भी अनेक विकास बिलसार्ई पड़ते हैं जैसे लक्ष्मीभक्ता साहमिकता आदि। अतएव यह सोचना कि धार्मिक भावना में सर्वत्र काम भावना ही है अथवा इसीके ऊपर ही धार्मिक भावना विकसित हुई है उचित नहीं।

यह सत्य है कि बहुत से रहस्यवादियों मूर्खों और सुर्तों की धार्मिकता में काम भावना का कारण सांसारिक या मानसिक विकृतियाँ होती हैं किन्तु इनकी मात्रा इतनी कम है कि इनके आचार पर ही धर्म को काम-मय मान लेना उचित नहीं है। साथ-ही-साथ अनेक धार्मिक विकृतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें काम-भावना बिलकुल नहीं रहती तथा ऐसी भी काम-विकृतियाँ होती हैं जिनमें धार्मिकता का सदा भी नहीं रहता। अतः यह निष्कर्ष और भी अनुचित होगा कि धर्म और काम एक हैं।

प्रेम में तीन स्वतंत्र मनोवैशेष कार्य करते हैं—काम साहचर्य और शीर्ष्य। काम के कारण धर्म में कोमलता स्नेह भाविका प्रवेश होता है और अपने विकृत रूप में यह कामोपासना या यीमोपासना का रूप ले लेता है। साहचर्य के द्वारा परोपकार क्या त्याग और भ्रातृत्व की भावना विकसित होती है। शीर्ष्य भावना किसी भी वस्तु की सुन्दरता के प्रति आकृष्ट कर उसका आनन्द उठाने की भावना उत्पन्न करती है और इसके द्वारा ईश्वर की सर्वव्यापकता का भाव होता है। इनमें साहचर्य की भावना कही प्रमुख है। इसके लिए आचार्यक नहीं कि शोष भिन्न लिखी ही। रिचर्ड न अपनी पुस्तक 'मनावेयों के मनोविज्ञान' (१८९० पृ० २०९ ३०३) में यह सिद्ध किया है कि साहचर्य की भावना का आचार जीवनेच्छा है। इसीके कारण एक प्रकार के बीच परस्पर आकर्षित होते हैं। इस जीवनेच्छा के कारण ही सामाजिक भावना का विकास होता है और इसमें काम का प्रवेश नहीं है। इसी साहचर्य की भावना से धर्म में विशेष बड़का किया है काम-भावना में नहीं। इस प्रकार धर्म का उद्देश्य काम की नृत्ति नहीं बल्कि जीवनेच्छा साहचर्य और विकास है।

भिन्नने का ये कहा जा सकता है कि धर्म में काम का स्थान है। धर्म की आदिम अवस्था में दोनों धर्म-भिन्ने के। सम्पत्ता १ विकास २ गाव धर्म में काम का स्थान मीठ होने तथा धीरे उगने बोद्धिकता बढ़नी गई। नही बोद्धिकता

के स्थान पर भावना की महत्ता हुई वहीं धर्म में काम ने प्रवेश किया क्योंकि दोनों का मूल स्रोत बड़े अंश में समान है। धर्म में काम-तत्त्व की दार्शनिक व्याख्या

इस व्याख्या के अंतर्गत हम केवल भारतीय दार्शनिक व्याख्या लेंगे। हम प्रथम अध्याय में बतला जाये हैं कि भारतीय धर्म में वैदिक काम से ही काम प्राप्त है। ऐसा अनुमान है कि काम का यह स्वरूप धर्म क विकास क साथ परिवर्तित होता रहा है। इस विकास की अनुमानित रूपरेखा निम्नलिखित है —

आर्यों के आगमन से बाद उनका द्रविड़ संस्कृति क संपर्क में आना स्वाभाविक था। द्रविड़ों को मिष्टान्त मानते हुए भी दोनों संस्कृतियों का संमेलन हुआ गया होगा। दोनों जातियों में परस्पर विवाह संबंध हुए। फल-स्वरूप द्रविड़ संस्कृति के देवी-देवता यक्ष-यक्षिणियाँ नाय-नायिणों में आत्मना होती हैं। इस भावना पर भी पड़ा। द्रविड़ों के अनुसार सभी वस्तुओं में आत्मा होती है। इस भावना के साथ द्रविड़ों की आर्यों में स्वीकृति हो गई और उन्हें दूध धर्म के अन्तर्गत स्थापित किया।

द्रविड़ों के लोक-प्रचलित पूजा-पाठ आदि के कारण वैदिक ज्ञानी धर्म में काम का महत्त्व बढ़ने लगा। इसका विरोध भी हुआ पर इसे रोकना नहीं जा सका और धीरे-धीरे इसे स्वीकार भी कर लिया गया। ऐसा भी समझ है कि कुछ वर्षों में आर्यों में स्वतंत्र रूप से भी काम की भाविकता प्राप्त रही हो। सृष्टि का कारण यही काम है और अपसंबन्ध में इसका आकर्षण और प्रभाव का निरंतर गति है।

आर्यों की दार्शनिक विचारधारा की मूलभूत परिधि पर भी। पिता की सृष्टि के लिए सुप्रथम पारिवारिक जीवन होता चाहिए जिनमें पति-पत्नी अनेक पुत्रों को जन्म दें। इन सुप्रथम पारिवारिक जीवन की अनेक विधियों और पति-पत्नी संबंध में उल्लेखनीय कठिनाइयों का इस धर्म के अंतर्गत आ गया। इस प्रकार काम को स्वीकार करते हुए उभरे जीवन और धर्म का महत्त्वपूर्ण अंश समझा गया और काम का उल्लेख धार्मिक पवित्रता क साथ किया गया। यही स्वीकृति धर्म की अविच्छिन्नता का मूलाधार है।

महिला काम से बाद अधियों क चित्त के फलस्वरूप एकतरफा या बल की कल्पना विकसित हुई। इसी बल ने इच्छा या काम से सृष्टि को उत्पन्न किया। अर्थात् से ईश्वर इस प्रकार विकसित हुआ और इसी ईश्वर को मिटाता ही मौल्य है। इन रूप में मानव की प्रजनन विधि का आर्योय

क्रिया मया । वही संसार का पिता है । उसके अन्दर स्त्री और पुरुष दोनों ही उत्पन्न हैं । इसलिए उसके स्वरूप की कल्पना दो ही रूप में संभव है । वह या तो अद्वैत शरीररूप रूप है अथवा मीचुन क्रिया में आबद्ध जोड़े का । इस ईश्वर ने जोम न लिए हमारे की कामना की और उसका स्त्री-रूप—प्रकृति—अलग हो गया । इस प्रकृति के साथ विविध रूप में संयोग कर इस संसार की सृष्टि उत्पन्न की । यही अद्वैत का द्वैत में परिवर्तन है । संसार में प्राप्त स्त्री और पुरुष उसी द्वैत का स्वरूप है । इसी द्वैत का नाश ही मोक्ष जीवन का उद्देश्य है । ईश्वर की प्राप्ति है । फलान्तरूप स्त्री-पुरुष चित्त—योजि और तिम प्रकृति और पुरुष का प्रतीक बन गए । संयोग सृष्टि का प्रतीक बना—यज्ञ कहलाया । समस्त भारतीय काम साधनाओं के अर्थात् यही मूल-भित्ति है ।

विद्य प्रकाश सृष्टि का प्रतीक संयोग बना जैसे ही ईश्वरानन्द ब्रह्मानन्द का प्रतीक भी मानवीय संयोगात्मक बना । संयोग-मुक्त ही संसार में प्राप्त सभी सुखों में उत्कृष्टतम है । अतएव ब्रह्मानन्द को व्यक्त करनेवासा है । इसलिए संयोग एक पावन क्रिया है, ईश्वरीय है यज्ञ है । बीरे भीरे सभी काम-क्रियाएँ पवित्र और धार्मिक हो गईं । ब्रह्म का प्रतीक "ॐ" भी संयोग का प्रतीक हो गया और सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवासा मात्रा जाने लगा ।

इन विचारों का उपनिषदों में उच्चतम विकास हुआ जो कि पन-साधारण की बुद्धि से पर था । अतएव इन विचारों का अव्यक्त प्रभाव रहाने के लिए अनेक कर्मों पुना धारि का विकास हुआ । हिन्दू धर्म को एक सूत्र में बाँधने के लिए संस्कार-विधि का विकास हुआ । विवाह को अग्नि की साक्षी विधा कर धार्मिकता प्रदान की गई । यह संस्कार विधि भारत-व्यापी हो गई ।

बौद्ध धर्म और योग का प्रवेश

शाक्य धर्म की वर्ण-व्यवस्था और पुत्रारियों आदि के दुराचार के विरुद्ध योतम और महावीर ने विद्रोह किया तथा बौद्ध और जैन-सुधार आशोकन बनाए । शाक्य और इन वर्णों के बीच मध्यम समय १० वर्षों तक चलता रहा । इसी बीच प्रतापी सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाकर हमका प्रचार भारत ही नहीं विदेश में भी किया । इन धर्म के मिलनकारे भारतवर्ष में धूम धूम कर बुद्ध का संदेश पुनाने लगे । एक बार तो समग्र साध भारत ही बौद्ध-सा ही गया ।

यह बौद्ध धर्म शाक्य धर्म की वर्ण व्यवस्था और अन्य अनेक दोषों को दूर करने में तो गमर्ष हुआ पर स्वयं उसकी संस्कार-विधि आदि से अछूता न रह सका । बीरे-बीरे उमका प्रभाव बौद्ध भिक्षुओं पर पड़ता गया और उन्होंने हिन्दुओं की याच-साधनाएँ अपना लीं । इतना ही नहीं बौद्ध धर्म को लोक-वस के निकट लाने

का संघर्ष छठीके अन्तर जमाने समा और कट्टर हीनमान के स्वाम के स्वाम पर उबार महायान का विकास हुआ जिमने उस समय के समाज में प्रचलित सभी प्रकार के व्याचार-विचार अथवा पूजा विश्वास-अल्प-विस्तार का उपना मिया ।

महायान में 'सून्यता' के रूप में परिवर्तन हुआ । योग्य सिद्ध ही बाध विरत है । सममें सून्यता और कष्टता के संभाव से निर्वाण की स्थिति होती है । यही सून्यता और कष्टता प्रज्ञा और उपाय है । इनके मयाय से निर्वाण के पर्याय महा मुक्त की प्राप्ति होती है । सून्यता और प्रज्ञा—स्त्री प्रकृति है । कष्टता उपाय—पुरुष है । दोनों का सामरस्य सम्मिलन वहन ही 'मुक्तनड' है ।

इसमें दो व्यंग्य मिश्रणों का नी माग है । महेश्वरि के अनुमान ध्यान के अन्तर पर ध्याता अपने को ध्येय रूप से देखता है । मायक स्वयं अपने को 'देहक' के रूप में सोचता है । इस प्रकार दोनों में व्यंग्य हाता है । दूसरे मिश्रण के अनुमान मौक्तिक स्त्री-पुरुष पारमौक्तिक स्त्री-पुरुष प्रज्ञा—उपाय = त्यागन है । मायक और मुक्त—उपाय तथा प्रज्ञा के प्रतिरूप है । इस प्रकार उपाय—अपवात अन्ततत्त्व मुक्त है । प्रज्ञा प्रभवती मुद्रा अन्ततत्वा युवनी पाश्चर्यपी है । यवक का सद्यय अन्त और युवनी का पय है । अन्त और पय का मयाय ही मायता है ।

योग-मुक्त के मिश्रण भी हिन्दू और बौद्धों दोनों का समान रूप में माग्य हुए । इनके अनुमान प्रत्यक्ष जीव का प्रतीक एक संक के द्वारा अन्त क्रिया या मकता है । यह संक मानव के शरीर के अन्तर स्थित सूक्ष्म अन्तों का व्यक्त करता है । विभिन्न आसनों द्वारा शरीर के इन अन्तों का इन प्रकार बदना या मकता है कि वे एक अन्त संक का रूप धारण कर लें । यदि इन अन्तों का अन्त्यास क्रिया जाए तो कुछ काल के बाद इन अन्तों की बदलने के कारण वह मायक उस नए रूप को प्राप्त कर लेता या कि उस प्रकार के संक द्वारा व्यक्त हाता है । इन अन्तों पर अधिकार प्राप्त करने के वा मुख्य भासन है । एक ठा पर्यायन और दुमरा काम-कला के भासन जिनकी संख्या ८४ मानी यह है । इन आसनों के अन्त्यास द्वारा अनुस्य कोण राम डीप अस्मिता और अनितयेय से छुट कर ईश्वर्य प्राप्त कर लेता है ।

काम-मुक्त का प्रवेश

काम-कला के आसनों के महेश्वर की स्मारक करने पर उनका विवचन की भावदयता रही । पुरपादों में काम की मीय से हा कम मन्त्र है अय ग रही । अन्त कामपासव या पाविकला प्राण्य ही मीय कामपासव अन्त मने अन्त मने । कामपासव का ईश्वरपासव का अन्तव यह ही मना ज कुरा है और इन प्रकाय से पाविक स्त्रीवृत्ति अन्त ही कामपासव की कर्म से प्रकल्प ही मने ।

बैष्णव और शक्तों का प्रवेश

एसनीं घणाम्बी के आस पास संप्रदायिक देवताओं का बड़ा ही ताबान्ध होने लगा । इसका फलस्वरूप तीस देवताओं को प्रमुखता प्राप्त हुई । विष्णु को परब्रह्म माननेवाले वैष्णव शिव को माननेवाले शैव और शक्ति को माननेवाले शक्त हुए । शंकर के अर्द्धत को आचार मानकर भी उसके विरोध में ही इन संप्रदायों का विकास हुआ । इन संप्रदायों ने भक्ति को भी महत्त्व दिया । इनमें इष्ट का स्वरूप मानवीय माना गया और उसकी अनुकम्पा से मुक्ति ।

शैव और शक्त सन्तों में मुद्ग-उपासनाएँ प्रचलित हुई । परब्रह्म का स्वरूप शिव-शक्ति का समावित रूप है । शैवों के 'सोम सिद्धांत' के अनुसार वही रूप आराध्य है । साधक भी पार्वती की प्रतिरूपा स्त्री से सान्ध आलित होकर उपासना करता है ।

पाशुपतों की पञ्कारिका में 'साधन' के अन्तर्गत श्रुतारण मंत्र का विवरण केन्द्रों का विधान है । इससे तथा कीर्तों से संबद्ध निरवासतत्त्व-संहिता में मुद्ग उपासना का विधान है । इस उपासना के चार विभाग हैं — (१) मूल सूत्र (२) आदि उत्तर सूत्र (३) प्रथम मय-सूत्र और (४) पूर्व मुद्ग सूत्र । इसीके आचार पर कीर्तों में दो भेद—उत्तर कीर्त और पूर्व कीर्त हैं । उत्तर कीर्तों में साधन सूत्रों की शैवी-रूप में पूजा होती है किन्तु पूर्व कीर्तों में उसके अंग-विशेष की अर्चना का ही विधान है । इन कीर्तों का ६१० घणाम्बी में व्यापक प्रचार था । ये नारी-रूप धारण कर शैवी की उपासना करते थे ।

इन्हीं से संबद्ध 'त्रिपुर सुन्दरी' का सिद्धांत है । इसमें भी उपसुक्त साधनाएँ दित्तार्थ देती हैं । इस मत में शिव-शक्ति के सामरस्य की 'सुन्दरी' कहते हैं । इसमें शक्ति-तत्त्व प्रधान है । सुन्दरी का रूप में कामेश्वर और कामेश्वरी दोनों का समावयव है । यह सुन्दरी कियौरी या तिरय पोषधकर्षी है । इनकी उपासना के लिए साधक को कियौरी रूप धारण करना अनिवार्य है ।

परब्रह्म के रूप में शिव-शक्ति के संगम की कल्पना के साथ ही मानव शरीर की संघार का रूप भी माना गया है । इस शरीर के मस्तिष्क में सहस्रार में शिव का निवास है तथा मूलाधार में शक्ति कुंडलिनो-रूप में रहती है । इस शक्ति का शिव से संगम कल्पना ही परब्रह्म को प्राप्त करता है ।

शिव-शक्ति के इस संयोग में हृद्योप की साधना आवश्यक है । मानव शरीर के बाईं और दाहिनी ओर चमत्क इडा और विगता नाडियाँ हैं । भेदरस्य के भीतर से होकर गुणमना नाड़ी जाती है । प्राण और अपान वायु को इसी गुण-मना नाड़ी के द्वारा मिश्रकर साधक ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

शिव-शक्ति का यह स्वरूप पुरुष और स्त्री रूप में संसार में भी है। जिस प्रकार अंतिम तत्त्व शिव-शक्ति का संगम है उसी प्रकार लौकिक धरातल पर भी स्त्री-पुरुष का संगम उसी मूल सत्य का रूप है। अतएव स्त्री-पुरुष को यह साधना अभिहित होकर करनी चाहिए। शिव और शक्ति का यही प्रतीक लिंग और भोगि है। दोनों का संयोग यज्ञ है।

परब्रह्म की इस प्राप्ति के लिए 'पंच मकार' की साधना है। इनके उपयोग के द्वारा सावक संसार के बन्धन से छूट जाता है क्योंकि यही जीव को बाँधनेवाले हैं। इनका उपयोग गुह के द्वारा ही सम्भव है। ये उस विष की भाँति हैं जो कि उचित प्रयोग के द्वारा विष के प्रभाव को नष्ट कर सकते हैं पर इनका दुष्प्रयोग प्राणघातक भी हो सकता है। अतएव यह साधना मुझ और जन-साधारण के लिए नहीं है।

वैष्णवों में मुझ उपासना नहीं है। बिष्णु और शक्ति का शू पारिक रूप मातर्जी दादाजी से प्राप्त है। कहीं-कहीं मोपी भाव भी मिलता है पर शक्ति का प्राणायाम वा जीवित स्त्री की उपासना नहीं मिलती। किन्तु इनका यह अर्थ नहीं है कि ये शैव-शाक्त से अप्रभावित रहे।

वैष्णवों ने भी ब्रह्म रस क लीला-हेतु को रूप—कृष्ण और राधा माने। यह लीला वृ दामन के निकु बों में हुई। कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और राधा शक्ति। इनका पारस्परिक सम्बन्ध ही 'हित' है। सारी सृष्टि में 'हित-तत्त्व' ही व्याप्त है। शिव देह से उस हित-तत्त्व का साक्षात्कार ही रस भक्ति है। इस वैष्णव भक्ति में पञ्चरात्रिक मंत्रमन्त्रमुक्त पूजा का प्रत्याख्यान हुआ और मुबनद्ध—तमालिपित रूप से मुपस उपास्यो का ध्यान एकमात्र साधना बनी। इसका बीज बीज और शैव-शाक्त उपासना में ही है। अन्तर इस बात का रहा कि इन वैष्णवों ने मुमम सरकार को शरीर के किसी अङ्ग में नहीं देखा। वैष्णव भक्तों के लिए कृष्ण की ऐतिहासिक परम्परा भी और नहीं आचार बनी। वृ दामन में राधा-कृष्ण का अहनिष्ठ विहार ही ध्येय बना। सहजिया वैष्णवों ने बृन्दावन का प्रतीकार्थक अर्थ स्त्री का शरीर लिया पर अन्य वैष्णवों ने उसे नहीं माना। लौकिक बृन्दावन ही निरम लीलास्वली है। वैष्णवों के उपासक में भी 'किशोरी वा सुन्दरी' तत्त्व ही है। यथार्थ में मध्ययुगीन वैष्णव धर्म की शू पारिकता में उपयुक्त सभी तत्त्वों का सम्मिश्रण है। इसी दार्शनिक आधार पर धर्म में शू पार की स्वीकृति हुई है।

चित्त में शू नार

पंडित हम धार्मिक चिन्तन में प्राप्त काम की चर्चा भी कर गए हैं। उसकी व्याख्या पर भी यहाँ संक्षेप में विचार कर लेना उपयुक्त होगा। यह कायात्मक

शिल्प विश्व-व्यापी है। इसने जो रूप हैं। एक तो वे रूप जिनकी श्रु शक्तिता अनुमानित है। उन्हें नाम प्रतीक माना जाता है। बाह्य रूप में उनकी श्रु शक्तिता प्रकट नहीं है। दूसरे प्रकार के शिल्प में नम्य श्रु मार बचका संभोग की मूर्तियाँ हैं। इनके सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित बात नहीं पता चल सकी है। अनुमान और तर्क के आधार पर चर्म में इनकी स्थिति पर अनेक विचार हैं। सही पर नीचे संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

सर्व विश्वास

इन मूर्तियों के सम्बन्ध में कुछ अर्थ-विश्वास प्रचलित हैं। इनके पीछे कोई तन्त्र प्रतीत नहीं होता। भारतीय मन्दिरों के श्रु गारशिल्प के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही प्रचलित विश्वास नीचे दिए जा रहे हैं —

(क) ये कस्याय-प्रद हैं

काम-विह्वल परम्परा से कस्याय प्रद माने जाते हैं। इसी कारण इनमें प्रतीकों का विकास हुआ है। मंदिरों के निर्माण के पीछे कस्याय की भावना विशेष रूप से रहती है। यह कस्याय मंदिर निर्माता और बर्षक तीनों के लिए लागू रहता है। अतएव मंदिरों में श्रु गारिक शिल्प बना दिए गए हैं। यह अर्थ-विश्वास ही कहा जायगा। इससे पीछे कोई तर्क नहीं है। ऐसे भी अनेक मंदिर हैं जिनमें ऐसा शिल्प नहीं है।

(ख) ये प्राकृतिक व्याधि से रक्षा करते हैं

उड़ीसा में इस श्रु गार-शिल्प का यह एक अन्य कारण मुझे बतलाया जाता है। कहा जाता है कि जिन मंदिरों में ऐसे शिल्प हैं वे प्राकृतिक व्याधियों से मुक्त रहते हैं। ऐसी प्राकृतिक व्याधियों में बिजली गिरना सबसे मुख्य है।

(ग) ये निर्माता के पाप के प्रायश्चित्त हैं

उज्जयिणी मंदिर के नाम-शिल्प के सम्बन्ध में यह प्रचलित है कि हेमवती नामक एक स्त्री ने अश्रमा से अभिचार कर लिया जिसके प्रायश्चित्त-रूप उसने एक यज्ञ किया और इसी सम्बन्ध में अपने दुष्कर्मों की लोक में प्रदर्शित करनेवाली प्रतिमाएँ बेराज्यों पर बनवाईं। इन कथा में कोई भी तथ्य प्रतीत नहीं होता। यह केवल एक ही स्वार्थ के लिए लागू है गर्वण के लिए नहीं। यह भी विश्वास प्रचलित है कि मान स्त्री को देखने के पाप का प्रायश्चित्त इनको देखने से हो जाता है।

(घ) राक्षसों से रक्षा के लिए हैं

कुछ लोगों का विचार है कि ऐसी प्रतिमाओं के निर्माण से राक्षसादि की दुर्दृष्टि देवानियों पर नहीं पड़ती।

(घ) वे भक्तों की परीक्षा के लिए हैं

वे काम-भूतियाँ सामान्यतः बाहर के मंडपों पर बनाई जाती हैं। गर्भगृह के मंडप पर वहाँ देव-दर्शन होता है वहाँ इन्हें नहीं बनाते हैं। इनका उद्देश्य यह हो सकता है कि देव-दर्शन के पूर्व भक्त इन प्रतिमाओं को देखकर अपने हृदय की पवित्रता की परीक्षा कर लें। यदि इन्हें देखकर उसके हृदय में विकार उत्पन्न होता है तो वह अपनी देव-दर्शन का अधिकारी नहीं है।

(च) वे कलिवृत्त-व्यवहार के प्रदर्शक हैं

कसियुग में होनेवाले व्यवहार का पूर्ण अनुमान कर इनका प्रदर्शन किया गया है।

उपरोक्त सभी शंभु विश्वास महत्त्वहीन हैं। इनसे इन चित्र का कारण प्रकट नहीं होता है।

धार्मिक आचार

इन चित्रों का आचार धार्मिक है। इस प्रकार की रचना के लिए उस समय धार्मिक स्वीकृति प्राप्त थी। यदि ऐसा न होता तो इनका निर्माण संभव न होता। इसके पीछे एक पुष्ट परम्परा थी जिसकी ओर उँवनी उठाना सरल नहीं था।

धर्म में काम भावना सदा से रही। भारत में तो धार्मिक क्रियाओं को श्रुति-कारिक सम्प्रदायों और काम-क्रियाओं को धार्मिक रूप प्रदान करने की परम्परा रही है। धर्म में काम के इस स्वरूप को बीड़ों के महायान संप्रदाय और उसके बाद में विकसित रूप बज्रयान संप्रदाय और महायान आदि से विशेष बल मिला। इन संप्रदायों की अपनी मान्यताएँ और साधनाएँ थीं जिनमें संभोग को विशेष स्थान था। भारत के श्रुति-गार-बहुत मंदिरों का जिस समय निर्माण हुआ उस समय इन संप्रदायों का विशेष और था। ऐसा भी अनुमान है कि ये मंदिर अधिकतर इन संप्रदायों के केन्द्र थे। यदि वे उनके केन्द्र न भी रहे हों तो भी अपनी सर्वसाक्षी प्रकृति के कारण हिन्दू धर्म ने सभी साधनाओं को अपने मंदिरों में स्थान देने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप इन मंदिरों में तरकासीन धार्मिक भावना अपने पूर्ण रूप में व्यक्त हुई है।

इसके अतिरिक्त मंदिर के संबंध में भी भारतीय विश्वास अपने ही प्रकार की है। मंदिर इन्द्रदेव का गृह और शक्ति का प्रतीक है। शक्ति की प्रत्येक क्रिया धार्मिक और ईश्वर की स्थापकता का बतलानेवासी है। ईश्वर की इनी स्थापकता की ओर लक्षित करने के लिए ऐसे चित्र निर्मित किए गए।

हिन्दू धर्म में चार पुरुषार्थ माने गए हैं। इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करना मानव का कर्तव्य है। मंदिर के विभिन्न अंग इन चारों पुरुषार्थों— धर्म धर्म काम और मोक्ष को व्यक्त करनेवाले हैं। काम-श्रुति का धर्म व्यक्ति कामात्मक विषय द्वारा की गई है।

द्वितीयकला की परम्परा

इसी प्रसंग में द्वितीयकला की परंपरा का अवलोकन कर लेना चाहिए। वैशालय और रत्न निर्माण का संस्कार 'द्वितीयकला' तथा 'रत्न-शास्त्र' में दिया गया है। इनके अनुसार वैशालय तथा रत्नों के चार विभाग माने गए हैं। सबसे नीचे का विभाग धर्मपुरुषार्थ के लिए निश्चित है। दूसरे भाग में धर्म पुरुषार्थ दिखाते हैं। इसका ऊपर तीसरा भाग कामपुरुषार्थ के लिए है और सबसे ऊपर का भाग मोक्षपुरुषार्थ का है। प्रत्येक भाग में उस पुरुषार्थ से संबंधित कर्म विकसित करना चाहिए। इस परंपरा के कारण भी काम का प्रवेश अनायास ही द्वितीय में हो गया।

भारतीय द्वितीयकला में काम के कारणों के अंतर्गत जो धार्मिक प्रचार दिया गया है उसमें काम भावना की स्पष्ट स्वीकृति है। यही काम-भावना अन्य देशों के धार्मिक श्रुति-शास्त्रिक द्वितीयकला के पीछे भी है। कहीं यह स्पष्ट और कहीं प्रतीक रूप में व्यक्त होती है। ईसाई धर्म में भी मिरजे के संबंध की भावना श्रुति-शास्त्रिक है। जिस समय कोई स्त्री 'जन्म' बनती है वह मिरजे की बधू या ईसा की बधू मानी जाने लगती है। यथावत् में 'जन्म' बनना उनके मिरजे से या ईसा से विवाह है। जिस समय पुरुष पावरी बनता है या मिरजे का स्वल्प नारीयक मानकर वह उसका पति बनता है तथा उससे उसका विवाह होता है जिसका प्रतीक उसकी धार्मिक बंधुता है। इसी धार्मिक श्रुति-शास्त्रिकता के कारण ही मिरजों के द्वितीयकला में भी श्रुति-शास्त्रिकता आ गई है। यह श्रुति-शास्त्रिकता यहाँ तक बढ़ गई है कि स्त्रियों की जन्म मूर्तियों का अर्घ्य शुभ माना जाने लगा और ऐसी जन्म मूर्तियाँ मिरजापत्नों के ऊपर बनाई जाने लगी थीं। कभी-कभी इस जन्मता को द्वितीयकला के लिए विभिन्न प्रतीकों का उनके स्थान पर प्रयोग किया गया।

धर्म में काम-श्रुति की इस स्वीकृति से मध्ययुगीन श्रुति-शास्त्र की पृष्ठ-भूमि का काम किया। इसी पृष्ठ-भूमि पर भक्ति-साहित्य के श्रुति-शास्त्र का निर्माण हुआ। उनके उन्मुक्त श्रुति-शास्त्र का रहस्य धर्म में काम की इसी स्वीकृति में निहित है।

तृतीय अध्याय भक्ति-श्रृ गार की पीठिका

धर्म और विशेषकर भारतीय हिन्दू धर्म में काम की स्वीकृति पिछले शताब्दियों में बिकलाई जा चुकी है। इस स्वीकृति का प्रभाव भक्ति-साहित्य पर पड़ा होगा किन्तु इससे भी अधिक भक्ति-साहित्य को प्रभावित करनेवासी काम की यह परंपरा है जो कि सिद्धनाथ सूत्रियों और वैष्णवों में भक्ति-काल के पूर्व एक अत्यंत जीवंत रूप में प्रचलित थी। इनका संकट पीछे किया जा चुका है। भक्ति-श्रृ गार की पीठिका रूप में इनका निर्दुःख अवलोकन आवश्यक है।

सिद्ध और वाचों में काम की परंपरा

सिद्ध बौद्ध धर्म की परंपरा में आते हैं। उत्तर बौद्ध धर्म में हीनयान और महायान को छांटते हो गई थीं। महायान छाया आये चलकर महायान और जयवान में विकसित हुई। इसी महायान छाया के प्रचारकों में चीरान्नी सिद्धों का नाम आता है। यहाँ तक पहुँचकर बौद्ध धर्म इनका विहृत हो गया था कि उसे पहचानना भी कठिन है। इन सिद्धों में प्रजा और उपाय शायद निर्वास की उपलब्धि माना है। प्रजा और उपाय के मिलन की अवस्था 'सुमनस कहलाती है और यह 'महामुक्त' का प्रतीक है। आगे चलकर प्रजा स्त्री का और उपाय पुरुष का प्रतीक बन गया तथा संन्यास-मुक्त ही 'महामुक्त' माना जाने लगा। इस प्रकार सिद्धों में श्रृ गार की ऐतिहासिक और श्रावहारिक दोनों रूपों में स्वीकृति थी। इन्होंने अपने पदों में इस महामुक्त का अत्यंत श्रृ गार रूपकों द्वारा किया है।

माघ संन्यास के कुछ आचार्यों की पचना सिद्धों में भी होती है। इसलिए कुछ बौद्ध अनुमान करते हैं कि माघ पंच का विकास सिद्धों से हुआ है। किन्तु माघ पंच की मूल भावना सिद्धों से मिलती है। ये पंच का माघि माघ मान कर अपने विकास का सिद्धों से पृथक स्रोत प्रदर्शित करते हैं। इन माघों में सिद्धों की-सी अतिथय श्रृ पारिकता नहीं थी। इन्होंने नैतिकता का ध्यान रखा। इन्होंने श्रृ-बोध को अपनाया और महसार में शिष्य तथा मूलाधार में धर्म-व्यवस्था की स्थापना की। हिन्दी आनाथमी शाखा के सत कवियों पर इनका प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी सामान्य रूप श्रृ गार की अवलोकना की किन्तु संभवतः सूत्रों और वैष्णवों

के प्रभाव के कारण प्रेम को बड़ा महत्व दिया। इस प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए क्षमाभंगी भक्तों ने श्रृंगार की सम्भावनी ली है पर आसंबत की निराकारिता तथा आध्यात्मिक भिन्न वियोग की अभिव्यक्ति के कारण यह सम्भावनी रूपक होकर ही रह गई है। इनमें श्रृंगार रस के कुछ अवयव भिन्न सकते हैं पर श्रृंगार का वह विस्तृत विवेचन नहीं मिलता जो कि सूझी और बँव्यास कवियों में प्राप्त है। इन्होंने प्रिय-मिसल के आनन्द-वर्जन में सिद्ध और नाचो की सम्भावनी ली ली पर उसमें स्पष्टता नहीं उत्पन्न होने ली। नाचों का कुछ प्रभाव सूझी भक्तों पर भी पड़ा जिसके कारण उनमें अनेक योम-परक उत्पन्न जा गए हैं। सूझियों का प्रेमी अपने प्रेम-व्यय में योमी का ही रूप धारण करता है। यह नाचों के प्रथम प्रभाव का चोतक है।

सूझियों में काम-तत्त्व

सूझी धारा का मूल स्रोत विदेशी है। यह इस्लाम की एक शाखा है जिसमें आत्मिक प्रेम को ही महत्व दिया गया है। इस्लाम के चारों खसीकाओं अर्थात् अबूबकर उमर उममान और अली के उमान में सूझियों का विरोध न था तथा यह संप्रदाय अमरा बराबरा भीरिया और भिन्न जाति तक फैल गया था। इस संप्रदाय में अनेक प्रसिद्ध गंत हो गए हैं जिन्होंने प्रेम के गीत गाए तथा अपने विचारों पर प्राणों का उत्सर्ग भी कर दिया। प्रेम के ऐसे पीठ गानेवालों में 'रबिया' का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। यह बसरे की रहनेवाली स्त्री थी। इसके अतिरिक्त मौलाना रुम अलार, हाकिम तथा जामी आदि भी ऊँचे दर्जे के सूझी कवि हुए हैं। कुछ सोम उमर लम्बाम की कथाइयों में व्यक्त सुरा-शुबरी-प्रेम को भी सूझी भावनाओं से पुष्ट बताया है। इस प्रकार सूझी धर्म प्रेम की भक्ति पर लड़ा हुआ है और इनने इस्लाम-जवाही द्वारा इस्लाम-हूडीकी को व्यक्त करने का प्रयत्न किया।

यही सूझी धारा मुहम्मद बिन-क़ासिम के साथ भारतवर्ष आई। वहाँ के दार्शनिक शातावरण में जिसमें अर्द्धत हठयोग राजयोग और श्रृंगार की धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं यह सूझी धर्म पतया। अपनी अहिष्णुता के कारण सूझी भक्त भारतीय धार्मिक शातावरण को बड़े अर्थ में अपना सने और जन-संपर्क के द्वारा भारतीय धार्मिक जीवन के गभीर अर्थों को निकट से जान सक। इन्होंने अपनी मम नहीं काय्य रीति द्वारा भारतीय लोकजीवन की प्रिय प्रेम-कथाओं को अर्द्धत कर उन्हें भारतीयों के समझा रगा। अपने धार्मिक मिशनों को व्यक्त करनेवाली ऐसी अनेक प्रेममयी नाटकियाएँ उन्हें मिल गई जिन्हें उन्होंने अत्यंत साहजगुणित का रूप पर स्वीकार किया। ऐसी ही कहानियाँ पद्मावत चित्रावती आदि से प्राप्त हैं।

इस प्रकार सूझी धर्मों के लिए अपने साहित्य में श्रृंगार को स्वीकार करने

में कोई कठिनाई नहीं हुई। उनके अपने धर्म में इसकी स्वीकृति थी, भारतीय धार्मिक आचार्य भी इसका अनुकूल या तथा जिस माध्यम (लोककथा) को इन्होंने अपनाया वह इससे मोत-प्रोत था।

ईश्वर धर्म में काम-तत्त्व

संपूर्ण भक्ति-काव्य पर ईश्वर धर्म का मध्याधिक प्रभाव पड़ा है। भक्ति काव्य का मूल प्रेरणा-स्रोत यही है। इसमें काम-तत्त्व की स्वीकृत अत्यंत महत्त्वपूर्ण रूप में हुई है। उसीका मन्दिपत वर्धन नीचे किया जा रहा है।

आत्मकार्य भक्तों की शुभार भक्ति

भक्ति का प्रादुर्भाव दक्षिण में माना जाता है। तमिल प्रांत में ईसा की दूसरी सताब्दी से ही सकलमय भयबान के प्रति शुभारिक भक्ति कर रहे थे। ये भक्त 'आत्मकार्य' या 'आत्मकार्य' कहलाते हैं। इनके प्रेम भक्तिपरक गीतों का संग्रह 'प्रथमम्' नाम से प्रसिद्ध है। इन आत्मकार्यों की संख्या बारह है।

ये आत्मकार्य विष्णु के परम भक्त थे। इनमें से अधिकतर कृष्ण-स्वरूप के उपासक थे और कृष्ण-सीसामों से पूर्णतः परिचित थे। इनकी भक्ति वात्सल्य, सकल शक्त और माधुर्य भाव की थी। इन आत्मकार्यों की सबसे बड़ी विशेषता इनकी 'गोपी भाव' की भक्ति थी; ये ही गोपी-भाव की भक्ति के प्रवर्तक थे। 'गोपी भाव' में भक्त अपना आत्ममय यशोदा कृष्ण-मत्ता और गोपियों से करता है। यही भावना ईश्वर आत्मकार्य हरिदासी आदि मंत्रधारों में विशेष रूप से विकसित हुई। इस आत्मकार्य की रोचक कथा राजा कुमरोत्तर के सम्बन्ध में प्रचलित है। वे स्वयं आत्मकार्य थे। राम उनके इष्ट देव थे। राम-कथा सुनते-सुनते वे इतने भाव-विभोर हो सड़ते थे कि राम रावण युद्ध के प्रसंग में वे अपनी सेना को राम के सहायताार्थ सुसज्जित करने का आदेश देने लगते थे।

माधुर्य भक्ति की वृष्टि से आत्मकार्यों में अंदाज सठकोप (जन्मानकार्य) तथा तिस्रमंथय महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने कृष्ण प्रेमिकाओं—गोपियों से अपना आत्म किया और कृष्ण प्रेम के मिसल और विरह के हृदयस्पर्शी पीठ काए। कृष्ण-प्रेम में वे इतने विभोर हो जाते थे कि समस्त सारिक भावों का इनमें उद्यम हो जाता था। इन्होंने आध्यात्मिक प्रेम को पूर्णतः मानवीय धरातल पर व्यक्त किया है। भक्त सठकोप वे ईश्वर द्वारा अपने प्रेम की वृष्टि पूर्णतः शीतिक धरातल पर मानी है।

विभिन्न आत्मकार्यों की पारस्परिक प्रेम भक्ति में सूक्ष्म अंतर है। वामुना-कार्य में 'माधुर्य रस्यम्' में इन अंतर को स्पष्ट किया है। उनका अनुसार तिस्र-मंथय आत्मकार्य का प्रेम प्रिय से मित्य-संयोग के असौकरिक आत्मकार्य की अनिभ्यक्ति

करनेवाला है। गन्मासवार का प्रेम प्रिय को प्राप्त करने में प्रयत्नशील नायिका का है। इसमें प्रिय मिशन की तीव्र अभिभाषा हृदय की निरंतर आसक्ति कच्ची रहती है। गन्मासवार ने इस प्रेम को तुषमिस' अथवा मितहुकुमिडुमी' की संज्ञा दी है। छठकोप ने इस प्रेम में दूरी प्रवेश द्वारा तबीनता उत्पन्न की है। पुराणों में दूरी का उल्लेख नहीं है। छठकोप ने दूरी द्वारा कृष्ण के सौंदर्य और यौवन का उल्लेख कर नायिका के हृदय में धिमनेच्छा उत्पन्न की है। नायिका अभिसार करती है पर कृष्ण संवेत-स्वप्न पर नहीं बाते हैं। ऐसी विप्रसम्भा नायिका के रूप में छठकोप ने अपने मनोद्गार प्रकट किए हैं।

वासवारों का प्रेम एकपक्षीय नहीं है। इच्छेद भी मल्ल की ओर बाह्य है और उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। इस प्रकार से मल्ल के मूस सौन में ही शृंगार की स्वीकृति है तथा गोपी-भाव एवं दूरी प्रसंग के बीच सन्निहित वे बिनका पुन बिकास मल्ल-आसीन शृंगार में हुआ है।

बैष्णवाचार्यों द्वारा काम की स्वीकृति

जातवारों के बाद भक्ति के क्षेत्र में संकर और उनके घड़ौठ का विरोध करनेवासे चार बैष्णवाचार्य—रामानुज मध्व निम्बार्क और विष्णुस्वामी का आधिपत्य होगा है। इन्होंने बैष्णव आस्थासम को पुष्ट धार्मिक व्यापार प्रदान किया और इनके धिष्य-वर्ग इस वर्म को उत्तर में लाए। परम घड़ौठ वाली संकर ने अपने कुछ स्त्रीओं में शृंगारिक उन्नेत किए हैं। रामानुजाचार्य ने राम भक्ति का प्रचार किया। जातवारों के बड़े भजन थे। इन्होंने लक्ष्मी-नारायण की उगायना कहाई और कृष्ण की पौराणिक लीलाओं की उवेता की। उनकी भक्ति चारण्य एवं चाम्य भाव की थी। कहा जाता है कि उनके धिष्य पाराधर भट्ट ने राम की सामाद रूप में उगायना की और राम की भोग मूनि अयोप्या का धिष्य बर्णन किया। मध्व निम्बार्क और विष्णुस्वामी ने कृष्ण की भक्ति स्वीकार की और उनकी पौराणिक लीलाओं को स्वीकार किया। इन लीलाओं में उनकी कोपियों के साथ की शृंगार-लीलाएँ धार्मिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने धार्मिक स्वीकृति के साथ शृंगार को धर्म का र्थग बना दिया जिसके कारण भक्ति-संप्रदायों में शृंगार ने बागयन का मार्ग उमूल ही गया।

पुराणों में शृंगार का स्वरूप

हिन्दी भक्ति-वाच्यों में रामायण महाभारत और पुराणों का मकसे अधिक प्रभाव पड़ा है। पंचार्य में हिन्दू धर्म के लोचरक रूप के यही लोग हैं। इनमें महाभारत और रामायण में शृंगार के संकेतों का उल्लेख हम पीछे कर लाए

हैं। डॉ० नयचठीप्रसाद सिंह ने अपने ग्रन्थ 'राम भक्ति में रक्तिक प्रसंखाम' में रामायण के श्रृंगारिक स्थलों का विस्तृत उल्लेख किया है।

रामायण और महाभारत से कहीं अधिक विस्तार से हिन्दू-देवी-देवताओं की श्रृंगारिक सीमाएँ पुराणों में प्रकट हुई हैं। इन पुराणों में से कुछ तो काफ़ी प्राचीन हैं, और कुछ तो ठीक मत्स्यकाल के पूर्व तक के प्रतीत होते हैं। जो भी इनका उल्लेख रहा हो इतना निश्चित है कि ये सभी मत्स्यकाल के पूर्व में पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुके थे।

मत्स्यकालीन साहित्य में कृष्ण को छोड़कर राम और अन्य देवी-देवताओं के श्रृंगार का उल्लेख नहीं-सा ही है। पुराणों में प्राप्त हमकी श्रृंगार-कथाओं का महत्त्व इतना ही है कि ये मत्स्य में श्रृंगार की स्वीकृति देती हैं। इस साहित्य में मुख्य रूप से कृष्ण की श्रृंगार-सीमाएँ हैं और इन सीमाओं पर पुराणों के कृष्ण-भक्ति का बड़ा प्रभाव पड़ा है।

पुराणों में कृष्ण-भक्ति का विकास एक राक्षस एवं विस्तृत विषय है। उसका विस्तार से अध्ययन अपेक्षित नहीं है; यहाँ पर तो कृष्ण-सीमा के कुछ महत्त्वपूर्ण उल्लेखों को ही देना अभीष्ट है।

महाभारत में कृष्ण की श्रृंगार-सीमाओं का उल्लेख है। संभव है कि महाभारत की रचना के समय तक गोपी-कृष्ण की प्रेम-कथाओं का निर्माण न हुआ हो। यदि ऐसा न होता तो कृष्ण के द्रुपदों की परिचयना कराते समय विभुपाद उनके गोपी-संबन्ध का उल्लेख करना न भूलता।

बिष्णुपुराण संभवतः प्राचीनतम पुण्य है। इसमें कृष्ण-सीमा का विस्तृत उल्लेख है किन्तु कृष्ण बिष्णु के अंशानुसार हैं। देवायनार्थ गोपियों के रूप में बिष्णु के विहारार्थ अवतीर्ण हुईं।

कृष्ण गोप-गोपियों के प्रिय हैं किन्तु इसका मुख्य कारण उनकी बीरता एवं शरीरकर शक्ति है। बिष्णुपुराण के प्रारम्भिक स्थलों पर कालिय-वधन के अन्तर्गत पर गोपियों के विनाश में कृष्ण के प्रति श्रृंगारिक प्रेम का संकेत मिलता है। विनाश करती हुई गोपियों कहती हैं

विनाश को बिना सूर्य बिना चंद्रमा का विना।

बिना शूरेण का गावो बिना कृष्णेन को वर ॥१२-४-२७

सूर्य के बिना दिन कैसा? चन्द्रमा के बिना रात्रि कैसी? सौंड़ के बिना पीरें क्या? ऐसे ही कृष्ण के बिना जग में भी क्या रहा है।

यहाँ बिना शूरेण का गावो' उपमा मान ली नहीं है। इसके पीछे यह स्पष्ट संकेत है कि कृष्ण केवल शरीरकारी के नाते ही प्रिय नहीं हैं, बल्कि निज

प्रकार बिना चाँड़ के पाप कामार्त रह जाती है उसी प्रकार गोपियों की कामान्वित चाँड़ करनेवाले एकमात्र कृष्ण ही हैं और उनके बिना यह नवित्त चाँड़ नहीं हो सकेगी तथा उनका जीवन व्यर्थ जाता जाएगा। कृष्ण और गोपियों के काम-संबन्ध की यह प्रथम स्वीकृति है।

बिष्णुपुराण के षैरहवें अध्याय में रास का प्रसंग है। कृष्ण की मुरली के आकर्षण से गोपियाँ रास-मंडप में आ जाती हैं। वहाँ कृष्ण उन्हें मही मिसते हैं। उनके तथा एक अन्य गोपी के पद-चिह्नों को देत कर गोपियाँ अनुमान करती हैं कि वे अकेले नहीं हैं तथा उन्होंने बाह्य में उक्त सौभाग्यशासिनी गोपी को भी ख्याप दिया था। गोपियाँ यमुना तट पर कृष्ण-सीत्ताएँ करने लगती हैं। जमी समय कृष्ण प्रकट होते हैं और रास-मंडल का निर्माण करते हुए रास करते हैं।

गोपी-प्रेम का दूसरा उल्लेख कृष्ण के मञ्जु-गमन के अक्षर पर गोपियों के विसाप में है। इस विसाप में ममर-वनिताओं के कृपाकर्षण में प्रैतकर उन्हें मूस आने का विरोध उल्लेख है।

बिष्णुपुराण में दुष्का का उल्लेख नहीं है। हाँ चौबीसवें अध्याय में बल राम के अज्ञापन पर गोपियाँ उन्हें अपार्णम देनी हुईं उनका मञ्जु की भागिर्यों के आकर्षण में कैसने का अन्तः लिए अपने माता पिता बन्धु-बांधव तथा पति के त्याग का उल्लेख कर हताश होकर कहती हैं कि हमें उनसे क्या मतलब। जब उनकी हमारे बिना निम पई है तो हम भी उनके बिना निमा ही लेंगे। निराशा अपने सबसे करवस्व में मही व्यक्त हुई है।

भक्तों द्वारा लिए गए समस्त ममस्त प्रसंग बिष्णुपुराण में हैं, किन्तु उनका वर्णन संबन्धित है। रामादि के वर्णनों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो रचयिता इस बात से परिचित है कि उनके वर्णन सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहे हैं। यही कारण है कि समस्त संभावित नियंत्रण का उल्लेख प्रयोग किया है। परन्तु जहाँ कहीं गोपियों के विरह का प्रसंग है उनकी गोपियाँ न वैजय मुग्ध ही हैं बरन् कृष्ण-प्रेम में इस तरह पक चुकी हैं कि मर्यादाओं के प्रति मन्त्रण होते हुए भी उनको तोड़ने में वे चूकती नहीं हैं। उनके अपार्णम हृदय पर मीठा आवाग करनेवाले हैं और उनकी पीड़ा मभी की प्रमाणित करती है।

बिष्णुपुराण में भीर-हृदय प्रसंग नहीं है।

ब्रह्मभारत न परिशिष्ट हरिबंसपुराण में राम-सीता का संक्षिप्त उल्लेख है। रास-सीता प्रसंग में गोपियों की रति-प्रियता तथा कृष्ण के साथ

उनके रमण का ही उल्लेख है। इसमें कुम्भा का भी संक्षिप्त उल्लेख है, तथा कृष्ण के एक बार पुन गोवर्द्धन जाने का भी कथन है। कृष्ण नद-मधोरा से कुम्भ समाचार पूछते हैं किन्तु गोपियों के संबंध में वे मौन रहते हैं।

पद्मपुराण के उत्तर पाठ में कृष्ण-सीता का संक्षिप्त उल्लेख है किन्तु उनकी शुभारिक सीतार्थों का निर्वात अभाव है। इसके पाठान्तर में अक्षय नृन्वावन कृष्ण और राधा के माहात्म्य का वर्णन है। विटरनित्त्व के मतानुसार वे अर्ध रात में बोड़े गए हैं। इसका अनुसार नृन्वावन ही भयवान का प्रियतम नाम है। वह कुछ उत्तम से भी उत्तम और दुर्लभ से भी दुर्लभ है। यह तीनों लोकों में परम पुष्ट स्थान है। गोपियों का चित्त पुरानेबाल कृष्ण की प्राणवस्तुमा सीरासा है। वे आद्याप्रकृति हैं। भयवान कृष्ण के साथ वे सुवर्ण सिंहासन पर बिठा जाती हैं। कृष्ण प्रकृति की अंशभूता ज्यट सञ्चियों से सेवित है। नृन्वावन-अधीस्वरी चन्द्रावली भी उन्हें अत्यंत प्रिय हैं। श्री राधा और चन्द्रावली के दक्षिण भाग में सहस्र अमृत धृति कन्यारें तथा उनका नाम भाग में दिव्य वेशधारिणी देव कन्यारें रहती हैं। वे प्रलय-बापुरी में त्रिपुत्र निस्सकोच कृष्ण प्रेम में पगी तथा उनके अर्ध-सम को उत्सुक रहती हैं।

कृष्ण का द्वारका से नृन्वावन जाने का भी उल्लेख है। कृष्ण तीन रात्रि गोपीसमाजों के साथ बिहार करते हैं।

इसी अर्थ में राधा को कृष्ण की ज्ञाविन शक्ति महात्मनी जाति माना गया है। इन्हीं को सब कुछ समर्पण करना चाहिए। सब उपाय छोड़ कर जो श्रीराधा का आश्रय लेता है वह उन्हें (कृष्ण) अपने वश में कर लेता है। यह रहस्य स्वयं कृष्ण ने माहादेव को बतसाया है।

ऐसा अनुमान है कि राधा-सम्बन्धी अर्ध प्रक्षिप्त हैं।

भागवत में कृष्ण के प्रेमी स्वरूप ने पूर्ण महत्त्व प्राप्त कर लिया है। पूर्ण पुराणों के संक्षिप्त प्रसंगों का यही मन्वेष्ट विस्तार है तथा अनेक नए प्रसंगों को उद्भावना भी है। यही कारण है कि समयस्त नैज्जन्म सम्प्रदायों का यह सब अर्थ प्रमाण-अर्थ माना गया है।

गोपियों का कर्ण के प्रति आकर्षण बचपम से ही था किन्तु काम भाग का प्रथम मन्वेष्ट बंभुकासुर प्रसंग में प्रथम बार प्रकट होता है। भाववत्कार कहते हैं— पर गोपियों की कियारें केवल बाल्यकमय नहीं हैं। भाववत्कार का मकरन्द रस गोपियों ने अपने नैत्ररूप प्रवरों से भयवान के मुखारविन्द का मकरन्द रस पान करके दिन भर के बिच्छू की जगत छाँट ली और भयवान ने भी उनकी

साब भरी हँसी तथा विनय से युक्त प्रेम भरी ठिरछी बितवन का उत्कार करके बस में प्रवेश किया। धरतू श्रुतु में धरतू की घीतल बायु सभी की बसन छाँत करती है परन्तु गोपियों की बसन बीर भी बड़ जाती है क्योंकि उनका बित उनके हाथ में नहीं था थीकृष्ण ने उसे चुरा लिया था।

भागवत में वैकुण्ठीत बीरहरण रास युगल गीत कृष्ण का मधुराममम बुझा प्रसंग और भ्रमरभीत श्रु गारिक प्रसंग हैं।

वैकुण्ठीत में गोपियाँ कृष्ण की बँधी-धरनि सुनकर रूप-रुग और बँधी-धरनि के प्रभाव का वर्णन करती हैं। बँधी-धरनि सुनते ही उन्हें कृष्ण की याद हो जाती है और वे उनके ध्यान में मग्न हो जाती हैं। गोपियाँ कृष्ण के रूप पर मुग्ध होनेवाले सभी लोगों की प्रशंसा करती हैं।

बीमर्षे अध्याय में बीर-हरण प्रसंग है। एक दिन जब गोपियाँ जमुना में नग्न स्नान कर रही थी कृष्ण ने उनसे बस्त्र उठा लिए और खंबक पर चढ़कर उनसे परिहास करने लगे। गोपियों को पुरुष नग्न कर के उनको बस्त्र लीटाते हैं किन्तु कामार्ग गोपियाँ बस्त्र पहनकर भी वहाँ से नहीं हटती हैं। कृष्ण धरत राशि में रास करने का बचन दे कर उन्हें बिदा करते हैं।

रास-सीमा का विस्तृत वर्णन २६ से लेकर ३३ तक के पाँच अध्यायों में है।

प्रथम अध्याय में कृष्ण बँधी द्वारा गोपियों का रास के लिए बाह्मण करते हैं। उनके बाने पर कृष्ण उनसे परिहास करते हैं उन्हें बर की याद दिसाते हैं तथा सौट जाने का उपदेश देते हैं। बुद्धित गोपियाँ उन्हें अपना सर्वस्व बतलाती हैं। इसके बाद कृष्ण उनके माथ कीड़ा करने लगते हैं। वे गोपियों के समस्त काम स्वर्गों का स्वर्ग कर तथा जातिगत श्रुबन मयदात देव-कर्मण आदि के द्वारा उनका काम प्रदीप्त करते हैं तथा उनके माथ कीड़ा करते हैं। इसी समय गोपियों को कृष्ण-प्रेम का दर्ब होता है और वे अग्न्यर्पित हो जाते हैं।

द्वितीय अध्याय में बिरहिनी गोपियों का बिसाप तथा कृष्ण-सीमाधी के धनुकरण का उल्लेख है। इसी समय कृष्ण के पर बिह्वी के माथ-माथ एक अन्य गोपिका के पर-बिह्वी को देखकर वे उनके भाग्य की मराहता करती हैं। उपर कृष्ण के गाय जानेवासी गोपिका को भी गर्ब हो जाता है। फलस्वरूप कृष्ण उनका भी परित्याग कर देते हैं। गोपियों को बहु त्यगता गोपी मिल जाती है और वे सभी कृष्ण के मीन गाती हुई रमय रानी सौट जाती हैं।

तृतीय अध्याय में गोपिका-सीत है। गोपियाँ कृष्ण के कुर्बों का पाग अपने बिरह का वर्णन तथा उनके प्रकट होने की प्रार्थना करती हैं।

चतुर्थ अध्याय में कृष्ण प्रकट होते हैं। गोपियों का निरह बुर होता है। गोपियाँ कृष्ण के साथ प्रेम श्रीड़ा करती हैं। कृष्ण बतलाते हैं कि उनके प्रेम को और भी सुदृढ़ करने के लिए ही वे छिप गए थे। वे अपने को गोपियों के प्रेम के लक्ष्मी भी बतलाते हैं।

पंचम अध्याय में महारास प्रारम्भ होता है। बाँध होने पर जल-विहार होता है। रात रास समाप्त होता है। इसके बाद ध्रुवदेवजी कृष्ण की इस श्रृंगारिक सीता के सम्बन्ध में परीक्षित के संसर्गों का समाधान करते हैं।

छत्तालीसवें अध्याय में राम-कृष्ण के मधुरा-यमन का वर्णन तथा गोपियों के निरह का उल्लेख है। गोपियों को इस बात का अत्यधिक दुःख है कि जिन कृष्ण के लिए उन्होंने नर-नार, स्वजन-सम्बन्धी पति-पुत्र आदि छोड़े वही आज उनकी ओर देख तक नहीं रहे हैं। उन्हें मधुरा की स्त्रियों के भाग्य पर ईर्ष्या है और यह मय भी है कि चतुर भायर युवतियों में कृष्ण फँस भी जाएँ।

बयासीसवें अध्याय में कुम्भा-प्रसंग है। अड़तालीसवें अध्याय में कृष्ण कुम्भा को छिप गए बचन का पूरा करते हैं। वे उसके यहाँ रह कर श्रीड़ा करते हैं।

पियासीसवें तथा सैंतालिसवें अध्याय में सुप्रसिद्ध जमर-नीत का प्रसंग है। बयासीवें अध्याय में पूर्व-बहुत क बखर पर कुम्भोज में कृष्ण की गोपियों से भेंट होती है जहाँ वे उन्हें आरम्भान का उपदेश देते हैं।

उपर्युक्त पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि प्रायतन में आते-आते कृष्ण-सीता में नवीन प्रसंग आ गए। इन प्रसंगों में स्पष्ट श्रृंगारिकता है। इन सीताओं में सामाजिक मर्बादमों का प्रतिबन्धन है और नीतिकता की दृष्टि से वे अनुचित हैं। अपने हृदय-स्पर्शी धीरे मनोहर गुण तथा रोचक सौम्य धीरे श्रृंगारिक प्रसंगों की भरमार के कारण ही मनवान् बँधुवों का प्रमुख प्रसंग हो गया। इसकी इतनी महत्ता बढ़ी कि वेदों से भी अधिक इसे महत्त्व दिया जाने लगा। समस्त वैष्णव साहित्य पर भागवत् की छाया स्पष्ट और गहरी है।

आधुनिक वैष्णव संप्रदायों में भागवत के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पुराण ब्रह्म-वैवर्त है। श्रृंगारी वैष्णवता अपने उन्मुक्त रूप में इसी पुराण में व्यक्त हुई है। ऐसा अनुमान है कि १२वीं शताब्दी के कुछ ही पूर्व की यह रचना है। ब्रह्मवैवर्त में कृष्णसीता के रूप का कुछ विस्तृत अभ्ययन रोचक होया।

ब्रह्मवैवर्त के प्रथम लण्ड में मोक्ष का वैभववाली वर्णन है। योनीक भिक्षुक से परे निरयथाय है। वहाँ कृष्ण रहते हैं। उनको बयस किरीट है तथा वे पसरवार हैं। यो योप और योपी सभी निरह हैं।

राधा के संकष में ब्रह्मदेवता में अपनी कल्पना है। रास-मण्डल में कृष्ण के पास पार्ष्व से एक कन्या का आभिर्भाव हुआ। वह कन्या खीड़कर फूस से आई और उसने प्रभु के चरणों में धर्य दिया। सोसोक में रास के समय उत्पन्न होते ही दीड़ने के कारण उम कन्या का नाम राधा पड़ा। वह कृष्ण की प्राणेश्वरी देवी हुई। वह पोइसी नवयौवना पीम-यमोवरी बभूक पुण्या से भी सुखर रक्त ओष्ठों वाली मुकताङ्कि से भी सुन्दर वन्तावनी वाली साक्षात् सुन्दरता की सीमा धाम् प्यादि तथा विविध श्रु पारादि से विष्णुपित सुन्दर नय सुन्दर जंभा तथा बृहत् निर्जबबानी है। उसके लोमकूपों से पीपियाँ उत्पन्न हुई हैं।

ब्रह्मदेवता में राधा-कृष्ण के जगम की कथा भी एक तबीन और रोचक रूप में है। वह इस प्रकार है —

कृष्ण का बिरजा नामक एक गोपी पर प्रेम था। एक दिन राधा को छोड़ कर वे बिरजा के साथ बिहार कर रहे थे। राधा का इसकी सूचना मिली और वे तत्तास अपने विषय रथ पर बैठकर बिरजा के यहाँ बसीं। बिरजा के यहाँ डारपास रूप में थीबामा थे। उनके रोकने पर भी वे धतपूबक मन्दर बसी गईं। मन्दर पहुँचकर उन्होंने क्या देखा कि कृष्ण सम्पन्न हो गए हैं एवं बिरजा भय के कारण नवी बन गई है। राधा लौट आई। कृष्ण ने बिरजा को पुनः उसका पूर्व रूप प्रकाश किया एवं उनके साथ सम्मोष किया। शत्रुमणी होने के कारण उसका शत पुत्र हुए। एक बार छोटे पुत्र के कारण उसका कृष्ण से वियोग हुआ। वह अगुप्त रह गई। श्रीचवरा उसने छोटे पुत्र को सवण सागर होने का तथा अग्य पुत्रों को अग्य प्रकार के सामर होने का घाप दिया। इतना बाद कृष्ण आए और दोनों ने धूब सम्भाग किया। कृष्ण ने बिरजा को बर दिया कि वे मिरय सम्मोष किया करेंगे। राधा को यह सूचना मिली। दृष्ट होकर वे कोपमवन में बसी गईं। कृष्ण उन्हें मनाने आए। राधा ने कृष्ण की मरसना की और मानुपी यानि में मारण में जाकर जन्म लेने का घाप दिया। इतना कहकर वे कृष्ण की महान व निकाल देने का आदेश देनी हैं। यह सुनकर कृष्ण के मित्र थीबामा दृष्ट हो जाते हैं। राधा उन्हें भी घाप देती हैं। इन पर थीबामा भी राधा को मनुष्य की मीति काय करने के कारण मानवी होने तथा कृष्ण से १०० वर्ष तक के विवाह का घाप देते हैं। राधा के घाप में थीबामा पंतबुड और थीबामा के घाप से राधा रूप भानुनदिनी हुई।

ब्रह्मदेवता में राधा-कृष्ण की मीनामो का विष्णु उस्तैज है। जनेक लीसाई गई है। स्वान स्वान पर बीना के इदत्व का स्पष्ट उस्तैज है तथापि उनकी स्मृताता में कोई कमी नहीं है।

कृष्ण की तीन बर्ष की अवस्था में एक दिन समझी लेकर मंत्र गाय कराने गए। इसी बीच मामाजी कृष्ण ने नाम को मेधाच्छत्र कर दिया। मयकर ज़ांजी बाई। बर्षा होते लगी। नरक भयभीत हो गए। कृष्ण ने रोते रोते मंत्र का कण्ठ पकड़ लिया। नाम बड़े संकट में पड़ गए। इसी समय समस्त श्रुतार से विनूषित एक अतुल सुन्दरी वहाँ प्रकट होती है। नाम विस्मय में पड़ जाते हैं; फिर प्रणाम करने कहते हैं कि तर्षाचार्य के मुख से मैंने सुना है कि तुम हरि की प्रिया हो। वे हरि विष्णु हैं त्रिपुंज हैं। मैं मानव हूँ प्रपित हूँ अतः तुम इसे स जो श्रुत अपनी इच्छा पूरी करने के बाद इसे सौटा देना। वे कृष्ण को राधा को दे देते हैं। राधा हँसती है इस रहस्य को गोपनीय रखने को कहती है तथा नाम को बदाम देती है।

इसके उपरान्त राधा कामार्ति होकर कृष्ण को छाती से लगाकर उनका चुम्बन करती है। वे रासमच्छत्र का स्मरण करती हैं। इसी बीच मार्श य उन्हें एक अत्यन्त वैभवशाली रत्न मंडप दीप्त पड़ा। मंडप में जाकर क्या देखती हैं कि एक मुन्डर छप्पा पर एक किन्नोर से रखा है। अपनी ओर की ओर देखती है तो बाँध का बालक ग्राम्य है। वे विस्मय में पड़ जाती है पर नाम ही साथ उस मुन्डर को देखकर कामार्ति हो जाती है तथा उसे अपनाक देखने लगती है। मुन्डर (कृष्ण) उठकर उन्हें मोसोक की बाँध दिखाते हैं। अपना-उनका अन्धे बताते हैं, तथा कहते हैं कि बिना राधा के व सृष्टि करने में असमर्थ है। राधा आनारभूत है और कृष्ण बीजकप। इस प्रकार अन्धे बताकर वे राधा को निमग्नित करते हैं। इसी बीच वे बह्या आकर दोनों का विवाह करवाते हैं।

द्विज दोनों का मिसन होता है। दोनों एक-दूसरे को अपना बच्चा मुभा पान दिखाते हैं। कृष्ण राधा का भुन पकड़कर चुम्बन करते हैं और हरम से मगा कर बदन मिमिन करते हैं। वे राधा का चपुनु ज चुम्बन कर रति प्रारम्भ करते हैं। रति में कुह-भटिका विच्छिन्न हा जाती है कबरी लुप्त जाती है तथा आनकत घाबि विपरीत दिशा में मय जाते हैं। भूतन संमम से पुनकित राधा मूर्च्छित हा जाती है। पुन-रति प्रारम्भ होती है। अम-स-अम का समापन होता है। कृष्ण बाँध प्रकार से रति करते हैं। नरक और बन्ध से राधा को दान-विवाह कर देते हैं। कंकण-नककिची मंजीर आदि की प्पनि होती रहती है। कृष्ण पुन राधा को छप्पा पर लिगाकर कबरी मुनन ओर दिवन्ता कर देते हैं। वे राधा का र्पन धीम लेते हैं राधा समकी मुरमी धीम लेती है। दोनों एक-दूसरे का मम हर लेते हैं। इन प्रकार काम-मुठ समाप्त होने पर सस्मित, बक-सोचना राधा कृष्ण की मुरमी सौटा देती है और कृष्ण भी र्पन सौटा देते हैं। कृष्ण राधा का

श्रृंगार करने हैं। राधा भी कृष्ण के श्रृंगार को उत्पन्न होती है तो क्या देखती है कि कृष्ण विस्तार रूप छोड़ कर मन्द-मुक्त रूप धारण कर लुबा संभ्याकुल बालक के समान रोने लगते हैं। राधा भयभीत होकर रोने लगती है और बिर पड़ती है। कृष्ण भी राधे समते हैं। इसी बीच आकाशबानी होती है 'राधे! क्यों रोनी हा? कृष्ण के पद-कमला का स्मरण करो। रास-मण्डल तक प्रति रात्रि आकर यहाँ हरि के साथ तुम रति करोगी। अब बालक रूप अपने प्राणेश को लेकर पर जाओ। राधा कृष्ण को लेकर मन्द के यहाँ जाती है। बालक को मसाबा का देने हुए कहनी है गोष्ठ में स्वामी ने इस बालक को मुझे दिया था। इसके कारण मुझे बटिमाई हुई। पसीने से बस्त्र भीग गए, आकाश में बादल हैं रास्ता फिसलनेवाला है। तुम इस बालक को दूध पिलाकर प्रसन्न करो।

इस प्रकार से भूलाक म राधा-कृष्ण की प्रथम भेंट होती है विवाह होता है एवं सोहानरात ममती है। ब्रह्मवैवर्त में श्रृंगार का यह रूप कृष्ण की समा सीताओं में परिष्पाप्त है।

ब्रह्मवैवर्त में भीरहरण की सीसा कुछ भिन्न रूप में है। कृष्ण मन्म स्नान करती हुई गोपियों के बस्त्र और भोजन को छटा से धाते हैं। वे गोपियों की मन्म स्नान के लिए भरसमा करते हैं और कहते हैं कि बस्त्र धारण के लिए उगरे अपनी स्वामिनी के साथ हाथ जोड़कर पाचना करनी पड़ेगी। राधा यह सुनकर धोष-ध्यान द्वारा कृष्ण की स्तुति करती है। आँस सोलने पर वे क्या देखती है कि बस्त्र धीरे धीरे इन्ध तट पर रखे हुए हैं। इस प्रकार इस सीसा में भाववत् से स्वल्प परिवर्तन कर दिया गया है। यह परिवर्तन राधा के माहारम्य को प्रवर्धित करने के लिए किया गया है।

इस पुरुष म रास का विस्तृत वर्णन है। पुरुषकार में रास में रति के अनेकानेक अवसर उत्पन्न कर उनका विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण की बंदी की ध्वनि सुनते ही राधा कामातुर हाकर बड़बड़ हो जाती है। राधा की मूर्च्छा दूर होने पर कृष्ण उनका चुम्बन कर रतिमंथन में उन्हें ले जाने हैं। वहाँ पर वे वामगात्र बधित अष्टाविधि चुम्बन भासियन मस-मन्म हात धीरे मम्मोग करते हैं। राधा के बाद वे सभी गोत्रियों से रति करते हैं।

इसके बाद जस प्रीड़ा हानी है किन्तु गोत्रियों की सभी काम-दाति नहीं होती। वे अनेक प्रकार की काम चलाएँ करती हैं। राधा कृष्ण और गोत्रियों परस्पर एक-दूसरे का बार बार मन्म करती रहती हैं। कृष्ण पुन पाठ विधि चुम्बन और सासह विधि मंभोग करने हैं। कृष्ण ने प्रीड़ा के धारि मध्य भी बचमान से रति करने की वामगात्रीय विधि से भी अधिक मम्मोग करके रा

पूर्ण किया। इसी समय देवता आदि वहाँ आते हैं। कल्प गोपियों के साथ ममता स्नान करते हैं। पुन राधा-कल्प म बस्त्रों तथा मुरली आदि की स्तीना-सपटी प्रारम्भ हो जाती है। लोगों एक-दूसरे को मग्न करते हैं। तट पर आकर कल्प पुन विभिन्न विभिन्न प्रकार की श्रीझार्ण करते हैं।

फले हुए पुष्पों को देखकर राधा ने गोपियों को माता बताने की आज्ञा दी तथा उन्हें विविध कर्मों में निमग्न किया। इसके बाद मायन-भावन आदि हुआ। राधा ने राध में रति करके निर्मम स्वाम मनोहृत् स्वाम पुष्पोद्यान समधान तथा मोडीर, कबली चंपक भी कदंब तुमसी आदि बनों में रमण किया। फिर भी उनका मन भरा नहीं। गोपियाँ भी कल्प से विभिन्न प्रकार की श्रीझार्ण करती हैं। इसी समय कल्प राधा के साथ अलक्ष्मी हो जाते हैं। वे पुन राधा के साथ स्वाम-स्वाम पर सम्मोष करने हैं। समय शोषी म राधा का रूप बनाकर विपरीत रति करते हैं। इस उपरान्त जल बिहार कर विध्याम करते हैं। यहाँ पर अल्पकाल आकर उनके चरणों में देह ख्याम करते हैं।

दुसरे दिन कल्प को नापियों की याद आनी है। वे बसने के लिए राधा से आग्रह करते हैं। परन्तु राधा उनके कंधे पर चढ़कर बसने के लिए कहती है। कल्प अंतर्धान हो जाते हैं। राधा रोती हुई अन्दन दन पहुँचती है। वहाँ गोपियाँ मिसत्री हैं। कल्प भी प्रकट हो जाते हैं। नापियाँ उन्हें राम-मंजस म ल जाती हैं और स्वर्ण पीठ पर बैठाती हैं। कल्प विभिन्न रूप बनाकर उनके साथ श्रीझा करत हैं। कल्प राधा को लेकर उत्तमदम में जाते हैं और नामा प्रकार से विमान करत हैं। फिर जल श्रीझा कर वे गोपियों को बिदा करते हैं और राधा के साथ पुन बिहार करते हैं। इसी समय ९ शी करोड़ (९ अरब) गोपियाँ अनेक श्रृंगार प्रसाधन लेकर इनके पास आती हैं। वे इनकी सेवा म मग्न आती हैं। कल्प राधा के साथ एक-एक क्षण में सभी मूल करते हैं। इन प्रकार राससीमा समाप्त हुनी है।

इसी प्रकार स्यारह वर्ष बीग जाते हैं। एक दिन सुत-सम्मोष से क्सांग हुकर राधा से जाती है। वह एक भयानक स्वप्न देखती है और सीम होकर कल्प से कहती है कि पता नहीं क्या हुआवाला है? स्वप्न बताते-बताते वे रीम समती हैं। कल्प आध्यात्मिक मोय से स्वप्न का अर्थ बतलाकर शाक छाड़ने के लिए बहते हैं तथा बोध देने को जल पीझा करते हैं। कल्प-शाप की बात बठाकर अपना-पाना का अमेर बठात हैं किन्तु राधा पुन बुधित हा जाती है। कल्प सात्वता देकर जल श्रीझा करत हैं।

एक दिन सम्मोष-मुदा से मूर्च्छित राधा सा जाती है। कल्प उनका बुधन देने श्रृंगार करने हैं। इसी समय बह्या आदि आकर कल्प का शाप की याद

बिभाते हैं तथा राधा को सोते छोड़ कर जाने के लिए कहते हैं। कृष्ण छोड़ कर चले जाते हैं। जामने पर राधा विसाप करती है और सखियाँ प्रबोध करती हैं। इसी समय कृष्ण जाकर राधा का आसिन्न श्रृंगार भाँदि करते हैं। राधा को सखी रत्नमाता से घाव की बात बताकर उससे प्रार्थना करते हैं कि राधा को ममसाए, और तन्वात्म्य चले जाते हैं।

दूसरे दिन अक्षर आते हैं। कृष्ण को चाते देखकर राधा के आदेश से गोपियाँ अक्षर के रज को पयाघातों से बुर कर देती हैं, कृष्ण को बलस्वत से लया सेती है उन्हें बस्ती से बीजती है, मण कर देती है तथा अक्षर को शत बिराट कर देती है। कृष्ण राधा और अक्षर को आम्त्यात्म योम से समझाते हैं। इसी समय आकाश से एक रज आता है। कृष्ण मधुरा न जाकर घर लौट जाते हैं राधा के साथ रमन करते हैं और उसके सो जाने पर मधुराप मांवलिक कृत्य करा कर मधुरा चले जाते हैं।

मधुरा में कुम्भा की इच्छा पूर्ण कर कृष्ण उठे मोलोक भेज देते हैं वहाँ वह अश्रुमुषी नामक गोपी हो जाती है। यह कुम्भा पूर्व अन्न की पूर्ववस्था थी।

ब्रह्मवैवर्त में उदय प्रथम में उदय राधा के ऐश्वर्य-स्वरूप की स्तुति करते हैं तथा बारंबार कृष्ण के जाने की बात कह कर उन्हें साम्बता देने हैं। वे राधा कृष्ण के अमेद की बात बतसाते हैं। इसी समय सखियाँ कृष्ण को उपार्जन देती हैं। रत्नमाता तथा एक अन्य सखी उनके ऐश्वर्य-स्वरूप का वर्णन कर माप की बात बतानी हैं। बिरह-शोक में मूर्च्छित राधा चेतना जाने पर उदय को मधुरा जाने का सन्देश देती है और कहती है 'मुझ कोई क्या प्रबोध दया? कृष्ण के बिना मैं ब्रह्म बीजक बेकार है। मेरे समान दुखित संसार क्या श्रैलोक्य में भी कोई नहीं है। कल्पवृक्ष प्राप्त कर भी मैं दरिद्र की बरिद्ध रह गई। मैं उनको कैसे मूँ ?

उदय जाने को तत्पर होने हैं। उसी समय माधमी नामक गोपी उन्हें रोक कर राधा से निबूझ ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहनी है। राधा कर्म क्त्य बिराट पुरुष काम-निरुपण भाँदि कर कृष्ण भजन करने का कहनी है। उदय ने जाने पर राधा विसाप करती है।

मधुरा में उदय कृष्ण से ब्रज जाने के लिए कहते हैं। कृष्ण स्वप्न में जाने का बचन देने हैं। कृष्ण स्वप्न में राधा को माँवना और ज्ञान देने हैं तथा मधोबा का शानपान करने हैं।

ती बर्य बाद अर्धश-पूजा के अवसर पर शिखाभ्रम में राधा-कृष्ण की श्रेष्ठ होती है। दोनों बिहार करने हैं। कृष्ण अपने-दोनों की अमेदना बतसाते हैं तथा

कहते हैं कि तुम्ही सीता थीं शीपवी तुम्हारी धाया है। फिर वे अनेकानेक प्रकार से राधा के साथ जी-हू वषों तक भोग विनास करते हैं। उसके बाद सभी को योसोक भेज देते हैं।

सहस्रवर्ष के इन वर्षनों में काम-शास्त्र का बड़ा हुआ प्रभाव दृष्टियोग्य होता है। जगह जगह पर सम्मोग का बर्नन किया गया है और उसको महत्ता प्रदान की गई है। राधा-कृष्ण की यह विनास-सीमा मल्ल-कवियों की प्रेरणादायिनी रही है। भक्त-कवियों ने जहाँ कथा-स्वरूप और रचना मर्म में भावबल का आघात किया है वहाँ राधा-कृष्ण की सीतारों में स्तुतना विनासिता का उम्मुनन चित्रण सहस्रवर्ष से प्रभावित होकर किया है।

सहस्रिया ब्रह्मण और उनका परकीया तत्व

जिस समय माध योमी परिषद में सिद्धों के विद्वद् अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे उसी समय बंगाल में सहस्रिया ब्रह्मणों और उनकी परकीयोपासना का प्रादुर्भाव हो रहा था। इसी प्रभाव के कारण बारहवीं शताब्दी में राधा बस्तमसेन ने एक 'बाष्ठासिनी स्त्री पथिनी' को पटरानी का पद प्रदान किया था। यही नहीं बलिराम गोस्वामी ने भासिनी नाम की एक स्त्री रच रखी थी जिसकी प्रसंसा बलिराम तत्व बलिराम पटन और बलिराम लीलामृत श्रमो में है। राधा लक्ष्मणसेन के दरबार में भी पुरी की एक देवदासी थी जिसकी प्रसंसा अपदेव ने की है।

ब्रह्मणों में परकीया भाव का विकास राधा-कृष्ण के सम्बन्ध को लेकर हुआ है। सामान्यत यह धारणा है कि राधा मायम बहिन बचवा बलिसम्भु की विवाहिता पत्नी थी। राधा कृष्ण से प्रेम करती थी और लौकिक दृष्टि से यह प्रेम परकीया का था। राधा-कृष्ण के ईश्वरत्व के साथ-साथ दोनों का यह प्रेम भी अनादि और असीमिक हो गया। किन्तु इस प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक प्रेम के रूपक द्वारा ही सम्भव है। इस लोभ में राधा-कृष्ण के प्रेम की सीधना की अभिव्यक्ति परकीया प्रेम में ही सम्भव है। स्वकीया प्रेम की एकरमता निराम समरक नैकद्वय तथा सामाजिक स्वीकृति उनकी तीव्रता मल्ल कर देती है। अतः यह प्रेम के उच्चावर्ष को व्यक्त करने में अममर्थ है। सहस्रियों के अनुसार प्रेम का सर्वोच्च आदर्श तो उन स्त्री पुरवों के बीच में होता है जो हाति-नाम मान-मर्यादा पदा-अपमघ और पाप-पुण्य की अवहेलना कर प्रेम की क्षेत्र पर सर्वस्व भ्योष्ठाकर कर देते हैं। परकीया प्रेम में ही यह सम्भव है और इसीलिए असीमिक प्रेम के स्वरूप को व्यक्त करने में यही ममर्थ है।

परकीया प्रेम की ओष्ठना का एक अन्य कारण भी है। स्वकीया 'सकाम प्रेम' का आदर्श और परकीया 'निष्काम प्रेम' का आदर्श है। स्वकीया में आत्म

तुष्टि स्वार्थ या काम प्रधान रहता है और यह काम बन्धन में शामिलवाना है। परकीया प्रेम में प्रिय-सुख आत्म-समर्पण और निस्वार्थ की भावना रहती है। जिस प्रकार निष्काम कर्म श्रेष्ठ और मोक्षदायक है वैसे ही परकीया भी श्रेष्ठ है। स्वकीया में ऐश्वर्य प्रधान है और परकीया में माधुर्य।

इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर राधा को सर्वत्र अन्य गोप की विवाह-रिवाज-रूप में स्वीकार किया गया है। इस परकीया भाव में प्रिय का निरन्तर चिन्तन मिलन की उत्कृष्ट उत्कृष्टा बोध-बुद्धि का सर्वथा अभाव तथा निस्वार्थ समर्पण रहता है। प्रेम की यही तीव्रता सहजिया में स्वीकृत है। बुद्धि ने राधा के इसी प्रेम और सुख का अनुभव करने के लिए भी वैतन्य रूप में जन्म लिया था।

वैष्णव सम्प्रदायों में परकीया की स्वीकृति

परकीया की महत्ता और राधा में परकीयत्व की उपबुद्धि तथा अन्य तर्कों के आधार पर स्थापना करने पर भी परवर्ती समाज और वैष्णव सम्प्रदायों ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसका कारण परकीया की समाज-विरोधिनी स्थिति है। फलस्वरूप वैष्णव सम्प्रदाय को छोड़ कर शेष सभी सम्प्रदायों में राधा का परकीयत्व स्वीकार नहीं किया गया है। उन्होंने राधा को संभर्ष विवाह द्वारा स्वकीयत्व प्रदान किया है। इनमें से कहीं तक सफल हो सका है। इसका विचार हम नायिका के स्वरूप के अन्तर्गत करेंगे। यहाँ पर तो इतना बहना ही अभीष्ट है कि वैष्णवों में परकीया भाव की भक्ति स्वीकृत थी तथा इसका प्रभाव भक्ति काव्य पर पड़ा।

वैष्णव नायिका साहित्य

राम धारा में भारतीय रामायण रचुषु उत्तररामचरित जातकीहरण हनुमत्प्रादक बंभन रामायण प्रथम रायक वैष्णवी कल्याण हंसदूत उत्तर रामक आदि ग्रन्थों में शुद्धाधिक उल्लेख है किन्तु भक्तिकाव्यीय रामभक्ति-काव्य में शुद्धाधिक अत्यधिक संयत रूप ही मिलता है।

इस धारा की दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जयदेव के मीनगोविन्द है जिसमें राधा-बुद्धि की शुद्धाधिक सीमा बढ़े ही महाहर और अमुक्त रूप में प्रकट हुई है। इस ग्रन्थ का हिन्दी भक्ति साहित्य पर किन्ता प्रभाव पड़ा—यह कह सकता हूँ कि इस शुद्धाधिक काव्य का महत्त्व इनमें से ही मिलता था सकता है कि जयदेव की मंगला धारा तर्कों में जाने गयी थी। यदि कबीर का दिव्य निमित्त दादा अग्रगण्य नहीं है तो कबीर तब उगरे दूरे जब उन्मेषणीय तर्कों में समझने के —

जागे मुक उपम सकूर हृदयंत जाये से लंगूर ।

संकर जागे खरन सेव कलि जाये नामां बेदेव ॥

इस प्रकार श्रान्ती कबीर तक इन्हें शुकदेव उद्यव बकूर और हनुमानजी की मोपी का मकड़ स्वीकार करते हैं। यह जयदेव की रचनाओं के प्रभाव का बड़ा मारी प्रमाण है। कवि मासजी ने भी मारव शुकदेव जादि की ही धोनी में जयदेव की पलना की है और उन्हें अनन्य रसिक मकड़ माना है। श्री धैतम्य देव ने मतिधोबिंद को प्रमाण-कोटि में स्वीकार किया है। इस रचना में सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य को श्रृंगारपरक रूप देने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

अपभ्रंश साहित्य

हिन्दी भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि रूप में अपभ्रंश साहित्य का उल्लेख भी आवश्यक है। अपभ्रंश में पृष्णवन्त के महापुराण में सीता तथा कृष्ण के लक्ष्मि का वर्णन है। पूर्वराग का प्रारम्भ चित्र तथा प्रयत्न बर्णन-बोनों ही रूपों में इस काव्य में दिखसामा गया है। इसके अनिश्चित नामगुमार चरित भाव-सत्तकहा (भक्तवास कृत) सुरंगन चरित (नयामधि कृत) त्रिनदलचरित (मानु कृत) समरकुमारचरित (हरिमठ कृत) पदममिरीचरित (पाहिस कृत) आदि में नायिक आवरण के भीतर रोचक प्रेम-कथाएँ भी गई हैं जिनमें नायिका का लक्ष्मि-वर्णन कहीं-कहीं उत्तम श्रृंगार वर्णन तथा अन्य श्रृंगारी बचन प्राप्त हैं। ये कथाएँ हमारा ध्यान बरबस प्रेमाश्रयी शास्त्रियों की सूखी प्रेम-कथाओं की ओर आकर्षित करती हैं। इन प्रकार भक्तिकाल के पूर्व ही नायिक आवरण में प्रेम-कथाएँ बचवा प्रेम कथाओं के आवरण में नायिक मन्देश की पुष्ट परम्परा प्रचलित थी। सम्भव है कि प्रेमाश्रयी शास्त्रा की रचनाओं की रचना विधि के पीछे इस साहित्य की प्रेरणा रही हो। कृष्ण-काव्य पर इन साहित्य के प्रभाव का संकेत डा राममिह ठोमर ने किया है। उनका विचार है कि अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण-गोपी प्रेम का जो उन्मुक्त स्वरूप प्राप्त है, उसने हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य को अवश्य प्रभावित किया होगा।

हिन्दी भक्ति श्रृंगार की इन पीठिका के आधार पर हम यह अवश्य कह सकते हैं कि चर्च साहित्य तथा मोठ नर्यों में श्रृंगार का उन्मुक्त वर्णन स्वीकार हो चुका था। इसका फल यह हुआ कि मकड़ों में इच्छेव के श्रृंगार वर्णन में होनेवाली स्वभाविक विचलन नहीं थी। फलस्वरूप निरंतर होकर वे श्रृंगारिक रचना में संलग्न हो सके। एक प्रकार से भक्ति श्रृंगार का विद्यान प्रागाह इनी पीठिका पर पड़ा है।

चतुर्थ अध्याय भक्ति श्रृ गार की प्रतीकात्मकता

भक्ति-श्रृ गार में संयोग श्रृ गार की प्रभावता है। राम-साहित्य में इसका स्वरूप संकेत-भाव है। अन्य साहित्यों में सूखी और कृष्ण-साहित्य में इसकी बहुलता है। सत-साहित्य में इसके कुछ संकेत मिलते हैं। इन संयोग-श्रृ गार के वर्णनों में जिस प्रकार के झुंसे श्रृ गार का वर्णन है उसके सम्बन्ध में लोगों के मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठते हैं। जिन बातों का सामान्य जीवन में उल्लेख करना हम अनुचित समझते हैं उनका सुष्ठम और विस्तृत वर्णन भक्ति-रूप में देसकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। आज के मनोविश्लेषण के युग में जब कि मनो-वैज्ञानिक हमारी मोपी भाली क्रियाओं को चीड़-खाड़कर उनके पीछे के काम प्रवाह को प्रकट करता है तब उस समय के विरक्त साधु-महारमाओं की इन स्पष्ट श्रृ गारिक रचनाओं के पीछे की अनूठ और दमित काम-बामनाओं के संकेतों को खोज लेना जगद लिए उत्तम कार्य है। काम श्रेय का हनन कर जिन व्यक्तियों ने पशाधियों से मर्कों की पत्नी में स्वान प्राप्त कर लिया है उनके सम्बन्ध में उपयुक्त कथन सुनने का मन नहीं करता है। चायब इसीलिए विषय में रोचकता की कमी न हींटे हुए भी विचारकों ने सामान्यतः इस समस्या पर या तो सैलनी ही नहीं उठाई है या हमें 'प्रतीक' मान कहकर संतोष कर लिया है। केवल एक-दो मसका ने ही इन श्रृ गारिक-सीमाओं को समझाने का प्रयत्न किया है। ऐसे सैलकों में से एक डॉ. आनन्दगुमार स्वामी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डांस ऑफ़ थियर में सहज शीर्षक के अन्तर्गत राजा-कृष्ण सीमाओं का उल्लेख करते हुए विगते हैं।

"All this is an allegory—the reflection of reality in the mirror of illusion. This reality is the inner life where Krishna is the Lord, Gopies are the souls of men and Vrindavan the field of consciousness." (P 104)

एक अन्य संवद भी प्रवचमान भोजपत्री 'मदन बनि व्यागजी' की भूमिका में बहने है।

“भक्त कवियों की प्रतीकारमक श्रु गारिक रचनाओं से अपरिचित व्यक्तियों को कभी-कभी उनमें विषय-वासना की गन्ध आन लगती है। यह इसलिए हाता है कि वे शीघ्र ही महारमाओं की उपासना-पद्धति और धार्मिक मान्यताओं के मर्म को गनी भाँति नहीं समझ पाते हैं। जो भक्त-कवि समस्त विषय शीघ्रों का परि त्याग कर विरक्त-भाव से जीवन व्यतीत करते थे उनके द्वारा रचित रथा-कृष्ण की केसि कीड़ा सम्बन्धी प्रतीकात्मक श्रु गारिक रचनाओं से शौकिक विषय-वासना का कोई सम्बन्ध नहीं है।

उसी अर्थ के सपारक और कवि भ्याशुजी की परम्परा के श्रीकामुदेव गोस्वामी लिखते हैं

“शौकिक नाम-वासनावासे भक्तिहीन बुद्ध-बुद्धिया को ठो रथा और कृष्ण दोनों ही काम-कला विषयारव प्रतीत हो लकत हैं किन्तु इस विमान कीड़ा क रूप में आध्यात्मिक भाव द्विपे हैं।

इसी प्रकार कल्याण के ‘भाववताक’ में श्रीहरण सीता की व्याख्या करते हुए श्री हनुमानप्रसाद पोहार लिखते हैं— ‘वृत्तियों का आवरण नष्ट हो जाना ही ‘श्री हरण’ है और उनका आत्मा म रम जाना ही ‘राम है। स्वामी योगा गद सरस्वती ने इसकी व्याख्या एक बागी की समाधि एवं समक मर्म होने के रूपक द्वारा की है।

विशेषियों की रहस्यवादी उपासना-पद्धति हमारे भक्त-कवियों की उपासना से लकत भिन्न है किन्तु श्रु गारिक प्रेमोग्गार की बहुलता उनमें भी उलमी ही है बिलपी हमारे भक्तों में। इसकी व्याख्या करने हुए ‘अद्वयहित ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘मिस्टीविज्म में लिखा है

‘...that he sometimes forgets to explain that his utterance is but symbolic’

“The great saints who adopted and elaborated this symbolism, applying it to their pure and ardent passion for the Absolute, were destitute of the prudent imagination which their modern commentators too often possess.”

In the place of the sensuous imagery which is so often and so earnestly deplored by those who have hardly a nodding acquaintance with the writing of the saints we find images which indeed have once been sensuous but which are here anointed and ordained to a holy office carried up transmuted and endowed with a radiant purity an intense and spiritual life. (Pages 163-164)

उपर्युक्त उद्धरणों में श्रु गारपरक काव्य का आत्म-परमात्मा की मिसम-इकृष्ठा धारोत्साह, योग-नापना और आत्म-बन्धन आदि मानकर समझाने

का प्रयत्न किया है। महाप्रभु वसन्तभाचार्य ने 'सुबोधिनी' में इन सीमाओं का प्रतीकारत्मक और सूक्ष्म शोर्ण ही जर्न लिया है। किन्तु स्कूल वर्ग के सम्बन्ध में यह स्पष्ट करने के लिए आवश्यक उत्सुक है कि ये सीमाएँ न केवल वाचना से रहित ही हैं बल्कि वाचनाओं की नाशक और भक्ति भाव की पोषक भी हैं।

विदेशी साहित्य को छोड़कर हिन्दी भक्ति-साहित्य के बड़े अंश में जो शुद्धि-वर्षण है उसे प्रतीकारत्मक मानने में कुछ कठिनाई है। इस समस्या के लिए आवश्यक है कि हम पहले प्रतीक के अर्थ और स्वरूप को संक्षेप में समझ लें।

प्रतीक का अर्थ

बहिर्जगत् की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्राण अनुभव ही मानव-विचारों के मूलाधार हैं। मानव मस्तिष्क इन अनुभवों की स्वीकार करने के पूर्व उनमें कुछ परिवर्तन कर देता है। अनुभवों के ये परिवर्तित रूप ही प्रतीक कहलाते हैं और विचारों के मूलाधार हैं। यह प्रतीक-निर्माण-क्रिया निरंतर चलती रहती है। इसीके द्वारा विचार किया है। रिट्छे अपनी पुस्तक 'दिलि मैथुरल हिस्ट्री ऑफ़ माइंड' में प्रतीक-क्रिया को ही विचार-क्रिया मानते हैं। प्रतीक निर्माण-क्रिया एक मानसिक क्रिया है किन्तु अधिकतर प्रतीक स्वरूप होते हैं। ये प्रतीक ही मानव मस्तिष्क को समझने की कुञ्जी हैं।

प्रतीकों का सीमित अर्थ

संपूर्ण जीवन प्रतीकों से आवेष्टित है किन्तु हम सामान्यतः प्रतीक का प्रयोग सीमित अर्थ में करते हैं। इस प्रयोग के पीछे अपनी भावना और विचारों की भाषा के माध्यम द्वारा स्पष्टतम रूप में प्रकट करने की इच्छा है। अर्थ और साहित्य ऐसे प्रतीकों से परिपूर्ण हैं। हम परिवर्तता के लिए कमल तेल के लिए मार्तण्ड विस्तार के लिए आकाश और ब्राह्मण्य के लिए सहस्रनाम-मुद्र का प्रयोग करते हैं। हम मूर्ति द्वारा ईश्वर की व्यक्त करते हैं पर मूर्ति ईश्वर नहीं होती है। ये प्रतीक इयर्थक होते हैं। इनका एक अर्थ वास्तविक और गौण होता है तथा दूसरा आन्तरिक सुख अर्थ और सुख होता है। अर्थ प्रतीकों के अध्ययन में तदा यह ध्यान रखना आवश्यक रहता है कि कब कब कब प्रतीकार्थक रूप है और कब कब वास्तविक अर्थ। यदि हम कुछ अर्थों के अन्वय पर प्रतीकार्थक या इनका विचार स्वीकार करना प्रारम्भ कर लें।

प्रतीकों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या

मनोवैज्ञानिकों ने अनुसार प्रतीक अर्थोत्पत्ति मन की बातों को छिपाकर व्यक्त करने की सर्वोत्तम विधि है। प्रत्यक्ष अर्थ के मनोविरुद्धों के अन्वय पर वे अर्थ

कामारमक होत है किन्तु अस्य अनेक मनोबैज्ञानिकों के अनुसार यह आवश्यक नहीं है। पद्या अप्रधान के मतानुसार सामान्य जीवन में पढी हुई अतुष्ट कामारमक या अकामारमक इच्छाओं को प्रकट करनेवासी अभिव्यक्ति ही प्रतीक है। समग्ररूप से हम कह सकते हैं कि प्रतीक सात अनुभवों द्वारा अज्ञात की अभिव्यक्ति करने वाले साधन हैं। ध्यान रखने की इतनी ही बात है कि जहाँ वे अज्ञात की अभिव्यक्ति से दूर होकर स्वयं साध्य हो जाते हैं वही वे प्रतीक नहीं रहते हैं।

धार्मिक प्रतीक

धार्मिक तथ्य को व्यक्त करनेवाले प्रतीक धार्मिक प्रतीक होते हैं। इनके दो प्रमुख भेद किए जा सकते हैं। प्रथम प्रकार के वे प्रतीक हैं जिनके मूल धर्मों को हम जानते हैं और साधारण शब्दावली में व्यक्त कर सकते हैं। भागवत में राजा पुरजित की कथा (४।२१-२८) ऐसी ही है जिसकी व्याख्या मारद ने उन्नीसवें अध्याय में की है। ऐसे प्रतीकों में हम जहाँ कहीं धर्म की संभावना देखते हैं, वही प्रतीक का आवरण छोड़कर साधारण भाषा में उनका निवारण कर देते हैं। ऐसे स्थानों पर प्रतीक के अस्पष्ट होने पर भी उनका सुप्राहा होने के कारण हम उसका प्रयोग करते हैं। दूसरे प्रकार के वे प्रतीक हैं जिनके पीछे के धर्म को साधारण भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ईश्वरीय प्रेम या ईश्वरैश्या। हम जानते हैं कि ईश्वरीय प्रेम या इच्छा का मानवीय प्रेम या इच्छा से कोई संबंध नहीं है फिर भी हम मानव जीवन के एक तत्त्व को ईश्वरीय जीवन के एक तत्त्व से व्यक्त करने के लिए क्यों मते हैं? इसका कारण है कि हम इस तथ्य को और किसी प्रकार से स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर सकते हैं। प्रतीक द्वारा ही हम उस तथ्य के निकटतम पहुँच पाते हैं। प्रतीकों के भेद की यह विभाजक रेखा अत्यन्त अस्पष्ट और सूक्ष्म है।

प्रतीकात्मक व्याख्या और उसकी सीमा-रेखा तथा कसौटी

ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कि प्रत्येक धार्मिक आख्यान की प्रतीकात्मक व्याख्या करने को तैयार हैं। संपूर्ण भागपठ से निकर संपूर्ण बिहारी छतमई की वे प्रतीकात्मक व्याख्या करते हैं। इस प्रतीकात्मक व्याख्या का कारण क्या है? इन कथाओं की सरलता में बिद्वान्त का अभाव। जिन हर एक हमें कथा-आख्यातों की सरलता में बिद्वान्त है हम उन कीकार करने वाले जाते हैं किन्तु जहाँ कहीं हम उनमें कुछ अविद्वानमयीय या तरकामीय सामाजिक आदर्शों के बिद्वान्त हीनता है वही हम प्रतीकात्मकता का सहारा लेते लगते हैं। प्रतीकात्मक व्याख्या का एक अन्य कारण धार्मिक धर्मों को साधन सिद्ध करने की इच्छा और उनमें अन्तर्गत अर्थों के की वैदिकता और आदर्शों का स्थायी मापदंड बनाने की इच्छा है।

प्रतीकारक व्याख्या करनेवालों का एक बन्धन भी है। यह किसी वचन के कुछ अर्थों को सरल-रूप में स्वीकार करने का आग्रह करेंगे और कुछ अर्थों को प्रतीक रूप में। इन प्रकार यह प्रश्न उठता है कि धार्मिक कथानों को किस अर्थ तक प्रतीक माना जाए और किस स्तर से उन्हें सरल स्वीकार किया जाए। मानवत के सम्बन्ध में प्रश्न है कि क्या कबल औरहरण पस-नीसा आदि ही प्रतीक हैं अथवा स्वयं कृष्ण मंत्र यद्योदा और कंस आदि भी प्रतीक हैं? यदि हम इनको भी प्रतीक मान लें तो बनेक धार्मिक संप्रदायों की नींव ही डह जाएगी। इसलिए प्रतीकारक व्याख्या की सीमा का यह प्रश्न अटल है। प्रत्येक संप्रदाय और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी सीमा भिन्न भिन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में प्रतीकारक व्याख्या की सीमा रेखा बही तक हमी जहाँ तक इस व्याख्या के द्वारा उस संप्रदाय की मूलमिति पर आघात नहीं हुआ है। मन्त्र-काव्य की प्रतीकारकता की यही कठौटी है।

काम-प्रतीक

धर्म की मूलमिति मानव-जीवन के रहस्यारमक कामों के प्रति जिज्ञासा है। मानव जीवन में काम-क्रियाएँ उनसे प्राप्त आनन्दानुभूति और संतानोत्पत्ति से बढ़कर मानव को आकर्षण में आनेवाली और क्या चीज हो सकती है? मानव-जीवन में बड़े अर्थ में संतति की महत्ता रही है। फलस्वरूप के क्रियाएँ भी महत्त्वपूर्ण हो गईं जिनसे उसे प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य रूप में स्त्री-पुरुष जननेश्रियों में केवल संतान प्रदान करनेवाली है बल्कि जीवन में सबसे आनन्ददायक अनुभूति का साधन भी है। इसीलिए लगभग समस्त धर्मों में किसी न किसी रूप में स्त्री-पुरुष जननेश्रियों तथा संयोग क्रिया की उपायना स्वीकृत रही है। इन क्रियाओं के महत्त्व तथा इनकी रहस्यमयता की स्वीकार करने के कारण हमें गोपनीयता का प्रवेष्ट हुआ।

काम के इन आघार को लेकर शुद्धि प्रतीकों का निर्माण हुआ। इन्होंने जो रूप अपनाए। एक में तो काम एवं तराम्बन्धी क्रियाओं को आकर्षण देकर व्यक्त किया जाता है तथा दूसरे काम-स्वरूप होते हुए भी कुछ और ही संकेत करते हैं। प्रथम प्रकार के प्रतीकों में स्पष्ट सुस्पष्ट रूप अथवा कमल बुद्धि विचित्र नदाम त्रिगुल आदि हैं जो कि प्रत्यक्षतः कामरहित शीतले पर भी मूलतः कामार्थों का व्यञ्ज करनेवाले हैं। दूसरे प्रकार के प्रतीक मिथुन युवतः विष-पवित्र आदि हैं। इन दूसरे प्रकार के प्रतीकों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना है कि इनका प्रथम प्रतीक रूप में हुआ है या रूप रूप में। उपयुक्त दूसरे प्रकार के प्रतीक और रूप में कोई अंतर नहीं है, पर धर्म में विशेष भिन्नता रहती है।

साहित्य में प्राप्त श्रृंगारिक रूपों के सम्बन्ध की यही समस्या है कि वे प्रतीक हैं या मूल ?

प्रतीकारत्मक व्याख्या के माध्यम का कारण

इस संसार में प्राप्त पुरुषार्थों में सर्वोत्तम काम है। काम अपनी तन्मयता में अपाधिग्न हो जाता है। यही काम जब धर्म में सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होता है तो अति पवित्रतावादी एवं धर्म को नैतिकता के समकक्ष माननेवाले लोगों का सामंजस्य नहीं कर पाता। धर्म के अपने मात्र रूप के अनुरूप इन कामात्मक रूपों को काम-विहीन करने के लिए वे प्रतीकारत्मक व्याख्या का आश्रय लेते हैं। संभव है कि अति-पवित्रता एवं नैतिकता के पीछे दमित कुठारों की प्रतिक्रिया हो। ऐसी दमित कुठारें धर्म के इस रूप से अकसोर दी जाती हैं और मानव इसका प्रतिकार प्रतीकारत्मक व्याख्या द्वारा करता है।

हिन्दी भक्ति-साहित्य में प्रतीकारत्मकता

हिन्दी भक्ति-साहित्य में श्रृंगारिकता का आहुत्य है। बड़े अर्थ में यह श्रृंगार स्पष्ट तन्मय भावना है। कामची सुर तथा अन्य अनेक कवियों के पदों में प्रेम की सामान्य चेतनाएँ ही नहीं हैं बल्कि रति विपरीत रतिरस्य और सुर ताँत के रूपस्य एवं सजीव वर्णन हैं। प्रतीकों के रूपयुक्त अभिव्यक्ति के आधार पर इनकी प्रतीकारत्मकता पर विचार करना है।

निधु लघारा की काममायी व्याख्या के प्रतिनिधि कवि कबीर ने श्रृंगार प्रतीकों का द्रष्टव्य प्रयोग किया है। इनकी प्रतीकारत्मकता अत्यन्त स्पष्ट है।

कबीर के प्रिय राम हैं। ये बाघरबी राम से मिलन हैं। इनकी उपासना के पति रूप में करते हैं, और अपने को परती मानते हैं। वे कहते हैं 'हे कुलहिन् मंगलधार ताओ। मैं पूर्ण अयस्क जीवनामल हूँ। पाँचों तत्व बराती हूँ। बहुत पुरोहित हैं और बहु शरीर बेबी है। तैंतीस कौठि देवता और बठासी सहस्र मुनि मोठ भाए हैं। मैं एक अविनाशी पुष्य को ब्याह कर ना रही हूँ।' (कबीर ग्रंथ वाक्की, पद १)। एक अन्य पद में वे कहते हैं 'इस प्रिय से मिलने के लिए मैं श्रृंगार किया है। पता नहीं बहु क्यों नहीं मिलता है। (वही पद ११०)। '। यानी! वहाँ बने जहाँ परमात्मन् मिलें। मेरा मन बारी बला पया है इतीरें कुछ अक्या नहीं लगता। स्वप्न में उसके दराने होते हैं, पर पामते ही बहु विपु हो जाता है। जब तक शरीर में साँस है तब तक चलकर स्वामी से मिल नें। गर्व विनश न करो।' (पद १०२)। पति की उपासना से नायिका का संयुक्त विवाह ही एक निर्वन्दा अपने मयता है। वह कहते हैं, 'बहु विवाह ही कैंना विमल बा: पति का मुल भी देखने को न मिले। जब प्रकट हाकर मिसा अय्यथा मैं मा

प्रतीकारमक व्याख्या करनेवालों का एक अन्य बर्ण भी है। यह किसी प्र प के कुछ अर्थों को सरय-रूप में स्वीकार करने का माग्रह करेये और कुछ अर्थों को प्रतीक रूप में। इस प्रकार यह प्रश्न उठता है कि धार्मिक कथाओं को किस अंश तक प्रतीक माना जाए और किस स्तर पर उसे ठम्हें सरय स्वीकार किया जाए। भागवत के सम्बन्ध में प्रश्न है कि क्या केवल श्रीरहस्य रास-लीला आदि ही प्रतीक हैं अथवा स्वयं कृष्ण नंद, यशोदा और कंस आदि भी प्रतीक हैं? यदि हम इनको भी प्रतीक मान लें तो अनेक धार्मिक संभवानों की नींव ही डह जाएगी। इसलिए प्रतीकारमक व्याख्या की सीमा का यह प्रश्न बटिस है। प्रत्येक उपद्रव्य और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी सीमा भिन्न भिन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में प्रतीकारमक व्याख्या की सीमा रेखा बही तक हागी जहाँ तक इस व्याख्या क द्वारा उस उपद्रव्य की मूसभिति पर आघात नहीं हाता है। भक्ति-शास्त्र की प्रतीकारमकता की यही कसौटी है।

काम-प्रतीक

धर्म की मूलभिति मानव-जीवन के रहस्यारमक कार्यों के प्रति जिज्ञासा है। मानव जीवन में काम-क्रियाएँ उनसे प्राप्त ज्ञानम्भानुमृति और संतानोत्पत्ति से बहकर मानव को आरचय में डालनेवाली और क्या चीज हो सकती है? मानव-जीवन में बड़े अंश में संतति की महत्ता रही है। फलस्वरूप वे क्रियाएँ भी महत्त्वपूर्ण हो गईं जिनसे उसे प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य रूप में स्त्री पुरुष जननेन्द्रियाँ न केवल संतान प्रदान करनेवाली हैं बल्कि जीवन में सबसे जालम्बवायक अनुमृति का साधार भी हैं। इसीलिए सभसम समस्त वर्गों में किसी न किसी रूप में स्त्री पुरुष जननेन्द्रियों तथा संभोग क्रिया की उपासना स्वीकृत रही है। इन क्रियाओं के महत्त्व तथा इनकी रहस्यमयता को स्वीकार करने के कारण इनमें शोपनीयता का प्रवेश हुआ।

काम के इन साधार की लेकर श्रृंगार प्रतीकों का निर्माण हुआ। इन्होंने दो रूप अपनाए। एक में तो काम एवं तलम्बन्धी क्रियाओं को आकरन देकर व्यक्त किया जाता है तथा दूसरे काम-स्वरूप होते हुए भी कुछ और ही संकेत करते हैं। प्रथम प्रकार क प्रतीकों में स्त्रीम सुगत रूप अथवा कमल कुमिष्ठ त्रिकोण जलम त्रिभूस आदि हैं जो कि प्रत्यक्षतः कामरहित बीचने पर भी मूलतः कामांगों का व्यक्त करलेवाले हैं। दूसरे प्रकार के प्रतीक मिश्रुत सुगतत त्रिभ घक्ति आदि हैं। इन दूसरे प्रकार क प्रतीकों के सम्बन्ध में यह ध्यान रलना है कि इनका प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है या स्वरूप रूप में। उपबुक्त दूसरे प्रकार के प्रतीक और स्वरूप रूप में कोई अंतर नहीं है, पर धर्म में विशेष भिन्नता रहती है।

साहित्य में प्राप्त श्रु गारिक रूपों के सम्बन्ध की यही समस्या है कि वे प्रतीक हैं वा स्वरूप ?

प्रतीकार्थक व्याख्या के साधन का कारण

इस संसार में प्राप्त पुरुषार्थों में सर्वोत्तम काम है। काम अपनी लक्ष्यता में अवाचिक हो जाता है। यही काम अन्न धर्म में सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होता है तो बलि पवित्रतावादी एवं धर्म की नैतिकता के समकक्ष माननेवाले लोगों का सम्बन्ध नहीं कर पाता। धर्म के अपने साम्य रूप के अनुकूल इन कामात्मक रूपों को काम बिहीन करने के लिए वे प्रतीकार्थक व्याख्या का आशय लेते हैं। समझ है कि प्रति-पवित्रता एवं नैतिकता के पीछे दमित कुठारों की प्रतिबिम्बिता हो। ऐसी दमित कुठारें धर्म के इस रूप से सफ़ाई की जाती हैं और मानव इसका प्रतिकार प्रतीकार्थक व्याख्या द्वारा करता है।

हिन्दी भक्ति-साहित्य में प्रतीकार्थकता

हिन्दी भक्ति-साहित्य में श्रु गारिकता का बाहुल्य है। बड़े अर्थ में यह श्रु गार स्वयं, मन्त्र या कृष्ण है। आदर्श सूर तथा अन्य अस्त कवियों के पदों में प्रेम की सामान्य केवट्टाई ही नहीं है बल्कि रति विपरीत रतिरत्न और सूर वांत के स्मृत एवं सजीव वर्णन हैं। प्रतीकों के उपयोग अन्वयन के आधार पर इनकी प्रतीकार्थकता पर विचार करना है।

मिथु पाधारा की ज्ञानमार्गी शास्त्र के प्रतिनिधि कवि कबीर ने श्रु गार प्रतीकों का यथेष्ट प्रयोग किया है। उनकी प्रतीकार्थकता अत्यन्त स्पष्ट है।

कबीर के शिब राम हैं। ये बाघरथी राम से मिले हैं। इनकी उपासना के प्रति रूप में करते हैं और अपने को पत्नी मानते हैं। वे कहते हैं हे दुसहिम मंत्रमन्त्र नामो। मैं पूर्ण ब्रह्मक श्रीबनामस हूँ। पाँचों तत्व बरावी हैं। ब्रह्मा पुरोहित हैं और बहु शरीर बेरी हैं। लोटीग कोटि देवता और अठारही सहस्र मुनि थोठे आए हैं। मैं एक अविनाशी पुरुष की स्वाह कर जा रही हूँ। (कबीर पद वा पत्नी पद १) ; एक अन्य पद में वे कहते हैं, 'इस त्रिप से मिलने के लिए मैंने श्रु गार किया है। पता नहीं वह क्यों नहीं मिलता है। (वही पद ११०)। 'हे गम्भी ! वहाँ पत्नी जहाँ परमानन्द मिले। वेरा मन् कोरी बसा गया है। इसीस कृष्ण ब्रह्मा नहीं समता। स्वप्न में उसने दर्शन होते हैं, पर जागते ही वह विगुण हो जाता है। जब तक शरीर में साँस है तब तक चलकर स्वामी न मिले। यही विमर्श न करो।' (पद ३०२)। पति की उपेक्षा के नाशिका का संभ्रम विवाह ही एक विवर्धना समझ समता है। वह कहते हैं 'बहु विवाह ही कैमा जिगक बार पति का मुख भी देखने को न मिले। जब प्रकट होकर मिलो अगमया मैं मर

जाऊँगी। (पद २२६)। वह मिसल-बेला जा ही नहीं रही है। जब तक अंग लगा कर नहीं मिसोने तक तक जीवन साधक कंस होगा। इसी कारण तो बेहू बरी है। तुम समर्थ हूँ मेरी कामना पूर्ण करो। तन की तपन बुझा दो। तब गायामाय। (पद १०६) है प्रिय। तुम मेरे घर जाओ। सब सोम मुझे तुम्हारी पत्नी कहते हैं। जब तक एक साथ सब पर न सोबाये तब तक तुम्हारा प्रेम कैसा ? तुम मुझे उसी प्रकार मिस हो जैसे कामी को काम और प्यासे को पानी। तुम्हारे पीछे प्राण जा रहे हैं। (पद १०७)। 'तुम अमी नहीं मिसोने तो मरने के बाद मिसने से क्या काम ? (साखी १/७०)। राम उसकी बात सुन लेते हैं। वे जाने को तैयार हैं पर तामिका (कबीर) को भव सब रहा है। वे कहते हैं विरवाच प्र म विधि सहीदा ता मुझमें समाप्त है। पता नहीं प्रियतम कैसे प्रेम निभेगा ? (साखी ११/१६)। किन्तु सब कुछ किठनी सरलता से हो जाता है। वे कहते हैं 'मैं रानी बन गई। सुख की राशि मुझे मिसी पर इसम मेरी सुख भी बढ़ाई नहीं है। मैं तो बसोब हूँ। मैंने सुख नहीं किया। राम न स्वयं ही मुझे सोहाग दिया। (पद २)। 'अब इस सौभाग्य और सुख के बाद मुझे अपने गेष्ट न चमो। इस विवेक म मुझे सुख नहीं है। (पद १४) सुय तो कबल राम के नाव ही है अम्यन ता कष्ट ही कष्ट है। (पदावली परिशिष्ट २०६)।

कबीर ५ इन कवनों का स्वरूप अर्ध निकासता कठिन है। कबीर ५ प्रिय बाबुरबी राम से भिन्न अविनाशी राम हैं। इन्ही राम की वे 'बाहुरिया' हैं। उन्होंने हम संसार से ठग पच विकारों का उल्लेख किया है। जनायाम एक दिन प्रिय का संग हो जाता है। उन प्रेम का वलन करभ म न भगवर्ध है। इस प्रेम-वर्धन का अर्थ प्रतीक रूप में ही मिया जा सकता है। किन्तु उनके पूर्व यह देखना होगा कि कहीं यह प्रतीकारमक व्याख्या कबीर की विचारधारा के विपरीत पड़कर उनके मूल सिद्धांतों पर ही ता वाबात नहीं करनी। प्रतीकारमक व्याख्या की इस कसौटी पर कसने पर हम देखेंगे कि उनका मूल अर्थ मते ही कबीर के राम का यथाव अविनाशी निराधार स्वरूप नष्ट हो जाता है। उनका प्रेम-वर्धन अत्यन्त सूक्ष्म और संतारमक है। उनका श्रुतार भौतिक—श्रुतार रसि-रूप में व्यक्त नहीं हुआ है। उनका प्रिय म ता काक-कया विचारक है और न ही वे स्वयं काम-कमा विचारक। उनका मन्वन्ध म एक प्रसन्न उठ गचना है कि धामय पे कबीर की दमिन बाधारमकता है जिमने धर्म का आचरण से मिया है। इस प्रसन्न में यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर एक मनुष्य मनुष्य थे। उनकी इन रचनाओं में स्पष्टता और विस्तार नहीं है। वे ता इनके द्वारा किसी मन्व मनुष्य का हृदयम कराना चाहते हैं। उनका उद्देश्य मीमांसा का वर्धन नहीं। अपने मीमांसा का संवेत

है जो कि इस पायिब धरातल पर नहीं है। हाँ; कबीर का अपने को स्त्री-रूप में लेना महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण चाहे भारतीय परम्परा हो जिसके अनुसार स्त्री ही सर्वे प्रेम भिद्यारिणी होती है। जबवा प्रत्येक मानव में तिहित स्त्री-अंश की कबीर में प्रकलता।

प्रेममार्गी कबिया की तीन प्रसिद्ध रचनाएँ भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। बायसी छन्द पद्मावत उसमास छठ चित्रावती तथा मंगल छन्द मधु मासती। इन छन्दों की कबाएँ लोक-प्रचलित हैं तथा ऐसा अनुमान है कि इनके द्वारा प्रेम-मार्गी कबियों ने अपने बर्न के स्वरूप को जनता के सम्मुख रखा है।

उन तीनों ही रचनाओं में शु गार—विशेषकर समोस शु गार के विस्तृत बर्न प्राप्त हैं।

पद्मावत में यौवन-मत्त पधिनी के काम-बिरह का बड़ा ही स्पष्ट चित्र उसके स्वप्न द्वारा किया गया है जिसकी व्याख्या उसकी सखी करती है। (१६७-१६८)। बिराह के बाद पधिनी रत्नलेख की सोहावरात तथा उनके संभोग का विस्तृत बर्न है। कवि कहता है कि अनेक प्रकार में संभोग कर पति ने पत्नी की काम-तृपा घाँठ की। जातक की मोति पित्र पित्र कहते स्त्री की भीम सुख गई जिस प्रकार सीप में मोती की बूँद पड़नी है। उगी प्रकार उस सुख-घाँठि मिली। इस रति में कंचनमड़ टूट गया। रत्नसेन ने अंग अंग का रस भिया। मीम छूट गई कबुकी ठार-ठार हो गई, हार व मोती बिखर गए, महमे तथा कसाई फूट गई, साड़ी मरगनी हा गई। (३१७-३१८) प्रात सजियाँ हाथ परिहास करते हुए पूछती हैं 'तुम तो फूसो के हार का बोझ भी सह नहीं सकती थी। तुमने मिय के घरीर का बोझ कैसे सहा? पंग देने में ही जो कटि मुड़ जाती थी वह प्रचंड स्वामी के सामने कैसे रही?' साहागरात के बाद के सखियों के म प्रश्न अत्यन्त स्वाभाविक हैं। पधिनी का संक्षिप्त उत्तर भी अत्यन्त सटीक है। वह कहती है 'मै प्रेम का मम जान गई। सभी मम तो डोले हैं। सभी अंग स्वयं ही पति के एक-एक अंग से जाकर मिल गए। उसने मेरा रस मूट भिया। पधिनी की माता अंपावती उसके रति-विचित्र रूप को देखकर प्रमथता थे उसकी मान खूब सेनी है। (१२१ १२३) इनके अतिरिक्त अन्य शु गारिक प्रनय भी हैं।

प्रेममार्गी अन्य कबियों ने भी इसी प्रकार या इससे भी स्पष्ट समास का ब्यक्त किया है। इनमें मंगलय की ममस्त क्रियाओं का विस्तृत एवं लुमा उल्लेख है। (देखें चित्रावती २२६ आदि अनुपाततो १० १०१ १११ १४० आदि)

इन वर्णनों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इन श्रृंगारिक अर्थों में प्रतीकारत्मकता नहीं है। इसका कारण है। सूझी साधना में लौकिक प्रेम की पारमार्थिक प्रेम का ही एक रूप है। इस साहित्य में लौकिक प्रेम की स्वीकृति है। इसीलिए सूझी कवियों ने लौकिक प्रेम का लौकिक चरातन पर सांगोपांग बधम किया है। उनके नामक-नायिका सब-कृष्ण होठे हुए भी लौकिक है। इसके द्वारा किसी असौकिक प्रेम या आत्मा-परमात्मा के मिलन-सुख की अनुभूति नहीं है। इन सभी की कथाएँ स्पृश और लौकिक चरातन पर हैं। सभी में प्रेम का महत्त्व स्वीकार किया गया है। इस प्रेम और काम में कोई अंतर नहीं है। अतः इस प्रेम को व्यक्त करनेवाले बधन स्वामार्थिक रूप में लिए जाने चाहिए। उनके पीछे कोई प्रतीकारत्मकता नहीं है। काव्य के समासोक्ति होने के भ्रम के निराकरण के लिए भ्रम अब और भी नहीं रहा है।

सूझी काल में उपलब्ध श्रृंगार-वर्णन प्रतीकारत्मक नहीं है पर उसमें उपलब्ध संभोग विद्या तथा उत्सव-श्री अंग और कर्मादि के लिए कुछ ऐसी सम्भावनाओं का प्रयोग हुआ है जिन्हें प्रतीक कह सकते हैं। इनके द्वारा कामात्मक सम्भावना का अधिक प्राण बनाया गया है। ये निम्नलिखित हैं—

संभोग—राम रावण-युद्ध युगात् से वेतना राधा-शेष वरसे से मोती का भीषता कमल में भ्रमर का प्रवेश।

पुरुष-कामेन्द्रिय—कनक पिचकारी अंकुश।

स्त्री-कामेन्द्रिय—कभी सीप कामाधार मकरध्वज-मंथार कमल-कोष अमृत-साग।

प्रथम समायम पर योनिच्छत्र भंग होना—सिंहीरा फूटना युगात्-वेतना अमृत-साग फूटना।

स्वप्न—स्वाति दूर बयी।

इन चर्चों का ही श्रृंगार प्रतीक कहा जा सकता है। संभव है इस काव्य में प्रतीकारत्मकता का अभाव है।

भक्ति काव्य की दृष्टि भक्ति वात्सा में ही प्रतीकारत्मकता का सर्वाधिक आशय लिया जाता है। इस काव्य में उपलब्ध श्रृंगार में प्रतीकारत्मकता है या नहीं इसके निर्णय के लिए आवश्यक है कि हम इस श्रृंगार के स्वल्प का लौकिक विस्तार से देखें। यह श्रृंगार इतना विपुल और विस्तृत है कि सम्पूर्ण का उत्प्रेषण बनाकर एक है।

अब हम शक्त-मन्त्र-प्रदाय के प्रतिनिधि भवन मूरधाम को लेते हैं ता जड़ होने

सुरसागर में बन्धु बधुतारों का संकेत मात्र कर कृष्ण की इजसीता का ही विस्तार किया है। बधुपत सं ही कृष्ण गोपियों का मन मोहते रहते हैं। अपनी माता के सम्मुख बासक होते हुए भी वे गोपियों के साथ तदर्थों की-सी क्रियाएँ करने लगते हैं। पीछे बधु की अवस्था सं ही कृष्ण गोपियों की होती पाड़ने लगते हैं और इस बधु की अवस्था होते होते गोपियाँ उनके रूप को देख कर काम-पीड़ित होने लगती हैं तथा काम-बेष्टाएँ करती हैं। मनोबैज्ञानिक दृष्टि से तब गोपियों की क्रियाएँ कृष्ण से यह काम प्रीड़ा विशेष अस्वाभाविक नहीं है। गोपियों का कृष्ण से कामात्मक सम्बन्ध एक-दूसरे पर लुभने लगता है। बात उड़ने लगती है बधुपती होती है पर बेचारी बेबस है। कृष्ण की याद घाटे ही उनके हृदय में काम जाग उठता है। कृष्ण भी काम-कसा से अनभिज्ञ नहीं है। राधा से मिलते ही वे उसकी नीची पकड़ते हैं। साथ ही साथ उसका हाथ राधा के कुर्ची पर पहुँचता है।

कृष्ण अब छोटे नहीं हैं। राधा-कृष्ण का संयोग जब भी बबसर मिलता है तभी होता है। हार सं संयोग में बाधा पड़नी है। राधा उसे उतार देती है। काम-किसि में कृष्ण बन्धा और राधा बंधोर है। मरकल-कल्पम-सा दोनों का संयोग है। अन्त में भातक के मुद्र में स्वानि की वृद्ध पड़ती है।

राध में भी कृष्ण ने गोपियों के कुछ भुज आदि स्पर्श कर उनका मन की दृष्टि बुझाई है। राधा-कृष्ण के विवाह के उपरान्त दोनों में रति-मुद्र होता है। कामदेव उनकी रति-प्रीड़ा के सामने सज्जित है। दोनों को छाँटि ही नहीं हंगी है। निरम विविध-विधि से सम्भोग होता है। सबिबाँ दोनों की काम-कसा निपुणता की सद्यहना करती है।

सुरदास के अतिरिक्त बस्तम-सम्प्रदाय के अन्य कवियों ने भी रति का वर्णन किया है।

बस्तम-सम्प्रदाय के अतिरिक्त प्रकृत-कवि व्यासजी की शक्तियों में भी शृंगार का उग्रभूत रूप बीकता है। वे इस शृंगार की कामोत्तेजकता से स्वयं अपने अधिक अभयत हैं कि बार-बार इस अपाधिप कहते हैं। उनकी राधा काम-कसा विद्यारवा है। उसे मोक-नग्ना का मन नहीं। उसे ही सुरत-मुद्र की बात है। यह कृष्ण को काम-कसा निसाती है तथा इवी काम के द्वारा अपनी काया का पोवती है।

रति के वर्णन में नायिका को निर्बन्धा करके उसने लीन्दर्व की देवने का कामोत्तेजक का राधा की नग्ना का तथा रति का उन्नेल है। यह रति, विपरीत और रतिरत्न आदि विविध रूपों में सुरत होता है।

राधा-कृष्ण के इन सम्मोह-वर्षनों को पढ़ने के बाद उन्हें प्रतीक मानना केवल निमित्त कल्पना है। यह सत्य है कि कवियों के विश्वासानुसार राधा-कृष्ण प्रकृति और पुरुष हैं। किन्तु यह इनसे भी अधिक सत्य है कि राधा-कृष्ण का यह केमि विभास आत्मा-परमात्मा का नहीं है। राधा-कृष्ण का मूल स्वरूप चाहे जो कुछ हो वे मूलतः स्त्री-पुरुष हैं। यह रास केमि सत्य है। राधा-कृष्ण सत्य हैं। वह केमि सगुणिकी है। इस केमि के द्वारा और किसीकी भीड़ा व्यक्त नहीं की गई है।

यदि हम भीड़ा को प्रतीक मानकर हम इसका सच्चा स्वरूप जानने का प्रयत्न करें तो हमें धीरे धीरे अपनी असफलता दृष्टिगोचर होगी। राधा-कृष्ण के प्रतीकात्मक वर्ण की तो कल्पना की जा सकती है किन्तु उनकी काम भीड़ा संभोग की एक-एक किम्बाओं और चेष्टाओं की व्याख्या असम्भव है। यथार्थ में वे वर्णन इतने स्पष्ट स्वप्न और संवेदनारमक हैं कि इनके पीछे के किसी संवेत की न तो हम कल्पना कर सकते हैं और न ही कवियों ने की होगी। वे मूलतः सब कुछ मानने को तैयार हो जाएँगे यदि हम केवल राधा-कृष्ण के रूप को अनुष्ण रखें उनके अस्तित्व को मानें। जिस क्षण हम राधा-कृष्ण के रूप को केवल पुरुष-प्रकृति उनकी सीमा को कल्पना मात्र तथा सांकेतिक मानने का आग्रह करेंगे उसी क्षण हम उनके विश्वासों पर आघात करेंगे। उनके लिए उनके इष्टवैश वायवी नहीं थे। वे कृष्ण राधा को पूर्ण साकार रूप में ही सदा भजते रहे यद्यपि उनके निराकार रूप से भी वे अनभिन्न नहीं थे। इस निराकार रूप को उपासना के लिए उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। उनके कृष्ण तो आज भी दम्बावत में गोचारण तथा रास करते हैं। आज भी मन्दिरों में उनके समय-विधाम के समय उनकी निद्रा में व्यसधान न पड़े इसका वे ध्यान रखते हैं। अपने इष्ट को इस प्रकार से भजनेवाला हमारा मन्त्रों से यदि पूछा जाए कि यह राधा-कृष्ण की रति का वर्णन प्रतीकात्मक है आत्मा परमात्मा का है तो धायर वे इसे स्वीकार करने को तैयार हो जाएँगे क्योंकि परमात्मा ही कृष्ण हैं। किन्तु यदि हम इसीको और आज बढ़ाकर कहें कि कृष्ण दबकीतन्दन मटवर सीतासावर बोपी बरुनम गोपाल नहीं हैं जिन्होंने जन्म लिया था बोचारण किया था रास किया था वे ता अक्षय और अनिरय निराकार पुरुषोत्तम हैं कैसा उनके जन्म तथा कैसी उनकी सीमाएँ? इसी प्रकार राधा रानी रूपमात्र नहीं थीं तुम स्वयं हो वे गीत जिन्हें तुम या रहे हा वे तुम्हारी आत्मा और परमात्मा के बिलन के हैं। कहाँ और कब राधा-कृष्ण ने कर्म की थी? यह सब तो भ्रम है तो वे तत्पक्ष मजबूत हो जाएँगे इस प्रतीकात्मक व्याख्या का अस्वीकार कर देंगे। उन्होंने तो कभी यह सोचा भी नहीं था। उनके कृष्ण तो सपुन हैं। उन्होंने मोरङ्गन पर

मदकियाँ फोड़ी हैं कूँजों में राधा ने रतिरत्न दिया है किन्तु वे जैसे राधा राधी बन सकते हैं ? राधा राधी तो उनकी इच्छा ही है। उनकी माधना की चरम परि-
 क्षिति तो राधा की शक्तियों में स्वीकार होकर उनकी रति की एक मलक मान देना
 सेना है। वह सखी भी भक्त स्वतन्त्र रूप में होता चाहता है। प्रतीकारमकता
 के चक्कर में तो उसक हाथ कुछ भी न आएगा ! उसमें न कभी वह मोषा का
 और न ही राधा-कृष्ण की श्रृंगार-नीसा से नमनीत बाधुनिक भक्तों के हाव वह
 इस प्रकार दिखना चाहता है कि घाँट की पूँजी भी बसी जाए। उनक कृष्ण बससी
 कृष्ण है उसकी राधा बससी राधा है। निरुद्ध में उनकी रति रति बससी है।
 वे कोक-क्या विचारद और विचारदा है। उनक प्रत्येक ब्रह्म मांगस है और रति
 रत्न में उनका उपयोग होता है। उनकी प्रतीकारमकता वही तक है कि राधा
 कृष्ण का मूस स्वरूप ब्रह्ममय में है जैसे ही जैसे इन तबका मूस स्वरूप माग्ना
 रूप है। इच्छाप में वे यथार्थ और मांगस है मजीब है। उनका सम्भोग जगदी
 नीसा है पर है सत्य। भक्त के लिए उनमें न काम है और न ही प्रतीक। भक्त
 यदि हम कवि के दृष्टिकोण को देखें तो यह स्पष्ट होमा कि उनमें कभी भी प्रतीक
 का भाव्य नहीं मिया। उनमें इच्छेव की रति-श्रीका द्वारा किनी भाव्य तथ्य का
 संकेत नहीं किया। उन्हें प्रतीक समझना उनके प्रति अज्ञाय और भक्तों के मना-
 विज्ञान को न समझना है।

काव्य की दृष्टि से इन कथनों को पढ़कर अर्ध विस्तृत व्याख्या को दल
 कर, उनकी श्रुतता का अनुभव कर नी उन्हें प्रतीक समझना मोह है। जहाँ भक्त
 मूर्ति की तीव्रता का व्यतीकरण है वही प्रतीक है किन्तु जहाँ वर्णन ही व्येय है
 वही प्रतीक की स्थिति संदिग्ध है।



पुष्प अध्याय मन्त्रिकान्य में प्रेम का स्वरूप

शुभार का मुसाबार रति है। एकनिष्ठ होकर यह रति प्रेम का रूप धारण करती है। मन्त्र-कवियों ने इसकी महिमा इसके स्वल्प इसकी अनिर्वचनीयता इसके मार्ग की दुष्कृता आदि पर बहुत-बुद्ध मिखा है। इसकी श्रेष्ठता और स्थिति शुभार में माग्य तथा अनिर्वार्य है।

ज्ञानाशयी शास्त्र में प्राप्त प्रेम का स्वल्प

मन्त्रिक की ज्ञानाशयी शास्त्र में प्रेम की बड़ी महिमा गाई गई है। 'शुभरी के रूपक में कबीर ने इसकी महत्ता स्पष्ट की है। भक्त-रूपी प्रेमिका के लिए प्रेमी भगवान् द्वारा संभारती यह शुभरी साधारण नहीं है। इस शुभरी का धारण करना भी साधारण काम नहीं है। प्रिय-भगवान् ही जिस पर प्रसन्न हों जिस पर स्वयं ही यह शुभरी राम वें बही इसे पा सकता है। भगवान् की प्रेम-रूपिणी यह शुभरी प्राप्त करना सीमाग्य है और इसे संभारकर रचना हिम्मत का काम है। यह फूलों की खेज नहीं बाँटों का रजम है। इस प्रकार कबीर ने प्रेम-महिमा गाई है। (हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर पृ १८७-१८८)

कबीर का प्रेम एक कीर्त्यवती साधना है। भगवान् की रहस्य कैलि की एक पुकार ही मन्त्र के हृदय में मिलन की आनृतता और वियोग की व्यानुत्ता मर बली है। इसकी पीड़ा अनुत्पत्नीय तथा लक्ष्मणीय है। इसकी तुलना में शकवा शकरी का बिरह है। वे दोनों राति न बार ता मिलते हैं किन्तु काम कविर क पारे को बहु मिलन कहाँ उपलब्ध है।

शकरी बिरहरी रति की चाह मिली परमाति ।

वे जन बिरहरे राम से ते दिल न मिले न राति ॥

(कबीर प्रभावली श्यामसुन्दर दास पृ० - -)

इस बिरह में न दिन म रंन और न रात में वियोग है। सोते-जागते दिन रात मूष-पीड कभी भी सुख नहीं मिलता है। राम बिरहिनी उस रंन के

सभी पक्षियों से प्रिय का पंथ पूछनी है । उसकी एक ही लक्ष्य सुनने की चाह रहनी है कि प्रिय कब आकर मिलेगा ।

बासरि सुख ना रेंग सुख ना सुख तपुने माहि ।

कबीर बिछुर्या राम स० ना सुख पूष न छाहि ॥

बिरहिनि ऊनी वंपसिदि, पंकी कूर्म भाइ ।

एक सबय कहि पीब का कब रे मिलीये प्राइ ॥ (बही प० ८)

प्रेम का स्वरूप का स्पष्ट करने हुए कबीर ने इसकी तुलना बाण से की है । यह अंशु का शेर होता है । इसकी पीड़ा साधारण प्राण से भिन्न और निरामी है । मकड़ इसकी मधुरता से ऐसा अभिभूत हो जाता है कि बार-बार भयवान से प्रार्थना करता है कि उसे हम बाण से छेद दिया जाए । यह बाण ही उसका जीवनोपाय हो जाता है—

सर कमान सर साधि करि, कबि कु मारया माहि ।

मीतर मिछा दुमार छुँ जीबे कि जीबे नाहि ॥

बब हूँ मारा खोजि करि तब मैं पाई जीबि ।

सायी खोट मरम्म की, कई कलेजा छाड़ि ॥

जिनि सरि मारी कान्हि तो सर मेरे मन बस्या ।

किहि सरि मबहुँ मारि, सर बिनु सख पादें नहीं ॥

(बही प० ८-९)

यह प्रेम त्याग है । इसमें अन्यायता भरी पड़ी है । इसकी खुमारी कभी नहीं जाती है । यह प्रेम धीरता से पूर्ण होता है ; इसमें प्रकृत आतुरता नहीं रहती है संतोष की प्रबलता रहती है—

राम मजँ सो जानिए जाके धातुर नाहि ।

सत संतोष लीये धीरज नन माहि ॥ (बही प० २०६)

यह प्रेम त्याग के बिना नहीं हो सकता है । इसमें पीस काट कर दना हीरा है । इसका मार्ग अव्यय है और यह अमाप है । यह छाता का धर नहीं है नही रोने-मनाने से काम बन पाते हैं —

कबीर जो तुइ साथ निरय को सल काटि कर मोइ ॥ (पु० १६)

कबीर निज घर प्रेम का मारा घगल-घगल ।

सील उतारि पयतलि परें तब निकटि प्रम का स्कार ॥ (पु० १६)

हम प्रेम की एक बड़ी बिरोधना इसकी एकरमता है । यह न तो मायावैय में लपट बड़ता है और न बिरहान्ति से बैठ ही जाता है । यह न तो क्षणिक आवेश में ज्ञान और कर्म की मर्यादा ही तोड़ता है और न ही निरंतर ब्रह्मान द्वारा अधोगहीन प्रकृ-आवतन मात्र ही बन जाता है ।

इस प्रेम-मार्ग में प्रिय की निष्ठुरता और भी ब्यसुत है। प्रिय को दुःख ही प्रिय है। इस दुःख में ही सुख है। यह दुःख अमानवजन्म न होकर भावजन्म है। इस दुःख में प्रिय का मार्ग देखते-देखते आँखों में सार्ई पड़ जाती है। पपीहे की तरह पिठ-पिठ रटने पर भी राम नहीं मिलते। इस रोने में पीड़ा और मिलन की संतुष्टता है —

घाँबड़ियाँ भगई पड़ी, पब निहारि-निहारि ।
 बीमड़ियाँ छाला पढ़्या राम पुकारि-पुकारि ॥
 मैना नीमर लाह्या छूट बल निर जाय ।
 बपीहा ब्यूँ पिठ-पिठ करौं कबब मिलजुगे राय ॥ (पृ० ९)
 कबीर हसया डुरि करि रोबब सो बिल ।
 बिन रोये बयों पाइये प्रेम-पियारा मिल ॥ (पृ० ९)

निष्ठुर प्रिय की इस निष्ठुरता को सहना सरल नहीं है। इसीलिए कबीर ने प्रेम का आदर्श सती और सूरमा को माना है। यथार्थ में वह प्रेम सूर के संग्राम और सती आत्म-बलिदान से भी बड़कर है। मयबद्-प्रेमी शत्रु, सती और सूरमा, तीनों ही ज्ञान के ऊपर बिल जाते हैं फिर भी एकरस प्रेम का निबाँह सती-सूरमा ने प्रस-निबाँह से कहीं अधिक कठिन है —

घाँबि घाँब सहना सुपम सुगम खंग की पार ।
 बेह निबाहन एकरस महा कठिन ब्यबहार ॥
 (सत्य कबीर की साखी पृ० २२०)

प्रेम की इस स्थिति में मृत्यु भय दूर हो जाता है। सती का रूपक प्रस्तुत करते हुए कबीर कहने हैं कि जिसने हाथ में सिबीरा ले लिया है वह मृत्यु से क्या डरे? ऐसे प्रेमी के लिए मृत्यु आनन्ददायक है। इसीके द्वार से ही होकर प्रेमी 'पूर्ण परमात्मन्' के दर्शन करता है —

पब सो ऐसी छूँ पड़ी मन काक बिल कीगु ।
 मरलें कहा बराहये, हाबि सिबीरा लीगु ॥
 बिल मरलें धें जग डरें सो मेरे घानब ।
 कब बच्छिँ कब देखहुँ पुरब परमात्म ॥
 (कबीर सन्वावली पृ० १९)

मृत्यु से ही प्रियतम की प्राप्ति होती है। इसलिए जीतेजी ही अपने को तपस्य कर देना चाहिए। इन मृत्यु द्वारा मीमित जीवन को पार कर असीम जीवन की प्राप्ति होती है। इन ममीष की गोद में जामा हूँ से 'बेहब हाजा है। यही प्रिय का प्रेम है। इसीलिए प्रेमी मृत्यु की परवाह नहीं करता बरि

जसे चाहता है। कबीर इसी बेहूद—अधीन क मँदान में पँर फँला कर सोये बे —

बेहूद प्रगाभी पीब है ये सब हृद के बीब ।
जे नर राते हृदसों ते करी न पाबे पीब ॥
हृद में पीब न पाहये बेहूद में भरपुर ।
हृद-बहूद की पम लखे तातों पीब हृदुर ॥

तथा

हृद छीकि बेहूद यथा रहा निरतर होय ।
बहूद के मँदान में रहा कबीरा सोय ॥

(सप्त कबीर की छात्रो पृ० २६२ २६३)

कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम के आगरस का कारण भयबन्-हृपा क अति रिक्त विषय-वासना-त्याग कुर्मय-त्याग अन्तक भजन गुण-कीर्तनादि पूब जय संस्कारादि बतलाया है। साथ-ही-साथ बुद्ध-हृपा का भी उन्हीने उल्लेख किया है। यह भक्त क हृदय में विरहाग्नि प्रज्वलित कर देता है विरह का श्राव्य धार देता है और उसके मंजुर्ष शरीर में दाबाग्नि-भी फूट पड़ती है —

पुब शया बेसा जस्या विरहा लागी श्यामि ।
तिथका बपुड़ा ऊब्याया गति पुर के लायि ॥

(कबीर प्रथावली पृ० १२)

सतपुब-मार्या बाब भरि परि करि सुखी पूठि ।
धयि जबाई लायिवा यई बया सु फूठि ॥

(बही पृ० ६)

इस विरहाग्नि और इसके प्रभाव का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि इसकी जलन सर्व-वध-नी होती है। इसका निवारण अशभव है। ऐसा विरह का मारा या तो जीता नहीं बचना और यदि जीता बचता भी है तो बाबसा हो जाता है —

विरह भुबमम तन बसं नत्र न मारं कोय ।
राम विमोपी ना जिय जिये लो पीरा होय ॥

ऐसा प्रेम-बाबसा मूषा, पपु, पागम सभी बुद्ध हो जाता है। वह न हीनता है न बोलता है केवल अपने प्रेम रस में डूबा रहता है —

युगा ठुषा बाबसा बहरा ठुषा बाब ।
पाऊ लै पमुल मया सतपुब मार्या बाब ॥
होते न बोले प्रमनो बंभव मेरहया मारि ।
कहै कबीर भीतर भिछा सपुब का हृदियार ॥

इस प्रेम-मार्ग में प्रिय की निष्पूरता और भी सम्मुख है। प्रिय को दुःख ही प्रिय है। इस दुःख में ही सुख है। यह दुःख अनावजम्ब न होकर भावजम्ब है। इस दुःख में प्रिय का मार्ग बेलते-बेलते मीलों में सार्ई पड़ जाती है। पपीहे की तरह पिठ-पिठ रटने पर भी राम मही मिलते। इस रोने में पीड़ा और भिन्न की उरसुकता है —

बीबड़ियाँ भ्याह पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
 बीबड़ियाँ छाता पढ़्या राम पुकारि-पुकारि ॥
 मँबा भीऊर जाइया रह्य बसै निस जाय ।
 पपीहा ज्यूँ बिब-पिब करौ कबह मिसहुये राम ॥ (पृ० ६)
 कबीर हुसना डुरि करि रोवन सो बिल ।
 बिल रोये बयो पाइये प्रेस-पियारा मिल ॥ (पृ० २)

निष्पूर प्रिय की इस निष्पूरता को सहना तरस नहीं है। इसीलिए कबीर ने प्रेम का आदर्श सती और मूरमा को माना है। यथार्थ में यह प्रेम धूर के संग्राम और सती आरम-बलिदान से भी बड़कर है। मगबद्-प्रेमी साधु, सती और मूरमा, तीनों ही जान के ऊपर बेम आते हैं फिर भी एकरस प्रेम का निबँह सती-मूरमा के बल-निबँह से कही अधिक कठिन है —

भापि घाँब सहना सुगम सुपम खंय की बार ।
 गैह निबाहन एकरस नहा कठिन प्यबहार ॥

(सत्य कबीर की साक्षी पृ० २९०)

प्रेम की इन स्थिति में मूर्ख भय दूर हो जाता है। सती का स्वक प्रस्तुत करते हुए कबीर कहते हैं कि बिछने हाथ में सिंघीरा के निमा है वह मूर्खु से क्या करे ? ऐसे प्रेमी के लिए मूर्खु आत्मन्वयायक है। इमीके द्वार से ही होकर प्रेमी 'पूर्व परमानन्द' के दर्शन करता है —

जब तो ऐसी छूँ पड़ी मन काक बिल कीण्ड ।
 बरनै कइया करइये, हापि सिंघीरा मीण्ड ॥
 मिल मरनै बँ जय करे तो मेरे आनन्द ।
 कब मरिहै कब हैण्डै पूरन परमानन्द ॥

(कबीर पन्थावली पृ० ९६)

मूर्खु से ही प्रियतम की प्राप्ति होती है। इसीलिए जीठेजी ही अपने की उलगम कर देना चाहिए। इन मूर्खु द्वारा भीमिन जीवन को पार कर अतीम जीवन की प्राप्ति होती है। इन अमीम की पार में जाना हूँ से बेहूष होना है। यही प्रिय का प्रेय है। इसीलिए प्रेमी मूर्खु की बरनाह नहीं करता बरिफ

उसे चाहता है। कबीर इसी बेहद—असीम के सीदान में पर फँसा कर सोये थे —

बेहद प्रगाथी पीब है ये सब हृद के बीब ।
 जो तर रातै हृदसो ते करो न बाधे पीब ॥
 हृद में पीब न पाइये बेहद में भरपूर ।
 हृद-बेहद को धम सखे तासो पीब हकर ॥

धया

इह जोड़ि बहुर धया रहा निरंतर होय ।
 बहद के सीदान में रहा कबीरा सोय ॥

(सत्य कबीर की साखी पृ० २६२ २६१)

कबीर के आध्यात्मिक प्रेम के जागरण का कारण भयबन्ध-रूप का अति रिक्त नियम-वाचना-स्वाम कुमंग-स्वाम बखंड मजन, घुम-हीतनादि, पूब जम्म संस्कारादि बनसाया है। साय-ही-साय भुद-रूप का भी उन्होंने उन्मूलन किया है। भुद भक्त के हृदय में विरहाग्नि प्रज्वलित कर देता है। विरह का काम मार देता है, और उसके संपूर्ण शरीर में आग्नि-ही फूट पड़ती है —

बुध बाबा बेसा अन्मा विरहा लागी प्राणि ।
 तिजका क्युका अन्वरा पति पूर के साणि ॥

(कबीर प्रथमवर्ती, पृ० १२)

सतबुध-भार्या बाब भरि धरि करि लुकी बुद्धि ।
 अणि उघाई सादिबा, यई बवा सु बुद्धि ॥

(वही पृ० २)

इस विरहाग्नि और इसके प्रभाव का अन्त करते हुए कबीर कहते हैं कि इसको अन्त सर्प-बंध-सी होती है। इनका निवारण अमभव है। ऐसा विरह का बाध या ठो बीठा नहीं बचता और यदि बीठा बचता भी है तो बाजला हा जाता है —

विरह अबांगम तज बसै संय न लार्द कोय ।
 राग बियोपी नर बिबै बिरे सो बीरत होय ॥

इसा प्रेम-बाधना मूया, पदु, पायल मयी बुध हा जाता है। बहू न ईकना न बीतता है। बेचम अपने प्रेम रम में बंधा रहता है —

प्रपा हुषा बाबसा बहुरा हुषा काज ।
 बाऊ ते पसुल मया सतपुब भार्या बाज ॥
 ईबे न बोले उमनी बंधन बेहूया मारि ।
 कई कबीर बीतर मिटा तदुपुब का हरिपार ॥

(वही पृ० २)

इस बावसेपन में शरीर दीपक प्राण बाती और सोहू तेल बन जाता है तब कहीं जाकर प्रियतम के बर्तन होते हैं —

इस तन का बीजा कक बाती मेस्यु बीब ।

सोहू लीचू तेल ज्यों तब मुख बैसु पीब ॥

ऐसा प्रिय का बिरही निरंतर प्रिय का गान करता है । वह बावला-सा बिपसाई पड़कर भी सम्मुख बावला नहीं होता । वह तो मुन्तान होता है —

बिरहा बुरहा मत कही बिरहा है सुस्तान ।

बिहि घर बिरह न संबरे सो घर सबा मसान ॥

इस प्रकार कबीर का प्रेम साधनाजम्बू दधि कठिन त्याग-उपस्या-अनप्यतायुक्त बिरह-दुःख से परिपूर्ण मृत्यु-ब्रह्म का मंत्रक प्रिय से निमानेबासा रसायन तुल्य और एकरस है । यही भक्तों का साध्य है ।

प्रेमाश्रयी छात्रा में प्राप्त प्रेम का स्वरूप

हिन्दी भक्ति की प्रेममार्गी छात्रा तो प्रेम पर ही सबलम्बित है । असीकिक शौर्य्य नावना से परिपूर्ण यह प्रेम दतिमात्रक समस्त बिधि-विधियों से परे और स्वयं प्रमाण है । इस तन्म का प्रवृत्तन अनाभुहीन कमी से निम्नलिखित दब्धों में किया है —

“हृदय की पीड़ा प्रतीक प्रेम की अभिव्यक्ति कर देती है । इस हृदय की वेदना से किसी अन्य वेदना की तुलना नहीं की जा सकती है । प्रेम एक अत्य ही रोग है जिसमें बेबी अनुमृतिमा हीनी है । यही प्रेम हमें आने से जाता है । इनकी व्याख्या तर्क के सहारे नहीं की जा सकती है । प्रेम स्वयं ही अपना व्याख्याकार है । यह ठीक सुब के समान है । सूर्य अपना प्रमाण स्वयं है । प्रेम भी स्वयं प्रमाण है ।”

प्रेम के इमी दिव्य स्वरूप का मौनिक विवेचन प्रेममार्गी भक्तों ने किया है । सामान्यतः श्रुतियों में तथा अन्यो म भी प्रेम के मौनिक तथा असीकिक रूप माने जाते हैं । इरक-मजाजी—इरक-इलीकी से उनी परिचित है किन्तु इन भक्तों ने ऐसा कोई भव स्वीकार नहीं किया है । उन्होंने प्रेम-मात्र को दिव्य माना है । इस प्रेम से ही मानव दिव्य है अन्यथा वह एक मुट्टी राग ही तो है —

मानुस प्रम भएउ बेकुटी । नाहित जाह छार एक कुटी ॥

(आपसी पद १६६)

यह प्रेम शौर्य पर आधारित है । प्रिय के असीकिक शौर्य के दर्शन पक्षक से यह प्रिय के हृदय में उत्पन्न होता है । प्रेमाख्याक काव्यों में नायक नायिका के मन में प्रेमात्मन का कारण रति ही है —

हीरामन को समस बजाना । मुनि राजा होइ धरुन मुलाना ॥
(बायसी पृ० ६५)

मुनि चित्रनि चित्तसारी पाई देखि चित्र मुल रही मुमाई ।
छहस कसा होइ हिये तमाना, निरधि रूप चित्त बेत मुलाना ॥
(चित्रावली पृ० १२४)

पूरे पुन्य पस घापु हमार ससि पुनिव मुल बेत तोहारा ।
पेन कोइ हिय लाया कोरे बिरहु काम बिय बामा तोरे ॥
(मधु० पृ० ३५)

प्रिय का यह बलौकिक सौंदर्य सार्वभौमिक प्रभाववाला है । संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो कि इससे प्रभाव से बचा हो ? उस सौन्दर्य को देखकर त्रिभुवन का मन डोलने लगता है —

भीहु बनुप सधि इंद्र संकामा लब बग जीति संरण कहुं ताना ।
कौन सो बली ओ न रं मारा तीन्हुं लोक एक हुंकारा ॥
(चित्रा पृ० १८०)

बन बानसु मस को को न मारा । बधि रहा संपरीं सतारा ॥
(पद्मावत पृ० १०४)

प्रति स्वरुप बुद्ध सीतल समोले बेहि देखत त्रिभुवन मन डोले ।
(मधुमावती पृ० ३०)

ऐसे बलौकिक सौंदर्य से ही प्रेम की उत्पत्ति होती है, किंतु यथार्थ में दोनों में अमेद है । इस संसार में प्रेम को छोड़कर और कुछ भी सुख नहीं —

तीन लोक बोरहु कंड छई पर मोहि घुम्नि ।
पेन छांड़ि किछु सोद न लौगा जी देखीं मन घुम्नि ॥

(पद्मावत, पृ० ६६)

इस प्रेम और सौन्दर्य की अमेदवा बतसाठे हुए उद्यमान कहते हैं— 'जहाँ रूप है वहीं प्रेम भी है । रूप और प्रेम में दृष्टि-किरण हिय-बस का सम्बन्ध है । इस संसार में जहाँ भी रूप का प्रसार है वहीं उससे प्रेम का व्यवहार है । यदि ब्रह्मा ने रूप दिया है तो उसने नहीं को प्रेम-बकार भी बना दिया है । रूप दीपक की बत्ती है तो प्रेम उसका तजामा है । प्रेमी परलोक इमी पर अपने को जला देता है । रूप के लिए मृत्यु का मार्तण्ड सहज है । रूप का मित्राण नेत्रकी-कसिका में होता है । प्रेम के बलीमूल होकर भ्रमण संश पर अपने प्राणों को स्वोद्धार कर देता है । प्रेम और रूप का यह अनेक जैमा इन कवियों में उपलब्ध है वैया अग्र्यन नहीं ।

प्रेममार्थी कवियों ने प्रेम और रूप का अमेद बनाए हुए बिरहु को प्रसन्न

सार तत्त्व बतलाया है। जहाँ कहीं भी प्रेम है वहीं विरह है। यह विरह ही प्रेम में निहित अमृत-तत्त्व है —

जहाँ प्रेम तर्ह बिरहा जानहु । बिरह बात जनि लघु करि मानहु ॥

(चित्रा पृ० ३१)

प्रेमहि माह बिरह ही रसा । मंत्र के घर मधु संक्षिप्त बसा ॥

(पद्मावत पृ० ११६)

उत्तमान अपनी विशावसी में इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस संसार में जहाँ भी ईश्वर ने निर्मल रूप-मुकुट का निर्माण किया है, वही प्रेम सूर्य ने बिरह-अग्नि प्रकट कर दी है। जिस प्रकार आठवीं शीघ्रा सूर्य की किरणों को अपनी नाभि पर अग्नि कर अग्नि प्रज्वलित कर देता है उसी तरह सूर्य रूप के हृदय में प्रेम द्वारा विरहाग्नि प्रज्वलित हो जाती है —

रूप मुकुट जहाँ बिनि सूर्यो निरमल एहि संसार ।

प्रेम सूर परतर कियो बिरह अग्नि उजमार ॥

(चित्रा पृ० ३०)

इसीकी व्याख्या करते हुए कवि कहता है कि जिस तन में प्रेमाग्नि प्रज्वलित होती है उसे विरह-पवन और अधिक सुलगा देता है। जहाँ प्रेम मंदुर फूटता है, वही विरह-जल उसे पीच-पीचकर और बढ़ा देता है। प्रेम-बीपक की बत्ती जहाँ दिखाई पड़ती है वही विरह उसे लख-छग उकसा देता है। इस प्रकार प्रेम और विरह राधा एक साथ रहते हैं और सम्मिश्रित प्रभाववाले हैं।

रूप की ही भाँति प्रेम और विरह भी सार्ध-मीमिक प्रभाववाले हैं। ये सृष्टि के आदि कारण हैं तथा संसार में इनमें कोई भी नहीं बना है। उनके फल में जो पड़ा वह प्राण लेकर नी न छूटा —

प्रेम कई जो बरा न छूटा । बीज बीगु बहु फल न दूटा ॥

(पद्मावत पृ० १७)

उत्तमान ने बीपक-पंचम-प्रेम न इनकी तुलना कर कहा है कि प्राण लेकर ही यह छूटी है —

बीबी जोती प्रेम बी, बर सो जाइ न छूटा ।

बीपक भीति पतंग को प्राण बिसे वे छूटा ॥

(चित्रा पृ० ३३४)

ब्रह्म ने सर्वप्रथम प्रेम तथा उसके बाद सृष्टि की उत्पत्ति बतलाई है। यह सृष्टि भी प्रेम से ही उत्पन्न हुई है —

प्रथमार्हं ध्यादि येम ब्रह्मिदि, धव पाछे जो सकल सरिसिद ।
 धल्पसि सिदि येम ते ध्याई, सिदि ब्य यह येम स्याई ॥

(मह पृ० ११)

विरह के सार्धभौमिक प्रभाव का उत्सिद्ध आपसी ने किया है। उन्होंने कहा है कि विरह की शक्ति यही पूर्व प्रथमिदि है तथा छत्र में स्वर्ग और क्षय में पाताल जाता है। इस प्रकार के ही कारण स्थिर नहीं रहता है। इतना ही नहीं इस प्रेम के ही पूर्ण से मैत्र श्यामल है तथा राहु वेतु, पूर्व और चंद्र रूप है —

विरह की शक्ति धूर नहीं ठिका, राठिहुं विवस बरा श्री बिका ॥

धिमहि तरप धिन बाइ पतारा विर न रई तेहि धायिदपारा ॥

(पद्मावत पृ० १८०)

धस बरबरा विरह कर मठा । येम धाम भए धूम छका ॥

बन्हा राहु केतु या बाबा सुधन बरा चाई बरि धाबा ॥ (पद्मावत १)

मह विरहान्नि मानव शरीर को तपाकर कुम्भन करनेवासी है। विरहान्नि में तपनेवासे मानव के समस्त मस बसकर जल्य हो जाते हैं और मह व्यक्ति कुम्भन की तरह बसकने लगता है —

कंचन बरब मतिन बरि पपुम, विरह धगिन बरि कुम्भन भयम ।

(चिन्ता पृ० २६५)

तथा

विरह धमिन बरि कुम्भन होई निरमल तन पाई ये सोई ॥

(वही पृ० २७१)

रुच, प्रेम और विरह को इसीलिए उसमान ने सृष्टि के तीन स्वप्न माना है —

रुच प्रेम विरहा जगत मूल सृष्टि के बन्म ॥ (चिन्ता पृ० ३१)

सूत्री कवियों ने वही प्रेम की इतनी महिमा पाई है वही उन्होंने प्रेम-धर्म की कठिनता का भी वर्णन किया है। इस संसार में प्रेम करना सरल नहीं है। इसका मार्ग व्ययक्त कठिन है। त्याग और बलिदान इसके अनिवार्य अंग हैं। यह पंच कुत्रों से घिरा हुआ और अद्य की बार से भी तीव्र है। इस मार्ग पर चिर देना पड़ता है। इसका फल एक बार पढ़ने के बाद फिर छूटता नहीं है और जिसकी गहन में मह पड़ जाता है वह प्राप्त ही देना चाहता है। प्रेम की स्थिति मृत्यु से भी कठिन है क्योंकि मृत्यु तो दास धर में हो जाती है किन्तु प्रेमी को विरह दास-धन दास करता रहता है —

'प्रेम ही वासना के मर्मकर उर्प का विनाशक है। वही हमें उस द्वार के द्वार पर ले जाता है जिसकी प्राप्ति किसी पाठशाला में नहीं होती है। एक अन्य स्वप्न पर वे कहते हैं, 'प्रेम की क्वासा ने ही मुझे प्रवर्धित किया है। उसकी सुरा ने ही मुझे पावन बनाया है। तुम तरुण के बाने को सुन्दर सीस को कि प्रेमी किस प्रकार अपना रक्त बहाता है। रबिया ने इन प्रेम-तरुण का वर्णन इस प्रकार किया है 'हे नाम ! तारे बमक रहे हैं। सोनों की जाँबें मुँह चुकी हैं। सभाओं ने अपने द्वार बन्द कर लिए हैं। प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रिया के साथ एकांत सेवन कर रहा है और मैं आपके साथ अकेली हूँ। हे नाम ! मैं आपसे प्रिया प्रेम करती हूँ। एक तो मेरा यह स्वार्थ है कि मैं आपके अतिरिक्त अन्य की कामना नहीं करती। दूसरे मेरा यह परमार्थ है कि आप मेरे पर्वों को मेरी जाँबों के सामने से हटा देते हैं ताकि मैं आपका साक्षात्कार करके आपकी सुरति में निमग्न हो सकूँ।

इस आध्यात्मिक सुरा और सुरति का उल्लेख इन प्रेम-साहित्य में काफी हुआ है। इस प्रेम-सुरा का वर्णन कामसी ने रत्नसेन द्वारा सविस्तार कराया है। रत्नसेन कहता है 'हे प्रिये सुनो। प्रेम की सुरा पी लेने से हृदय में मरने-जीने का मय नहीं रहता। वही मर है वही होष कैशा ? पीनेवासा या तो मरवाला रहता है या कुमार की हासल में सरा रहता है। इस मेघ को वही जानता है जो पीता है। पीने से बार-बार बेगुम होकर भी वह अचाता नहीं है। जिसे एक बार मधु का भोग हो जाता है वह उसके बिना नहीं रह सकता है उसे बार-बार चाहता है। उसके लिए बग बीतत मय बुझ बहा देता है और कहता है 'मने ही सब बसा जाय पीला न झूटे। वह रात-दिन रम में डूबा रहता है। न जान देखता है न जानि। प्रात होते ही उसका सरीर हृष मरा हो जाता है तथा उसमें नव उत्साह आ जाता है मानो नया सगरने पर कुमारी की बछा में उबे ठंडा पानी मिल गया हो। वह कहता है कि एक बार में ही पूरा प्यासा भर को बार-बार कीन मरिया। कवि कहता है कि जिसकी धारी चूक गई है वह हम प्रकार कैते न मनि। (पद्मावत पृ० १२०)

यह प्रेम-सुरा शिकके हृदय में डीनी है वह बग्य नसी की ओर से उदासीन रहता है —

प्र म-सुरा बेहि के भिय जाहीं। क्य बीठे महुषा की छाहीं ॥

(पद्मावत पृ० १२४)

इन प्रेम-सुरा का नया बड़ा पहरा होता है। दूसरी बार पीने से बावनी हो जाता है। (पद्मावत पृ ११६)। रत्नसेन पीरक का बेला होठे हुए भी

इसका एक प्याला पीते ही उसके बग में हो गया । पुजान भी इसी मद्य को पीकर मद्यमानी रहती थी । इसी प्रेम-सुरा से ब्याकुल होकर मद्यमानी पत्नी होने पर भी दिन रात प्रिय का लोमरी फिरती थी —

सुमंत फिरत हैरत दिन-राती येम-सुरा। ब्याकुल मद्यमानी ॥

(मद्य, पृ० १०७)

प्रेम-सुरा का यही मादक प्रभाव ही प्रेमी का प्रेम-व्यम के सभी संकटों को सहने की शक्ति प्रदान करता है ।

प्रेम-सुरा जहाँ प्रेमी को ममस्त संकटों को सहने की सामर्थ्य देती है वहीं प्रिय की सुरति — प्रेमी के ब्यास को सदा एकमिष्ट किए रहती है । वहीं सुरति ही प्रेमी के प्राणों का पोषण करती है और वह सदा प्रिय की रट सगाया करता है । प्रेम-सद्विष में मूर्च्छित रहने को मरती बार भी उड़ीकी धुनि मरी की —

किमरी यहै नु हुत बैरापी । मरतिहुँ बार यहै धुनि मारी ॥ (पद्यावत पृ० १६४)

पद्मावती भी विरन्तर प्रिय की ही रटना सगाए रहती थी—

निज-निज करत रात-दिन बधिहुा पइ मूक मूक ॥ (पद्यावत, पृ० २७६)

सुरति की इस स्थिति में शरीर का रोम-रोम प्रिय का नाम सेता रहता है । सुसी बिये पाते समय रत्नसन मे इसी तप्य का उद्घाटन इन सख्यों में किया था —

मैं हर व्हास में उड़ीका स्मरण करता हूँ—मरते और जीते—दोनों अवस्थाओं में जिसका ही बूका हूँ । मैं उस रमा पद्मावती का स्मरण करता हूँ जिसके नाम पर मेरा यह जीवन निष्ठावर है । मेरी जामा में बितनी रक्त की बूँदें हैं वे सब 'पद्मावती-पद्मावती' ही कहती हैं । यदि मैं जीवित रहा तो मेरे एक-एक बूँद रक्त में उसी पद्मावती का स्थान है । बहि सुनी पर बहूँया तो उसीका नाम लेकर मरू था । मेरे शरीर का रोम रोम उसीके बिधा है । प्रत्येक रोम-रूप देकर बीच उसके द्वारा सुठ किया गया है । मेरी हड्डी-हड्डी में बही 'पद्मावती-पद्मावती' घब्र हो रहा है । मेरी नस-नस में उड़ीकी धुनि उठ रही है । जबक बिरह ने शरीर के भीतर की मज्जा और मांस की सान को ला डाला है । मैं तो एक ठठरी मान रहू गया हूँ । उसमें वह रूप बनकर समाई हुई है । (पद्यावत २६२) । पुजान-चित्रावती तथा मनोहर को भी अपने प्रिय की सदा रण सगी रहती थी ।

प्रेम की अवस्थाएँ

रहस्यवादी सूखी-गापला की पाँच अवस्थाएँ हैं । प्र माख्यानक काव्यों में कथा-विकाश जन में इन अवस्थाओं का ब्यापन रसा दिया है । ये अवस्थाएँ निम्न निम्नित हैं —

नहीं रहती है। वह मोघ भी नहीं चाहता है। प्रिय ही ऐस प्रेमी का बाहार तथा घरीर हाता है। वह अपने प्रिय के लिए प्राण तक देना चाहता है। वह प्रेम भर मिटने पर भी नहीं भिद्यता है।

इस अनन्य प्रेम के अनेक उदाहरण हैं जिनमें चातक और भीम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि तीनों लोक और तीनों कामों में कीर्ति अनन्य प्रेमी चातक को ही प्राप्त होगी है—

तीन लोक तिहुँ काम अस चातक ही कें माध ।

तुलसी जानु न रीतता सुनी दूसरे नाम ॥

(दोहावली १८८)

इसीके साथ-साथ भीम के प्रेम का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं —

तुलम प्रीति प्रीतम सब कहत करत सब कोइ ।

तुलसी भीम पुनीत ते बिभुवन बड़ो न कोइ ॥

(वही ३२०)

इसके अतिरिक्त अनन्य एवं एकान्ती प्रेम के अन्य आदर्श सर्व मूम कमल और मयूरधिया हैं। गोस्वामीजी ने गोपियों को भी अनन्य प्रेम का आदर्श माना है।

गोस्वामीजी ने प्रेम-स्वरूप-वर्णन में उसके साठस्य पर विशेष बल दिया है। प्रिय की चाह और प्रेम के विकास के लिए ही प्रेमी निरंतर प्रेम की याचना करता है तथा प्राप्त प्रेम की भी अर्हणना करता है —

तुलसी कें मत चातकहि कैवल प्रेम विप्रात ।

विप्रात स्वाप्ति अल काम अप आचित बाटु मात ॥

तथा

(वही ३०८)

चातक तुलसी के मते स्वातिहुँ पिये न पानि ।

प्रेम-नुया बाइति भनी घटे घटेयी घानि ॥

(वही, २७६)

प्रेम और वीर का अंघा होना लोक-प्रसिद्ध है। गोस्वामीजी ने भी प्रेम के स्वरूप में उसका अंघा होना बनसाया है। यदि प्रेम अंघा न होना तो वह अपने प्रेमी के दोष को कैसे न देखता —

तुलसी वीर लनेहु बोज रहित बिलोकन बारि ।

गुण सिबरा पावरहि निरहि नुरतरि बारि ॥

(वही, ३२६)

इस प्रेम में कोई नियम नहीं है। गोस्वामीजी ने प्रेम को प्रेम के बड़ा बना है —

बढ़ि प्रदीति पठिबस तें बड़ो जोय तें छेम ।

बड़ो सुखेबस साहें तें बड़ो भैम तें प्रेम ॥ (बही, ४७३)

इस प्रेम-मार्ग की सूक्ष्मता बतसाते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि यह बति सूक्ष्म है। इसको समझना सबके बस की बात नहीं है। सांसारिक व्यक्ति तो इसे समझ ही नहीं सकते तभी तो वे जातक को पापी और भेष को मूढ़ तक कह देते हैं। इस प्रेम की तो प्रह्लाद की बदा पर ही विचार कर समझा जा सकता है —

प्र म न परब्रह्म पदचपन पयब सिक्कानन एह ।

जम कह जातक पातकी ऊपर बरब मेह ॥

होइ न जातक पातकी जीवन बानि न सुइ ।

तुलती बति प्रह्लाद की समुधि प्रेम बच सुइ ॥

(बही, २३८-२३९)

यह प्र म का पंच सूक्ष्म और कठोर ही नहीं है बिलक्षण भी है। इसमें प्रेमी के प्र म को देखकर प्रिय ही उगका लक्ष्मी हो जाता है। सामान्यतः मायक बानी का लक्ष्मी हाता है किन्तु इस मार्ग में तो बानी ही मायक का लक्ष्मी हा जाता है —

प्रीति बरीया पयब की प्रगद नई पहचानि ।

जाबक जयत कभाउड़ो कियो कनौड़ो बानि ॥ (बही २२६)

को को न क्यायो जयत में जीवनदायक बानि ।

भयो कनौड़ो जाबकहि पयब प्रेम पहचानि ॥ (बही २२१)

साधन लीसति लब लहत सकहि मुखर कल साहु ।

तुलती जातक जतर की रीभि-बुभि ह्व काहु ॥ (बही २२९)

यह प्रेम-बच बाबाओं से भरपूर है। इसमें कृतक संशय काम कोय जोम राव-द्वेष कुर्मम बादि बाबाएँ हैं। इन सबका मोस्वामीजी ने अनेक रूप में उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है कि यदि माता पिता बादि भी इस पंच से बापक होय हैं तो उन्हें भी त्याग देना चाहिये। इन सबका त्याग कर ही मानव इस पंच में जाये बढ़ सकता है। समष्टि रूप में इन सभी बाबाओं को 'प्रबंध' कहते हैं जिससे प्र मी का तुरन्त यचना चाहिये —

प्रेम करीर प्रबंध हज उपजी धयिक उपाधि ।

तुलती भली सुबैरई बेनि बीसिए ब्याधि ॥ (बही २४२)

प्रेम का यह स्वरूप मानस में पावती-महादेव तथा सीता राम के प्रति प्रेम-रूप में प्रकट हुआ है। जिस समय सप्तवि पार्वती की परीक्षा लेने पर और उन्होंने महादेव ५ अनेकामेक अवमुर्तों की सारिणी प्रस्तुत की उस समय पार्वती का उल्लेख बिना मया उल्लेख जनक प्रेम का जातक है —

महादेव अवगुण भवन बिन्दु सकल गुण भाम ।

बेहि कर मनु रत चाहि सत तेहि तैही सत काम ॥ (बाल०, ५०)

इसी प्रकार जब बनवास के समय राम जानकी को अयोध्या में रहने का उपदेश देते हैं उन समय वे कहती हैं कि प्रिय-विद्योग-सवृष्ट दुःख संसार में नहीं है तथा प्रिय व साध ही समस्त गुण रहते हैं —

मैं पुनि समुक्ति बौद्धि मन माहीं । पिय विद्योष तप दुःख सब माहीं ॥

× × ×

प्राणनाथ तुम्ह बिन्दु जग माहीं । मो कहुँ सुखर क्यहुँ कहुँ माहीं ॥

जिय बिन्दु रहै नही बिन्दु जारी । तैसिय नाम पुष्य बिन्दु जारी ॥

नाथ सकल सुख साध तुम्हारे । सरब विमल बिन्दु बदनु गिहारे ॥

खय मूष परिजन नमह बनु बलकल विमल कुहुल ।

नाथ साध सुर सबन सत परमसात सुख पूत ॥

(बाल० ६४-६६)

समग्र रूप में यह प्रेम अत्यन्त एकांगी सूक्ष्म बिलक्षण और अति महिमा-वान है ।

कृष्णायमी धाक्षा में प्राप्त प्रेम का स्वरूप

कृष्णायमी धाक्षा में प्रेम की प्रेरणा रासौधिक है किन्तु इसका धार्मिक विवेचन अत्यल्प है । इस साहित्य में मुख्य है प्रेमाचार पर निमित्त त्रिय प्रिया की अति मनोहारिणी संयोग तथा विद्योष की अभिव्यक्तियाँ ।

प्रेम की महिमा सभी कृष्ण-संप्रदायों में मान्य है । बलराम रामायणमित्र गिबार्क बादि सभी संप्रदायों में इन महिमा का संकेत है । बलराम-संप्रदाय में इनकी महिमा गिठ करके के लिए सम्पूर्ण 'भ्रमर-भीत' ग्रन्थ ही है । इसके अतिरिक्त 'मगवान प्रेम के बध में है' यह परम पुक्यार्थ है' बादि कथन अनेकानेक स्वर्तों पर प्राप्त है । रामा-बलराम संप्रदाय में निरय-विहार के विधायक चार तरकों में में एक प्रेम-तरक ही समाप्त रूप से बिराजमान है और विहार मानना का पापक है । इन प्रेम के सम्पुक्त नवमा भक्ति भी महत्त्वहीन है —

पहामाहुरी प्रम रत चाहै जिहि जर माहि ।

नवप्या हु तिहि खर्ब नहि नेम सबे भिदि जाहि ॥

(ध्यानीत लीला पृ० ६६)

स्वामी हरिदास ने अपने अष्टावह गिज्ञान क पत्रों में प्रेम को महिमा देते असाह समुद्र जितरी बाट लपना सर्वमम है बहकर प्रकट की है —

प्रेम समुद्र रूप रत गहरे संते लाये घाट ॥ (पर १८)

इसी संप्रदाय के श्री बिहारनिवास ने प्रेम की महिमा अनेक रूपों में व्यक्त की है। कहीं इसे सब श्रुतियों का मार—सबही श्रुति की मुखमार बिहार सिंगार सुमेर सो पावें वहाँ—कहा है और कहीं सब मारों का मार तथा सब तस्वों का तस्व कहा है—

सब तारनि की तार सुनि सब तस्वन की तस्व ।

श्री बिहारनिवासि धनम्य मत बढ़ी समस्त इकस्व ॥

कबीर के स्वर में स्वर मिलाते हुए उन्होंने कहा है कि इनके एक अक्षर को पढ़े बिना समस्त ज्ञान बेकार है। प्रेम-ज्ञान बिना सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता है—

प्रवृत्त प्रवृत्ति पक्ष मरे पक्षो म अक्षर एक ।

बोझ मरे सिर बाह ही उपखी नहीं बिषक ॥

इस प्रेम की महिमा का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि इस प्रेम-प्रेरित बिहार के दर्शन के लिए सकृदपि बिष्णु तथा राम-कृष्ण नमस्कार करते हैं और इनका इसमें प्रवेश नहीं है

बिहारीबास बिहार की सकृदपि नमस्कारि ।

ए वैक-वितर सोने गिरे हूँ राम-कृष्ण न समाहि ॥

निबार्क संप्रदाय में प्रेम का वर्णन करते हुए श्री मट्टजी कहते हैं कि मन बचन और कर्म से भी जो दुर्गम इच्छा है, वे भी इसी प्रेम के बस होकर उपाय के चरण छूते हैं—

मन बचन क्रम दुर्गम तथा ताहिब चरण छूवात ।

राये तेरे प्रेम की कहि धारं नहि बात ॥

(पुण्य सतक ६)

महाभागीकार श्री हरिश्चन्द्र देवाचार्य ने इस प्रेम को सर्वव्यापक वर्णनातीत परमपंच कहा है और इसे नियमापन तथा नेम प्रेम से भी परे बतलाया है—

अनैश्वर्य भाग्य की बरन की विस्तार ।

बरनबाम राजे बहुँ आयम्बई अपार ॥

(महाभागी सिद्धांतमुक्त ६)

तथा

नियम निबम आयम अपम सहि न सबै गुन प्रब ।

नेम प्रेम से बर बरयो बरमपरा की पब ॥

रहि गयो मारप डरं नेम प्रब नेम की पर बरयो परा की परम पर पब ।

नियम की नियम प्रब अगन आगजन की नाहि समरस्व गुन वचन में प्रब ॥

(कबी ५० १०)

गोष्ठीय वैष्णव भक्तों में हुए हिन्दी के कवियों में प्रेम के माहात्म्य को स्पष्ट व्यक्त करनेवाले पर प्राप्त नहीं है किन्तु उनमें सर्वत्र प्रेम की महिमा प्रतिभासित होती रहती है। राधा-कृष्ण की संपूर्ण श्रद्धा प्रेति की यह मूल प्रेरणा है और इसके अन्तर्गत कुछ भी नहीं है।

विभिन्न कृष्ण-संप्रदायों में अभिन्न प्रेम के स्वरूप में बड़े अर्थों में समा गता होते हुए भी बिरह के आधार पर सूक्ष्म विभेद भी है। बल्लभ और गौड़ीय संप्रदायों में बिरह की विधेय स्वीकृति है जबकि राधावल्लभ हरिदास एवं निबार्क संप्रदायों में स्वूल बिरह को उतनी महत्ता नहीं प्राप्त है। सूरदास ने बिना बिरह के प्रेम को स्वीकार नहीं किया है -

बिरह कुछ अर्थे गार्ह मकहूँ तर्ह न उपजै प्रेम । (सूरदास, ४०३१)

तथा

रूपो बिरही प्रेम करे ।

रूपी बिगु पुट पट महत न रंग करे रंगन रसे परे ॥ (बही ४१०४)

राधावल्लभ तथा सभी संप्रदाय में स्वूल बिरह के लिए स्थान ही नहीं है। यहाँ प्रेम की स्थिति मिलने बिछड़ने से परे की है। उसमें रूप-सौंदर्य का निरंतर पान चलता रहता है -

महा प्रेम भिन्न मधुर अति सबते ग्यारो बाधि ।

तहाँ न भित्तबो बिछुरिबो बीबत उपहि बाधि ॥

(भक्तदास व्यासीस नीला, पृ० १३)

इस सूक्ष्म अंतर के बावजूद हम कह सकते हैं कि कृष्ण-काव्य में व्यक्त प्रेम सहज सच्चा और नबल है। इसकी सहजता इसके स्वामात्मिक हीने में सच्चा स्वार्थरहित होने में और नबलता निराम बर्णमान होने में है।

कृष्ण से अगली प्रेमियों का प्रेम एकनिष्ठ है। इस एकनिष्ठ क अवलम बल्लभ-संप्रदाय में ही है। गोष्ठीय कवियों ने इसका अवलम नहीं किया है मग्य संप्रदायों में उनकी आशयकता ही नहीं है। उनमें राधा के प्रेम की एक निष्ठा स्वयंनिष्ठ है। सूरदास ने राधा और गोपियों के प्रेम की एकनिष्ठा न चित्रण करने हुए कहा है कि कृष्ण न स्वाम रंग में पवकर राधा ने ममस्त न और बिगमों को छोड़ दिया है। गार्हियों ने अपने बर और शरीर की सुधि बिरा कर दी है। साक-लज्जा छोड़ दी है। (सूर २२२७-२२३०)। बल्लभ-संप्रदाय में प्रेम-मीन का प्रसाय भी इगो एकनिष्ठ प्रेम का व्यक्त करनेवाला है।

एकनिष्ठ प्रेम के आदर्शों में योपियाँ सर्वप्रथम हैं। सूर, जन्मदास परमा
मन्ददास आदि ने योपियों की महत्ता के गीत गाए हैं। परमार्थ का एक ऐसा ही
पद निम्नलिखित है —

योपी प्रेम की प्यासा ।

बिन गोपाल कियो बस अपने दर धरि स्वाम भुजा ॥

गुण सुनि ब्यास ब्रह्मता कौनो कपी संत तराही ।

शूरि माय्य योकुल की बनिता घटि पुनीत भव माही ॥

कहा भयो जो विप्रकुल जनमो जो हरि सेवा नही ।

सोई कुलीन दास परमानन्द जो हरि सम्पुल पाई ॥

(परमानन्दसागर, ८२३)

प्रेम के अन्य आदर्शों में चातक शीप, पकज बकौर मीन सारस आदि हैं।
इन आदर्शों में भी दो वय हैं। चातक पकज मीन आदि एकांगी प्रेम के आदर्श हैं।
इनके द्वारा योपियों और राधा के प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यन्त रूप में होती है।
सारस-गुम और बकबा-बकबी 'सम प्रेम' के आदर्श हैं और उनका उत्कृष्ट उदा-
हरण संप्रदाय में हितहरिबंधारी ने राधा-कृष्ण के प्रेम की विलक्षणता वतसागे
के लिए किया है। ये सभी आदर्श कवि प्रसिद्ध हैं तथा एकनिष्ठ प्रेम की पूर्ण
अभिव्यक्ति करने में समर्थ हैं।

इस राधा के एकांगी प्रेम का उत्कृष्ट पीछे किया का बूझा है। फिर भी
इस साहित्य में प्रेम के एकांगीपन से अधिक महत्त्वपूर्ण उनका अयोध्यासत्त्व
है। एकांगी प्रेम विशेषतः योपियों में परिमक्षित होता है किन्तु वह भी पुरा-पुरा
एकांगी नहीं है। कृष्ण-उदर बाटीलाप इसका प्रमाण है। मन्थार में ब्रह्म-संप्रदाय
में विरह की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए कृष्ण की निष्ठुरता का उल्लेख किया
गया है। अयोध्या कृष्ण और योपी तथा राधा की प्रीति समान तथा पारस्परिक
है। अन्य संप्रदायों में शोनों की प्रीति बटाबर की मानी गई है। शोनों में तनिक
भी अंतर नहीं है। शोनों एक प्राण जो बेहू है। मन बचन और कर्म से दोनों एक
हैं। सगी संप्रदाय में शोनों को एक बने की दो बालों के रूप में व्यक्त किया
गया है —

बहुत भक्ति इनकी कहें की बिहारिदास विचार ।

बिकल बिना प्राणिवर्ने एक बनाई शर ॥

राधा-कृष्ण का प्रेम समान होते हुए भी किसी संप्रदाय में कृष्ण को और
किसीमें राधा की प्रेम का आनंदन माना गया है। ब्रह्म-राधाब्रह्म-बिबाई
और शोहीय संप्रदायों में कृष्ण प्रेम के आनंदन हैं —

यद्यपि होजत की लगन सब मिलि कहूँ समान ।
 ये प्यारी महबूब है आशिक प्यारी आनि ।

(बल्लभ रसिक)

सली-सम्प्रदाय में प्रेम का आलंबन राधा है । कृष्ण उदा राधा के प्रेम के वाचक रहते हैं उनसे भयभीत रहते हैं—

प्यारी तू एक बात को मोहि बह आबत री

मति कबहुँ कुमया करि जाति ॥ (कैलिमान, ७८)

कृष्ण मक्तों में प्रेम का रूप सरोवर-सुष्य माना है जिसकी ओर प्रेमी समस्त बन्धनों को तोड़कर बीड़ता है । यह पयोधि है जिससे दोनों प्रेमी निकल नहीं पाते राध-राध बूबते-सतपाठे रहते हैं । स्वामी हरिदास ने इसे मदिण-सुष्य माना है जिस पीकर प्रेमी मतवाला और दीवना हो जाता है । इस प्रेम-मद्य को कभी-कभी प्रेमिका स्वयं प्रेमी को पिलाती है ।

कृष्ण मक्तों में राधा-कृष्ण के प्रेम के सम्बन्ध में 'काम' शब्द का प्रयोग कई बार किया है पर राध ही राध इसे लौकिक काम से भिन्न माना है । यह प्रेम लौकिक काम को मन्तेबासा है । जिस काम का इन सम्प्रदायों में उल्लेख हुआ है वह प्रेम का पोषक बिहार का प्रेरक और अलौकिक है । सली-सम्प्रदाय में भी समितकिषोरीदेव ने इसका स्वरूप निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है —

जहाँ काम तहें प्रेम है जहाँ प्रेम तहें काम ।

इन होजत की सधि में बिलतत स्वामास्याम ।

बिछुरन रेत तु प्रेम है यद्यपि यद्यपि सुकाम ।

रस साधर बिलतत रसिक रोम रोम अमिराम ॥

बरस तु कहिए प्रेम रस परत केति सुख काम ।

गीर इयाम आतसित प्रति रोम-रोम अमिराम ॥

इस प्रकार इनके अनुसार प्रेम और काम उदा राध रहते हैं । प्रिय-प्रिया को परस्पर सम्बन्ध रखनेवाला कर्तुं न बिछड़ने देनेवाला भाव प्रेम है । आकर्षण का अभिव्यक्त रूप प्रेम है । इनसे भिन्न बंध-बंध में जो उमंग मरी है तथा जो ग्यस और केति का सुख है उगे काम कहते हैं ।

जहाँ प्रेम है जहाँ नेम नहीं रहता है यह सभी सम्प्रदायों में माना है । गीतियों तथा राधा में प्रेम के लिए ही गमता मोक-मर्यादाओं का त्याग किया था । जिन सम्प्रदायों में निरय-बिहार की बरपना है उगहने भी प्रेम में नेम के न रहने की बात कही है । इन भाव का बिहारनिगास का एक पद उल्लेखनीय है —

मन प्रेम ही नेम रही न जिया ।

यम संपम निवेच बंधे कत तो लवि को बरयो न हिया ।

पुनि पावत ही सुख स्वाम कसू बिसरे सुख वैहू किया न किया ।
की बिहारनिवास मनोहर की सुख सर्वत से हित हाथ दिया ।
कोउ कैसिये कोटि कहो सुख की मन प्रेम ती नेम रई न भिया ॥

राधाकृतम सम्प्रदाय में बिहार की स्थिति में प्रेम और नेम का एक नहीं ही अर्थ प्रस्तुत किया गया है। बिहार की स्थिति में प्रिया प्रियतम की कीड़ाए 'नेम' हैं तथा उनकी आत्मबिभोर की स्थिति 'प्रेम' है। दूसरे शब्दों में प्रेम साधन विकासार्थीत और सदा एकरस रहनेवासा तत्व है। नेम बिहार की स्थिति में बाकि से अन्त तक मुक्त एक ऐसा धर्म है जो प्रेम को व्यर्थहार्म बनाता है। जिन क्रियाओं द्वारा प्रेम पहुँचाया जाता है वे सब नेम हैं। प्रेम-नेम की यह व्याख्या नेवस इसी सम्प्रदाय में है।

प्रेम की स्थिति में नर्मानर्ग का भेद ही नहीं मिल जाता बल्कि धर्म अधर्म और अधर्म धर्म तक बन जाता है —

धधरम धरम धरम जहाँ धधरम ऐसी कहुक रतिकता चाहि ।

(बन्तम रसिक)

प्रेम में तत्सुख भाव की प्रधानता है। तत्सुख का अर्थ है अपने सुख से स्वान पर प्रिय के सुख का ध्यान। जमीक सुख में सम्योप और तुष्टि है। राधा और कृष्ण को एक-दूसरे के सुख का ही विशेष ध्यान रहता है। स्वार्थ और अहंकार का वहाँ नाम नहीं है। वही तत्सुख भाव राधाकृतम सम्प्रदाय का मूलाधार है। हितचौरासी का प्रथम पद इसी भाव का श्लोक है। मन्त्री-सम्प्रदाय में भी तत्सुख की ही महत्ता है। यहाँ अन्तर इतना ही है कि कृष्ण अपने समस्त अहंकार को मल्ट कर प्रिया से प्रेम की आकांक्षा करते हैं तथा प्रीति की रीति माननेवासी प्रिया उन्हें उनकी मामध्य के अनुकूल ही रम का पात्र कराती हैं।

कृष्ण मति क बन्तम-सम्प्रदाय ने प्रेम-धम को ईस्वर प्राप्ति का सरसतम मार्ग कहा है। सूरदास ने इसे राजपथ तथा सीधा मार्ग (सूरदास ४१०८) कहा है। सम्पूर्ण धमर-नीत की रचना ही योगमार्ग की जटिलता से प्रेम-मार्ग की सरलता और स्पष्टता निश्च करने के लिए की गई है। हृदय-वस की प्रधानता के कारण इसकी सरलता असंदिग्ध मानी गई है फिर भी कहा गया है कि इसकी निबाहना सरल नहीं है। इसीमिये परमानन्ददास ने इस अनि कठिन मार्ग को बताया है जिनमें पैर रखते ही जन स्वीकने लयता है (परमानन्द सागर, १४६)। स्वातन्त्री ने इसे तमवार की बार-मुख्य माना है। अन्य कवियों ने भी इसे कठिन बनाया है। इसकी थोटा नाम से भी अफिद होनी है।

इस प्रेम में बिरह मिसा हुआ है। हमसे व्यावृत्ता उत्पन्न होनी है और

प्रकृति बुलवायी तथा संगार मूना समने मपता है। इस प्रेम में प्रेमी से मिले बिना पीड़ा कम नहीं हाती तथा मृत्यु तक नहीं मुहाती है। यह नित्य बर्द्धमान है। इसकी पीड़ा बही जानता है जिस पर बीतनी है अथवा प्रिय ही जानता है। पूर्वे बासक के समान इस पीड़ा को सहना पड़ता है।

इस प्रेम की जाल भी बटपटी है। बिना मिले तो बियोग ही है पर मिलने पर भी प्रतीत नहीं होती है। इस मिसन के प्रत्येक क्षण में बियोग-संयोग की बौद्धिमत्तानी चलती रहनी है —

बिरह संजोम छिन्हि छिन महीं। बह्नि पीबनि मैने बाहीं ॥

(प्र. बशास)

यह बिरह भी बटपटा है। इसे गुनकर विस्मय होता है। इसमें प्यास जल न पीकर जल ही प्यास को पी रहा है प्यास ही बस हा मई है —

घरबरी मति को बिरह सुनि भुलि रहती सब सोइ।

जल पीबत है प्यास को प्यास भवो जल सोइ ॥

(प्र. बशास)

गण्डेप म हम कह सकत है कि कृष्ण भक्ति धाखा में प्रेम की बिरुत नभि म्पत्ति हुई है। यह बिलक्षण एकनिष्ठ सम संभाम बियोग से परिपूर्ण नित्य नूतन और बद्ध मान है। इसका स्वरूप और इसकी महिमा अकथनीय है।

रसधान में प्र न की अभिष्यरित

प्रेम के स्वरूप का यह बिबेचन रसदान तथा मीरा के काव्यों में उपलब्ध प्रम-स्वरूप के बचन बिना अबूरा ही रह जायगा। मगएक सरोप में उसका बर्नन यहाँ किया जा रहा है।

रमरान ने प्रेम मात्र का मध्यम देते हुए कहा है कि प्रेम बही है जो पुन यौवन रूप बल की चाह नहीं रखता है और स्वार्थ तथा कामनाओं से रहित होता है —

बिनु पुन बीबन रूप बल बिनु स्वारय हिन जानि।

पुत्र कामना से रहित प्रेम सकत रसतानि ॥

(प्रमवाटिका, १३)

पिना-पुन बन्धु, मित्र जादि में प्राण प्रेम महुत्र स्नेह है पुत्र प्रेम नहीं।

प्रेम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए रमरान इसे भौतिक तथा चारमादिक चीनों ही जानकों का मूनापार मानते हैं। यह एकनिष्ठ एकांगी तथा प्रिय को बचवा सर्वत्र गमननेवाला होता है। यह नित्य बर्द्धमान तथा कभी भी पब

प्रपञ्च नहीं होनेवाला है। यह काम कीम मोह सोम, मद मात्सर्यं च परे यति स्मृति और पुराणादि सभी का धार है।

विना प्रेम के ज्ञान व्यर्थ है तथा प्रेम को जान लेने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है।

प्रेम स्वयं ईश्वर है। दोनों में भूप और सूर्य का सम्बन्ध है —

प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम स्वल्प ।

एक होइ ईं यों सत्तें ज्यों सूरज सब भूप ॥

(प्रेमशाब्दिका २४)

इतना ही नहीं, प्रेम हरि से भी भेद है क्योंकि हरि भी इसके बंध में है। यह सभी मुक्तिवर्षों से भेद है।

ईश्वर और प्रेम दोनों ही अगम और अकल्पनीय हैं। लोगों में इन्हें समझाने की अनेक प्रकार से चेष्टा की है। यह छागर के समान अगम अश्वि और अनुपम है। यह बहु भविरा है जिसे पीकर ब्रह्म—जल के स्वामी तथा शंकर महा देव बने हैं। यह एक रूप के समान है जिसमें अपमा रूप भी कुछ बजीब-सा दिखलाई पड़ता है। कोई इसे फौमी तो कोई इमरा ठगवार, नेजा भाला, लीर या बाम कहता है। इसकी मार की मिठान रोम-रोम में भर जाती है जिसके कारण मरता हुआ प्राणी पुन जीवित हो जाता है। यह विचित्र वैश है जिसमें दो बिसों का मेल होता है और प्राणों की बाजी सम जाती है। अर्थ में प्रेम ही बीज, अंकुर उस शस-पात फल-फूल सभी कुछ है। कार्य-कारण कर्ता-कर्म, फिवा-करण भी प्रेम ही है। संसार में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रेम में मेल विधि-विषेय कुछ नहीं है।

रसज्ञान में प्रेम के कई भेद माने हैं। जन्होंने प्रेम को विषयानन्द या लौकिक प्रेम तथा अज्ञानन्द या भगवत्प्रेम दो रूपों में माना है। इनमें भगवत्प्रेम भेद है। इनका इतरा वर्गीकरण शुद्ध तथा अशुद्ध प्रेम में है। शुद्ध प्रेम साहज और स्वाभाविक होता है जब कि अशुद्ध प्रेम में स्वार्थ रहता है। शुद्ध प्रेम विकार रहित होता है। जब तक हृदय में विकार रहते हैं तब तक शुद्ध प्रेम नहीं रहता और जब हृदय में शुद्ध प्रेम आ जाता है तब उसके पास विकार नहीं फरकते।

शुद्ध प्रेम की कमीटी बतलाते हुए रसज्ञान ने कहा है कि जिस प्रेम में ईश्वर का वैशुष्ट की भी इच्छा नहीं रह जाती है उसे शुद्ध प्रेम कहते हैं। शुद्ध प्रेम दो हृदयों का ही मिसल नहीं बल्कि दो तनों का भी एक हो जाना है —

दो मन एक होत सुयो ये बहु प्रेम न साहि ।

होइ जई ईं तनहुँ एक तोई प्रेम कहाहि ॥

(प्रेमशाब्दिका, ३४)

षष्ठ अध्याय

भक्ति-श्रृंगार के नायक

भक्ति-श्रृंगार का नायक श्रृंगार का आशय और आदर्शन दोनों ही हैं। वह समस्त धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप त्याग भावना से पूर्ण सुकृती कुसीन सन्ध-भुसोद्भव बुद्धि-बैभवधामी रूप-यौवन-संपन्न उत्साही उद्योगशील तेजस्वी शत्रु और मुसीबत है। भक्ति की विभिन्न धारणाओं में उपसर्ग नायक के स्वरूप का संक्षिप्त चित्रण नीचे किया जा रहा है।

आत्ममार्गी धारणा

भक्त की आत्मा के प्रिय निर्गुण निराकार परब्रह्म राम हैं जोकि ब्रह्मरूप के पुत्र नहीं हैं। यह आत्मा उसकी 'बहुरिपा' है। वह अपने प्रेम से आत्मा को आत्मावित किए रहता है तथा स्वयं प्राम्ण होकर उसे मोहाम रैता है। (कबीर प्र वाचमी पर २)। आत्मा-परमात्मा का यह मिसल अणिक होता है, इसलिए इसे निन्दुर कहा गया। बहिर की भीति वह नायक की भीति पुकार नहीं भुनता है। (कबीर पर २ और ३०२)। इनसे अधिक उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं होगा है। इस स्पष्टता का कारण नायक की अनूर्णता है और इसी वजह से वह निन्दुर प्रतीत होता है।

अत्ममार्गी धारणा

सूफ़ी काव्य में नायक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन धारणा में तीन महत्त्वपूर्ण नायक हैं—रत्नसेन मुजान और मनोहर। रत्नसेन के अनिदित्त लभी राजकुमार हैं और नूहस्मी के बंधन से मुक्त हैं। जीवन में प्रवेश करते ही वे अम-अम पर एक एक है और अम के लिए सर्वत्र ग्लोड्डाका करक का तैयार रहते हैं। धार्मिक दृष्टि में वे भीरमनिग नायक हैं। साथ ही इनमें समीरता विषय और धारणा-गुण भी अपनी पराकाष्ठा में हैं। इन रूप में धीरादास भी कहे जा सकन हैं। रत्नसेन बिलीङ्ग का राजा है तथा धीरादास नायक के लभी गुणों में मुक्त है फिर भी उनमें प्रवृत्तता प्रेम की ही है। बर्धनी के प्रेम में वह राजपाट छोड़कर यागी हो जाता है तथा मिहलदीप में भी

बहु चित्तों की नीरोगता की मूल्य-सुख-विशेष में बूझ जाता है। इसलिए उसे भी नीरोगता की ही रक्षा उपयुक्त होना।

मायक के श्रुति-मार्गिक भेद अनुकूलता की दृष्टि से इस शास्त्र में मायकों के अनुकूल और दक्षिण—दो ही रूप उपलब्ध हैं।

इस शास्त्र के अनुकूल मायकों के बा सुख भेद किए जा सकते हैं। इनमें प्रथम तो पूर्ण या शुद्ध अनुकूल मायक है जिसका ध्यान और प्रेम केवल एक मायिका पर ही केन्द्रित रहता है। मधुमासती का मायक मनाहर ऐसा ही मायक है। उसकी एक ही प्रेमिका है और बही उसकी पत्नी हो जाती है। द्वितीय रूप संकर-अनुकूल मायक का कहा जा सकता है। ये मायक बहुपत्नीवर्ती हैं। रत्नसेन तथा सुजान ऐसे ही मायक हैं। रत्नसेन अपनी पत्नी का छोड़कर पद्मावती को प्राप्त करने जाता है। पद्मावती को प्राप्त करने के बाद से बायमती के संदेह प्राप्त करने तक की स्थिति में वह पद्मावती के प्रति अनुकूल मायक है। मागमती का संदेह मिटते ही वह चित्तों के लिए बस बैठा है। यही से उसका दक्षिणत्व प्रारम्भ हो जाता है। चित्रावती के सुजान की भी यही स्थिति है। चित्रावती से मिथल के पहले तक सुजान ने अपने कौमार्य को अक्षुण्ण रखा तथा विवाह होने पर भी कौमार्य के साथ योहाययत्न नहीं मनाई। चित्रावती से विवाह होने पर भी वह उद्योग-पूर्वक रम गया तथा कौमार्य को पूर्वक-विस्मृत कर चुका। इस स्थिति में उसकी पत्नी अनुकूल मायक में होगी। कौमार्य का संदेह मिटते ही वह उसके मिलने के लिए आतुर हो उठता है। यही से उसका दक्षिणत्व प्रारंभ होता है। इस बीच की स्थिति को संकर अनुकूल कहा जा सकता है।

मायकों के दक्षिणत्व का संकेत पीछे किया जा चुका है। रत्नसेन का दक्षिण मायक का रूप चित्तों में स्पष्ट होता है। मागमती और पद्मावती—दोनों को ही वह मिलाकर रहने का उपदेश देता है। वह कहता है, 'निम्होमे एक बार पति का मन समझ लिया है, वे एक-दूसरे से क्यों झुंझेंगे? सच्चा ज्ञान इस प्रकार है। कोई उसे नहीं जानता। कभी रात होती है, कभी दिन होता है। धूप और छाह दोनों ही प्रियतम के रंग हैं। बालों एक साथ मिलाकर रहो। सड़ना छोड़ो और रोनों समझा। सेवा करो और सेवा से ही सुख प्राप्त करो। सुख दोनों ही मंगा बनना के समान हो। तुम्हारे लिए परम्पर पोष या संभ्रम लिया है। दोनों मिलकर सेवा करो और सुख योगो। (पद्मावती ४४५)। सुजान भी कौमार्य-मग्न संकट में चित्रावती को समझाते हुए कहता है 'मेरी प्राय-व्यापी सुन्दरी! तुम्हारे बिना शरीर में प्राणों का रहना कठिन हो रहा है। मुझे तुम्हारे बिना कोई बूझा प्रिय नहीं है पर उस बेचारी से मेरे बिरह में बड़ा दुःख पाया है।'

तुम उसे छीन जानकर मठ डूबी हो। वह तुम्हारी जाहाकारिणी होगी। इत प्रकार असहाकर मुजान कीमावती के पास जाता है। (बिधा ५६५-६६)। अत एव रत्नसेन और मुजान दोनों ही पूर्णतः और अतन्त्र वैशेष नायक हैं।

नायक का एक भेद पति और उपपति भी होता है। अपनी प्रेमिकाओं से विवाह हो जाने के बाद सभी नायक पति हो जाते हैं। विवाह के पूर्व उनका रूप प्रेमी का है। उनकी प्रेमिकाएँ परबधा हैं। धात्रीय दृष्टि से वे परकीया कथ्यका हैं। अतएव विवाह के पूर्व तक इन नायकों को उपपति कहा जा सकता है। जैसे इनके लिए उपयुक्त शब्द 'प्रेमी' है।

नायकों का काम-धात्रीय भेद इस साहित्य में नहीं किया गया है यद्यपि सभी नायिकाएँ पतिनी पाति की हैं। नायकों के काम-धात्रीय भेद का वर्णन मात्र बिधावती में है। पतिनी नायिका के उपयुक्त नायक शब्द बर्य का होता है इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि सभी नायक इसी वर्ग के हैं।

पुरुषों की दृष्टि से सभी नायक सुख-निपुण दुःख-निपुण और रति-निपुण हैं। चरित्र की दृष्टि से सभी नायकों का स्वरूप प्रभावशाली है। संक्षेप में उनका स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

रत्नसेन

रत्नसेन बिछोड़ का राजा है। वह बुद्ध-भाही है। इसीलिए हीरामन ऐसे बुद्धबान धुक का समाचार मिलते ही वह उसे संघाटा है। वह पुत्र को पहचान कर उनका उचित मूल्या बेनेवाला है। अपने हीरामन को एक माय रूपों में मोल दिया था।

रत्नसेन की रानी नायमती है। वह रूपगविना है तथा उसे अपने पति का प्रेम भी उपलब्ध है। किन्तु रत्नसेन का उनका प्रति एकमिष्ट प्रेम नहीं है। रानी को भी उनका प्रेम पर बिबाध नहीं है। वह राजा की सौंदर्य-सोमपना तथा उसके लिए सर्वस्व त्याग की मत्तवृत्ति से परिचित है। रत्नसेन नायमती के परिवर्ष से ही बीधा हुआ है। यदि जगमे भी कोई सुन्दरी का पना रत्नसेन को मन्न जाना तो वह तत्पश्चात् नायमती का छोड़कर बस बना हमम गबिह नहीं है। इसी कारण से नायमती ने हीरामन को हत्या का प्रयत्न किया था।

रत्नसेन बीधी है। वह मुख्यतः लिए नायमती का प्रति बगार बंद होने को उद्यत है। वह उनका स्पून प्रेम का शानक है। सभी नायमती भावनी है। इतना भा अरराव करके में ही यदि प्रिय लुट जाना है तो या पति की अपना बड़े उनका कहना सूटा है। (पद्मावत ५६)।

नायक की प्रति रत्नसेन का प्रेम एकनिष्ठ न होते हुए भी उसके हृदय में प्रेम का सागर भरा है। परमावती का रूप वपन मुकुट ही वह उसपर सुख हो जाता है। वह उसकी रूपमासुपना कही जा सकती है पर बाद में उसका प्रेम एक-निष्ठ और स्थायी हो जाता है। वह प्रेम-सागर का उष्ण पथिक है और प्रेम-पंच की कठिमायों से विचलित नहीं होमेवासा है। उसके प्रेम की दो बार परीक्षा ली गई है और वह उनमें सारा उतरता है। कृपाकर्षण से आरंभ उसके प्रेम में सच्चे प्रेम की बृद्धता सदा रही है।

त्यागी बृहस्पती और प्रेम में दीवाने रत्नसेन का रूप बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। अपनी प्रिया की शोक में वह राज-वाट सुख-विनाश बहू-बाधव समीका त्याग करता है। प्रेम-पंच से न तो उसकी माता का बदल और न ही पत्नी की विधवा किराही ही उसे राक सकी। माता और पत्नी को दिए गए उसके उत्तर उसके प्रेम की घोषणा और बृद्धता के घोलक है।

प्रेम-पंच ने रत्नसेन ने अपने बहूकार का पूरा त्याग कर दिया था। एक क्षण पूर्व का राजा जब वन-वन भटकनेवाला योगी हो गया। अपनी प्रिया के बाम की रट उसे मनी थी। मही उस माय की वाक्यांशों से निर्भय करती है। जीवन की अनिजाया छाकुर वह इन प्रेम-पंच में उतरा है इसलिए उसकी उक्ति अपरिमित हो गई। मृत्यु का उसे भय नहीं रहा। वह अयातिपिमा से यह कहने पर कि 'मुहुर्तं धुन नहीं है, कहता है, प्रेम के पंच में जानेवाला दिन और बड़ी नहीं देखता। त्रिभुक्त शरीर में प्रेम है उसमें मौल कहीं? उसकी देह में न रख होता है न शरीर में शक्ति। पंचिज भूला रहना है जलना नहीं जानता। प्राय लेते समय मृत्यु दिन नहीं पूरता। प्रेम में बोरार्द हूँ सदा बना बिना पर चढ़ने पर मुहुर्तं पंचिज से पूरता है और यदि मुहुर्तं न हुआ ना बना पर जाकर बर्तन-बोह समेटने समय है? जो गतागति राकर मरन चलाता है उस दिन और बड़ी का मुहुर्त कब कोई बजाता है? मैं घर-नगर अपना कहीं बना गया हूँ? जो घर और शरीर है वह अन्त में दूसरे का हो जायगा। मैं पंच वासा पड़ी हूँ। त्रिभुक्त में मुझे रहना है उसी वन का पाने के लिए येन बना हूँ। तुम सब अपने घर जाओ।' (१२०)। मन्मथ त्रिभुक्त प्रेम-पंच में पय भरा उधे जिर संशार के विधि-नियमों में मानापमान में और माया-माह में कीन बांध सकता है? रत्नसेन भोज बंधा। रत्नसेन की पीरना और एकनिष्ठता देखकर हीरामन उसे पराक्रम में विभ्रम सत्यवादिना में हृत्स्वन्द दोष में गोपीचन्द और धीरान में भयु हरि से धोष्ठ बतलाता है। (१६०)।

रत्नसेन का योगी स्वरूप भी अनि उल्लेख है। परमावती का नाम रत्ना हुआ उसके मार्ग पर दृष्टि देते हुए वह उसी प्रकार उसका ध्यान करता है जैसे

थाक और हीन स्वाति-नक्षत्र के जल का ध्यान करते हैं (११६)। सारे संसार से रत्नसेन का ध्यान हटकर अपने प्रिय में केन्द्रित हो गया था। वह सन्धे धर्मों में प्रेम-योगी था। विरह दुःख में वह जलता रहा और उसने सिंहल द्वीप में मन्दिरे के देवता की मनोनी गनाई। उनके स्वभाव में एक ही स्वान पर सघटा विद्यमाई पढ़ती है अब वह देवता की अपघण्य कहता है (१०२)।

अपनी असफलता की निराशा में रत्नसेन एक बार शीर्ष छोड़कर चिता में जल मरना चाहता है किन्तु महादेव उसे बचा लेते हैं। उनके उपदेश से पुनः उनमें अपनी पुरानी बन्धनता और भीरता जा जाती है। जिस समय ब्रह्मर्षिसेन की सेवा योगियों को घेरने के लिए जाती है उस समय वह अपने साधियों को बुझाने की लक्ष्य प्रेम-व्यंग्य म मर मिटने की सीख देता है। एकदम जाने पर भी वह निश्चित प्रेम के नील पाठा है और सुनी के सम्मुख पहुँचकर हँस पड़ता है (२६०)। राजपुत्रों ने सुनी बैठे समय उससे कहा 'विसका स्मरण करना चाहते हो उब स्मरण कर लो। अब हम तुम्हें बैठकी का भीरा बना देंगे। उस समय का उसका उत्तर उसके प्रगाढ़ प्रेम का द्योतक है। वह कहता है 'मैं हर स्वात में उसीका स्मरण करता हूँ—घरटे और पीठे दोनों अबस्वाओं में जिसका ही चुका हूँ। मैं उस रामा पद्मावती का स्मरण करता हूँ जिसके नाम पर मेरा यह धीम निष्कार है। मेरी कावा में जिसकी रक्त की बूँदें हैं वे सब 'पद्मावती पद्मावती' ही कहती हैं। यदि मैं धीमिठ रहा तो मेरे एक-एक बूँद रक्त में उसी पद्मावती का स्वात है। यदि सुनी पर बहू या तो उसीका नाम ले-लेकर मरूँगा। मेरे शरीर का रोम रोम उसीसे बिबा है। प्रत्येक रोम-रूप कैपकर धीम उसके द्वारा गुड किया गया है। मेरी हड्डी-हड्डी में वही 'पद्मावती-पद्मावती' घण्ट हो रहा है। मेरी नम-नस में उसीकी ध्वनि उठ रही है। उसके विरह ने शरीर के भीतर की मज्जा और मांस की धान को ग्राहता है। मैं तो एक सीधा (कठरी) बाध रह गया हूँ। उसमें वह रूप बनकर समाई हुई है (२६२)। यह रत्नसेन के प्रेम की उच्चतम स्थिति है।

योगी रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त कर सयोगी हो जाता है। उसके इस गंवाही रूप में उनका बीका-बिलाग-नीपुष्य प्रकट होता है। वह केवल योगी ही नहीं योगी भी है। जिस समय पद्मावती उनका योगी-स्वरूप का आत्मजन लेकर उनका परिहाण करती है उस समय वह भी अपने प्रेम-व्यंग्य में निपुण हान का नकेन करता है। पद्मावती शीपद गजने का प्रस्ताव कर रत्नसेन की परीक्षा लेती है और रत्नसेन भी उसी माध्यम से अपने प्रेम और दुःख को प्रकट करता है। वह शीरामी आगनों का घासो काम-कना-विगारद है तथा योगी होकर

पदार्थों का स्वाद लेते हैं चतुर है। उसकी कुशलता से पथिनी संतुष्ट होती है।
(३१६ ३२४ आदि)।

यथा रत्नमन बिलयी और चतुर है। पिदा क लिए साक्षा मंगले ममम
उसत मन्त्रंस्तन म नाचवनी की बात न बतलाकर राज्य-रक्षा की समस्या उठाई।
उसके व्यवहार-कुशल और मीठिन्न होने का यह प्रमाण है।

बिछीड़ जाने पर रत्नसेम क दक्षिण नायक होने का प्रमाण मिलता है।
बहु भागमत्ता और पम्नावती दोनों की बरम्पर मेल मिमाप से रत्ने का उपदेश
देगा है।

राजा रत्नसेन और और तन्त्रमी है। अपन शोचन क कारण बहु मत्ता
छहीन स एता जाता है तथा अपनी मर्दा की रक्षा क लिए देवपाल से युद्ध करना
हुआ माया जाता है।

रत्नमन = चरित में स एत गुणों का समावेश है। बहु एकनिष्ठ प्र मी
अपनी पत्नियों का मन्तुन रत्नसेना कान्त गुण्य और बाडा और मान क
लिए मर-निन्दयेवाला कवि है।

मुजान

बिजावली का नायक राजकुमार मुजान है। जीवह बंध की अवस्था में ही
गमल निधामों में पारपत्र होकर तथा गमल लक्षिमिचिन्त गुला म परिपूर्ण हाकर
बहु प्रेम पत्र में बण रत्ता है।

बिजावली के बिज-दर्शन स उमके हृदय म प्र म उत्पन्न हुआ है। बहु
मय भी पुण्य बिजकार है। बिजावली की बिजवादी म उमन अपना मपूर् बिज
बनाकर मय दिया मा जिसे देखकर बिजावली उन पर मुग्ध हुई थी।

मुजान चतुर और व्यवहार कुशल नायक है। बिजावली का पना ममान
के लिए बहु समसास प्रारम्भ करता है और इन बिज म बिजावली क मूर्तों क
मम्पर्क में जाता है।

बिजावली के कप-बनन को सुनकर मुजान योगी हो जाता है। उसक प्र म
की एकनिष्ठता की परीक्षा परेश भय प्र म रंय की कठिनरहती बडसाकर सेना
है। उसकी दुःखता दम्बर परेश उच शिष्य बनाता है तथा कु बर सर्वम्भ ग्याप
क प्रेक्ष-वध पर निकल पड़ता है। उनर श्वाय दुःखता तथा एकनिष्ठता का यह
प्रमाण है।

मुजान क प्र म की एकनिष्ठता की कड़ी परीक्षा कोलावली के मम्पर्क क
ममम हुआ है। यानी कु बर बिजावली का नाम रटता हुआ कपतपर पहुँचना
है। यही बिजावली का कपन कर्ता है किन्तु माय्य बिजान इन के कारण

जनेशानेक कठिनाइयों में पड़ जाता है। बिट्ठ में बग्न योमी रूप में बिजावसी को छात्रता हुआ वह मटकता है। इसी समय राजा चन्दर की पुत्री कौसावती उसके रूप पर मुग्ध होकर उस से उस बन्दी बना सेठी है। अपनी सखी द्वारा वह अपना प्रेम निवेदन करती है पर अपने प्रेम में दृढ़ सुमान का इमान तो केवल बिजावसी में ही केन्द्रित है। स्वयं कौसावती पति के एकान्त में उसके पास जाती है, पर वह उभर देसता भी नहीं है। प्रेम की यह दृढ़ता जिसमें अपूर्व सुन्दरी राजकुमारी के प्रेम-निवेदन की बबहेलना की जाए अपूर्व है।

प्रेम की इस दृढ़ता के साथ-साथ सबसा की पुकार पर उसका पीरूप भी कमक सठता है। सामरगड़ में जीहूर की स्थिति जाने पर वह रक्षा के लिए तत्पर हो जाता है। इस समय कौसावती को उसका बिजावसी-प्रेम जाठ होता है। वह बिजावसी की बेटी बनकर रहने को कहती है तथा प्रेम की नील माँवती है। सुमान बिजावसी की घपप प्याकर उसे आरवासन देता है। सुमान के लिए उसका मन-प्राण ईश्वर—सभी कुछ तो बिजावसी ही है। उसकी घपप से बड़ी और क्या घपप हो सकती है। अपनी घपप द्वारा उसने कौसावती का प्रेम निवेदन स्वीकार करते हुए भी बिजावसी के प्रति अपने प्रेम की पुष्टि की। कौसावती के प्रेम की यह स्वीकृति भारतीय परम्परा के पूर्वत अनुकूल है।

सुमान की आरिथिक सबलता और बिजावसी के प्रति उसके प्रेम की सन्नता अद्वितीय है। कौसावती से विवाह करके भी वह अपने ब्रह्मचर्य को बिजावती के लिए सुर्क्षित रखता है। वह पुनः अपनी प्रिया की खोज में समस्त भोज-विनास का छोड़कर जप्त देता है। जनेक कष्ट सहने पर और सब प्रकार से निरास हाकर वह रूपतमर के पय पर पापसों की तरह बिजावसी-बिजावसी' बिस्नाता है।

उसे मारने का प्रयत्न किया जाता है; पर प्र नी सुमान को भय कहाँ ? उसे अपने प्राणों की बिन्ता नहीं है किन्तु उसका शक्तिस्व उसे निरीह की भाँति मरने से रोकता है। प्रबल पराक्रम से वह दसगंजन नामक मठवाले हापी को मार दासता है। इस प्रकार प्रेम रंघ में मरना चाहकर भी वह मर न सका। राजा द्वारा बन्दी किए जाने पर भी यह अपनी प्रेमिका के प्यान में मग्न रहता है। अंत में उसका विवाह हो जाता है।

कौसावती और बिजावसी से संबंध होने पर सुमान के रति-नैपुण्य का संकेत मिलता है। वह काम कला-विद्यारत्न है। वह शक्तिशाली है और राजों नायिकाओं की सुती रखता है।

सुमान अपने प्रेम में एकदिष्ट दृढ़ और पंभीर रहा। उसने शक्तिस्व

भरपूर है और उसने उसका मार्त-रसा में सफल उपमोय किया। वह स्वामी शक्ति तथा रति-कला-कुशल नायक है।

मनोहर

मधुमासती का नायक मनोहर राजा सूरजभान का पुत्र है। सुजान की शक्ति वह भी अस्वाभाविकता में ही सभी युगों में पारंगत हो गया। बारह वर्ष की अवस्था में इसे मुबारक पद दे दिया गया। उसी समय परिस्थितियों ने इस प्रेम पंथ पर लाकर झुका कर दिया।

अपराधों द्वारा मनोहर मधुमासती के शयन-कक्ष में मोते ममम पहुँचा दिया जाता है। निश्चित राजकुमारी के रूप-सौन्दर्य पर मनोहर मुग्ध हो जाता है। वह बाकपट है और मधुमासती के आगे पर अपनी बाकपट्टा द्वारा अपने प्रेम का निवेदन करता है। वह अपने-दोनों की प्रीति को अन्त-अन्तमास्तर ही बतलाता है और अपना प्र-निवेदन बड़े मुझर रूप में करता है। प्रेमाश्रयी शाका के अन्य नायक प्रथम मिलन के समय अपने प्र-निवेदन में दाने अतुर नहीं हैं। इस रूप में मनोहर की भवना अत्यन्त अतुर प्रथमी के रूप में की जा सकती है।

अतुर प्रथमी होने के साथ-साथ मनोहर को धर्म का भी ज्ञान है और उद्यम धर्म भी बहुत है। अपने आनन्दान्त के अनुरूप वह मधुमासती से समस्त काम क्रियाएँ करके भी संभोग को वचा जाता है। यह मनोहर के काम-कला विचारर होने का संकेत है।

अन्य प्रेमाश्रयी नायकों की शक्ति ही मनोहर भी स्वामी तथा प्रेम-पथ में सर्वस्व नुदानेवाला है। यह इस पंथ में अपने शर्मा की ज्योत्स्नार करने को तैयार है। मित्र की शोत्र में वह भी बोधी बन जाना है।

विरह की स्थिति में मनोहर संसा-सुम्य-मा हो जाता है तथा विधिप्य की शक्ति मधुमासती का नाम रटता फिरता है।

मनोहर का प्रेम एकनिष्ठ तथा उमका अरिज उगल है। प्रेमा की रसा करने के कारण उसके (प्रेमा के) माता-पिता उससे उनका विवाह करना चाहते हैं किन्तु मनोहर उस अपनी बहन मानकर विवाह करना स्वीकार नहीं करता। उसमें परबु-ग-कातरता तथा शात्र धर्म मनेष्ट पाशा में है। इसीसे अरिज होकर उसने प्रेमा की रसा की थी।

मनोहर के विरही रूप का विशेष वर्णन नहीं है। विरह में शिर पर धूल चेंचल हुए रोने का वर्णन है। वयार्थ में मनोहर के अरिज का विस्तृत विकास इस काम में नहीं है।

समस्त रूप में हम यह कहते हैं कि मनोहर और और ममीर एकनिष्ठ प्रेमी

रामायणी धारा

इस साहित्य में शिव राम और लक्ष्मण ही शूभार के नायक हैं। इनमें श्री शिव और लक्ष्मण गौण हैं।

नायक भेद की दृष्टि से सभी नायक धीरोवाच हैं। वे शंभीर क्षमाधीस स्वाभिमानो और विनीत हैं। तीनों ही नायक मनुकुल और एकपत्नीव्रत-व्रती हैं। सभी पति हैं और उत्तम धोनी के हैं।

इस संयुक्त धारा में नायक के शूभारी रूप का विशेष चित्रण नहीं है। श्री बुद्ध स्वयं वर्णन प्राप्त है वह दो दीर्घों के अंतर्गत देसा जा सकता है। प्रथम प्रेमी तथा शोभी रूप है। इस रूप में शिव लक्ष्मण और राम तीनों का ही उल्लेख है। रामचरितमानस में शिव के संयोगी रूप का संकेत है। इसमें उनके विविध प्रकार से पार्ष्णी से संयोग का उल्लेख है। वे निरम शबीन विहार करते हैं। यह उनकी शीघ्र विहार-शुशान्ता का संकेत है। लक्ष्मण के संयोगी रूप का संकेत गीतावली के एक पद में है (१०)। इसमें उमिता और लक्ष्मण दोनों के परस्पर देखने का उल्लेख मात्र है तथा शक्ति भवन में जाते समय के उनके वीर शोभा और स्नेह का संकेत है। राम का उल्लेख दो रूपों में है। प्रथम में उनका प्रेमी रूप प्रकट हुआ है। गीतावली के अंशक चिकिती और शूभार की ध्वनि उन्हें कामदेव की व शूभी प्रनीत होती है। रूप शूभार राम अपसक दृष्टि से भीता के मोक्ष का पान करने मगते हैं। गीतावली के उम मोक्ष को व्यक्त करने के लिए उन्हें ममलन उपमाय शूठी मगने लगी। उम रूप में उनका हृदय सुख हो गया है। हृदय में स्नेहाशुभक के शरणा शीतावली के बुद्ध के सम्मुख शत्रुमा का रूप शूभार मगा। यह राम का प्रेमी रूप है। राम बड़े ही दीर्घ से अपने प्रेम को हृदय में लिपा रगा।

राम का दूसरा रूप शोभी नायक का है। इसका उल्लेख गीतावली के उत्तरवाच में है। इसमें राम का प्राण कामीन रूप द्वारा रात्रि में उनके म योग का अंशक किया गया है। उनका श्याम शरीर प्रिया के प्रेम रस में पम कर शालस्य के कारण अमङ्गले मगा (गीतावली २)। इस वर्णन में रति-सौन्दर्य का मर्वाहर संकेत है। राम के इसी शोभी रूप के अंतर्गत उनकी काग शीघ्र का समय का रूप आ गया। वे अपन मगा और भाइया के साथ पत्रम गेल रहे हैं और शान्तीवली अपनी मगिया के साथ शीघ्र कर रही हैं। इसके अनिश्चित राम के रूप मोक्ष का संकेत वर्णन है पर वह उनके नायक रूप पर प्रकाश डालने वाला नहीं है। राम के संयोगी रूप का एक शाय अग्य संकेत भी है जिसमें उनकी पुण्यामपण बनाने की शिपुशान्ता तथा शोभा का शूभार करने का उल्लेख है।

मायकों का दूसरा रूप विमोयी का है। यह रूप केवल भिन्न और राम का ही प्राप्त है। मन्मथ के वियोग का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

मती के सती होने के बाद सिध किम प्रकार बिरह-बुद्धि में पागल हो जाते हैं इसका स्पष्ट उल्लेख आसोष्य साहित्य में नहीं है किन्तु उनकी मृत्यु के बाद भिन्न के हृदय में बँराग्य आ गया इसका उल्लेख उपसठम है। मती के विमोय में वे सदा रघुनाथ का नाम अपने लने तथा जहाँ-तहाँ उनके पुष्पां की कथाएँ सुनने लये। विमोयी राम का चित्रण अधिक विस्तार से हुआ है। सीताहरण के बाद का उनका बिसाप उनके बिरहाविकल्प को सूचित करनेवासा और उनकी उन्माद वसा का द्योतक है। उनका वही विमोयी रूप सीता के बन्धामुषय प्राप्त करने पर तथा हनुमान द्वारा सीता के संदेश और ब्रह्मरनि का प्राप्त करने पर प्रकट हुआ है। इतना सब होते हुए भी इच्छम्य यह है कि उनके मती स्वस्वों में मन्मथ नीरस्य और कर्तव्य-परायणता है।

राम-साहित्य में सिध और सफलय के चरित्र का बिकसम नहीं हुआ है। राम का चरित्र हीर और यन्मीर है। औचित्य और मर्यादा का उन्हें सदा ध्यान है। सीता पर मुग्ध होकर भी वे अपने प्रेम का प्रदर्शन नहीं करते। इतनी ही नहीं रममूमि में भी वे सीता को प्राप्त करने के लिए पहले ही अनुसर्ग के लिए नहीं उठते हैं। इतना धैर्य और इतनी यन्मीरता अत्यन्त दुर्लभ है।

राम के संमोयी रूप में उनकी अनुकूलता सीता का दुःख दैककर कातरता तथा असंकरस-नैपुण्य के संकेत मिलते हैं।

राम का विमोयी रूप अधिक विस्तृत हृदय-बाधक और उदात्त है। सीता के विमोय में तो वे पागल-से ही हो गये हैं किन्तु इस स्थिति में भी सबक भवन बससता, धरपावत की रसा तथा कन्य की महिमा उनक सामने रखी है। विमोयी होकर भी उनका विमोय मदा चट्टान के नीचे दिपी मरिता की भाँति प्रवाहित होता रहा जो कि कभी ही कभी अपने दर्शन देता है किन्तु जिसकी निमेषता और प्रबलता सबक एक बलौकिक आगा फँसाए रहती है। अपने मायक रूप में राम भारस और अत्यन्त है।

इच्छाभयी दासा

मायक रूप के रूप में मयेष्ट बिबिधता है। मायक रूप में घट्ट मायक के मती युग है। वे सुलसाच बलवान मदन मन्मुर भावी धीर, विदग्ध प्रेमी तथा मारियों को मोहनेवाले हैं पर साह-ही-माय पर का मार न होने के कारण और बिदय जानख-बिहार में मय रहने के कारण वे धीरसन्तित ही कहे जा

सकते हैं। धीरघात और धीरोद्धत वाता इनका रूप श्रुतार का वास्तविक नहीं है।

कृष्ण का श्रुतारी रूप इतना विस्तृत तथा विविध है कि उसमें दक्षिण अनुकूल और वृष्ट तीनों ही रूप मिल जाते हैं। यद्यपि नायक का रूप प्राप्त नहीं है।

अनुकूल कृष्ण का रूप यही तथा रामा-वत्सल संप्रदाय में सबसे अधिक है। कृष्ण तथा स्वाभिनीजी का यह जोड़ते रहते हैं तथा इनका अत्यन्त प्यार जाता ही नहीं है। इन संप्रदायों में रामाजी की प्रतिबन्धिनी कोई अन्य नहीं है। अतः अन्य रूपों का विकास का अवकाश ही नहीं है। वत्सल तथा शैलग्य संप्रदायों में वत्स-सीता का विस्तार होने के कारण कृष्ण की प्रेमिकाओं में रामा अन्नामसी सतिता आदि अनेक नायिका आती हैं। अतएव इन संप्रदायों में कृष्ण के अनेकों रूपों का चित्रण का अवसर है तथा नायिकाओं से उनके विविध रूपों के विभिन्न अंकित भी किए हैं। यही कृष्ण कभी अनुकूल कभी दक्षिण और कभी वृष्ट रूप में चित्रित किए गए हैं।

इन संप्रदायों में प्राप्त कृष्ण के अनुकूलत्व के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह रूप दक्षिण और शीतल है। अनेक नायिकाओं से प्रेम होने के कारण तथा उन्हें संतुष्ट करने के प्रयत्न के कारण मन्त्रा अनुकूलत्व इन संप्रदायों में प्राप्त नहीं है।

कृष्ण का दक्षिणत्व अधिक स्पष्ट है। यह वज्र तथा द्वारका में प्राप्त है। साहित्य की दृष्टि से इनका द्वारका वासा रूप महत्वपूर्ण नहीं है। प्रथम रूप में राम तथा औरहरम-सीता के प्रेमों में वे गयी नायिकाओं के साथ सबभक्त समान व्यवहार करते हुए भी रामा को महत्ता देते हैं। इसी प्रकार सतिता अन्नामसी आदि का प्रेम का प्रतिदान करते हुए भी उन्होंने रामा के प्रेम को पौष्टिक मान दिया है। ऐसे समस्त रूपों पर वे दक्षिण नायक हैं।

कृष्ण का वृष्ट मायका वासा का सामान्यतः सतिता उक्ति में व्यक्त होता है। दूगरी गजनी में गर्भोग के चिह्न होने पर भी वे शूद्र घोसते हैं। यह रूप अधिकतर वत्सल संप्रदाय में उपलब्ध है।

नायक-भक्त के प्रति उगरी रामा भी कृष्ण में प्राप्त है। शैलग्य-साहित्य में रामा उगरी-शिव गण्ट रूप में स्वीकृत है। रामा-वत्सल गयी तथा निबार्क में इनका पति-रूप ही स्वीकार है। नायिका से इनका प्रणय-सम्बन्ध नहीं है। वत्सल-संप्रदाय में वे दक्षिणी आदि महिलाओं का पति हैं। रामा का पतित्व

भी उन्हें प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, जिसमें कवियों को सफलता नहीं मिली है। गोपियों के तो उपपत्ति वे हैं ही।

आतिथिक विद्येताओं की दृष्टि से कृष्ण-चरित में विविधता उनके प्रभाव पूर्व रूप में है। मयुरा और डारका का उनका चरित एक रूप है। उनका यह जीवन ध्यस्त राधा का है। उन्होंने गोपियों और राधा को एक रास के लिए भी मही मुलाया पर साध ही-नायक अनेक आस्वादन देने के बाद भी विरह-सागर में डूबती गोपियों को उबारने के लिए वे एक बार भी बुन्दावन न भाए। कुरुक्षेत्र में गोपियाँ उनसे मिलीं पर उस समय तक उनका प्रेम अक्षुण्ण रहते हुए भी उनमें विनम्र अंतर था यथा इसकी कल्पना ही की जा सकती है। बुन्दावन के मंत्री वृन्धों में रूप-मोदयं और बीड़ा-विज्ञान की निधि पर निर्मित दोनों का प्रेम वियोग की भाँष में पिथक कर सूक्ष्म मानसिक रूप ल मठा है जिसमें धारीरिक सुख की कामना का हाथ हो जाता और बड़ मानसिक परातप्त पर अति सूक्ष्म रूप धारण कर धारीर के रोम रोम में व्यरूप हो जाता है।

कृष्ण का धन-मोता का चरित दो मुख्य विभागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम रूप राधा-वत्सल निबार्क सखी आदि सप्रदायों में मान्य निवृत्त नीताविहारी कृष्ण का है तथा द्वितीय वत्सल-सप्रदाय में मान्य बुन्दावनविहारी कृष्ण का है।

निवृत्त-नीताविहारी रूप में कृष्ण अप्राकृत बुन्दावन में निर्य सहचरी गणों के साथ अपनी आधा आह्लादिनी पत्नि, राधा से निर्य नीता-विहार में निमग्न रहते हैं। कृष्ण का यह रूप प्रकट नीता-नामक कृष्ण से निर्गत निम्न है। इन कृष्ण को बुग्ग छोड़ने का अवकाश कहाँ? ये सहचरी गणों से निर्य संबिध होकर प्रियाओं के प्रेम की आकांक्षा करते रहते हैं। इन्हें प्रिया का एक रास का विमोघ भी सदा नहीं है तथा ये सदा उनका मुँह ओहते रहते हैं। ये निरन्तर विविध प्रकार के श्रु गार भोगविज्ञान बीड़ा विज्ञान में निमग्न रहते हैं। इनका यह प्रेम रतिपति रतिमंघट कोक-कमा-विद्यारद आदि का है। ये अपनी काम-कमा से निवृत्त-नीता राधा को रम-मुग्ग किये रहते हैं। विमोघ का यही नाम नहीं है। प्रेम-बैविश्य की स्थिति में ही इन्हें अत्यन्त विमोघ-नीता होती है। इस रूप में चरित का विकास का स्थान नहीं है। यह एक रूप है।

कृष्ण के बुन्दावन विहारी रूप का विस्तार मुख्यतः वत्सल-सप्रदाय में और जगमें भी पूरभासर में हुआ है। मूर ही ऐश कवि हैं जिन्होंने कृष्ण के अक्षुण्ण जीवन को लेकर उनकी भास, संघास और विमोघ-नीताओं का संतुमित

और समान उत्कृष्ट वर्णन किया है। नूरमावार के आचार पर कृष्ण का स्वरूप विम्बविम्बित प्रकार का है —

बासक कृष्ण में ही उनका शू गारी रूप प्रकट होने लगता है। वे अत्यन्त चतुर और गोपियों से परिहाण श्रीदा में व्यर्णन रखे हैं। पाँच बरं की ही अवस्था में उन्हें गोपियों की अंगिया को फाड़ना कुर्बों को पकड़ना तथा नख-दातादि करना प्रारम्भ कर दिया था। गोपियों के साथ यह सब करार भी वे यमोरा के सम्मुख एकदम अवोध बने रहते थे। इन सीलाभा में उनका मामासी तथा असीकिक रूप प्रकट होता है।

बड़े होने पर उनकी छद्म-छाड़ और भी अधिक प्रकट होने लगी। जब वे घाट कुशाट कुम्भ और बन में गोपियों से शान माँगने लगे। इस शान-माँगने में वे काम के सूक्ष्म मकेत करते थे। इसी समय वे बीरहरण-सीसा करते हैं। इस अपनी चतुरता कुपसता और कीड़ा मादि के द्वारा वे गोपियों का मन मोह लेते हैं। उनकी इन सीलाभा में काम का प्रथम उन्मेष है तथा शू गारी नामक वा स्वरूप प्रस्फटित होने लगता है।

इसी समय उनका परिचय राधा से होता है। बास-माहर्ष्य प्र म में परिणत होने लगता है। अपनी बसी अपनी निठ-असीन चतुरता तथा काम-कसा निपुणता से वे राधा का मन माह लठ है। वे राधा को अनेक बहाने बनाना निन्नाते हैं। राधा के साथ-साथ अन्य अनेक गोपियों भी उनकी ओर आकृष्ट होती हैं। चतुर और नायक कृष्ण किनीको निराप नहीं करते तथा गभी की इच्छा पूरी करते हैं। राग इनका एक मरस माध्यम वा किन्तु राग के अतिरिक्त भी वे अपनी सभी प्रियाओं का ध्यान रखते थे। फल-स्वरूप कहीं वे अपने बचनानुसार नहीं पहुँच पाते हैं तो कही किनी नायिका के यहाँ पकड़े जाते हैं। गंधिता और मान की ऐसी गभी स्थितियों में रनिनायर कृष्ण अपनी प्रियाओं के मान मोचन में सभी शान उपायों का उपयोग करते हैं। इस उनका सारा जीवन शू गारिक कीड़ा विनाय में दूबे हुए बट्ट प्र यमियों-राधे नायक वा है। वे राधा-वहसत और गोपी वहसत दोनों हैं।

भक्ति-शू गार-आत्म के नायकों में मौनिक अन्तर होने हुए भी कुछ समानताएँ हैं। प्रमाधवी गागा के राम तो शू गारी-नायक हैं नहीं। राम और प्रेमाधवी गागा के नायक उदात्त-चरित्र मोडा और एकनिष्ठ प्र मी हैं। दोनों वा ही प्र म र्ण्य संबर्ण्य है और उन्हें अपने प्रेम-वर्ण्य में सफ्य होने के लिए अपने पीरप वा प्रभाव देना पड़ना है। दोनों में अन्तर यह है कि राम में गम्भीरता

बीर मयाँवा का ध्यात है। प्रेमाशयी बाबा के मायक मूलत प्रथमी है। वे प्रेम पत्र में सर्वस्व सुटा बैठे हैं। उनका प्रेम प्रकट है बीर वे प्रिय की प्राप्ति करने के लिए संघर्ष करते हैं। वे बाक पट्ट और रक्ति-निपुण है। इन सबसे भिन्न कृष्ण है। उनके शुभारी-जीवन में संघर्ष श्याम बीर तपस्या की आवश्यकता नहीं है। वे उन्मुक्त प्रेमी बीर श्रीका-विश्वास से परिपूर्ण पूज्य शुभारी हैं।



सप्तम अध्याय

भक्ति श्रृ गार में नायिका का स्वरूप

नायिका श्रृ गार का मुसाधार है। वह आषय और आलंबन दोनों है। उसके रूप का हिन्दी-साहित्य में अनेक रूपों में बिजल हुआ है। साहित्यकारों का यह प्रिय विषय रहा है। परवर्ती साहित्य में नायिका-भेद का बड़ा विस्तार हुआ है। भक्ति-श्रृ गार में नायिका का विविध-रूपी-यर्जन हुआ है पर सात्मीय नायिका भेद पर विशेष रचनाएँ नहीं हुई हैं। सूरदास की साहित्य-सहरी में नायिकाओं का वर्गीकरण किया गया है जो कि पूज्य सात्मीय पद्धति पर है। उसकी रूप देसा निम्नलिखित है —

नायिका— (१) स्वकीया (२) परकीया

स्वकीया— (१) मुग्धा (२) मध्या (३) प्रीड़ा

मुग्धा— (१) शाठयीवना (२) अज्ञातयीवना

मध्या और प्रीड़ा— (१) धीरा

पुन (१) श्वेष्ठा (२) कनिष्ठा

परकीया— (१) ठंडा (२) अनूहा

पुन — (१) मुष्ठा (२) विदग्धा (३) ललिता (४) मरिता और (५) अनूहायाना

विदग्धा — (१) वचन-विदग्धा (२) विद्या-विदग्धा

धर्म्य भेद

नायिका— (१) अग्य गुरत-दुखिता (२) प्र ममविता (३) रूपवविता (४) मानिनी ।

नायिका— (१) वनहाग्नरिता (२) प्रोपितपतिवता (३) संदिता (४) उरार्द्धिता (५) विशमरुपा (६) वामवदग्धा (७) स्वाधीन पतिवता (८) अभिगारिका (९) वतियमनी (१०) आप्यपतिवता ।

नन्दवास में भी 'रसमन्वरी' में नायिका भेद दिया है। यह इस प्रकार

नायिका—(१) स्वकीया (२) परकीया (३) सामान्या।

प्रत्येक के—(१) मुग्धा (२) मध्या बीर (३) प्रीड़ा।

मुग्धा — (१) नवीडा (२) विमध्य-नवीडा।

— (१) अज्ञातयोचना (२) ज्ञातयोचना।

मध्या तथा प्रीड़ा—(१) भीरा (२) मधीरा (३) भीरा भीरा।

परकीया—(१) सुरत योपना (२) नागिबद्धा (३) लक्षिता।

साथ भेद

नायिका—(१) प्रापितपतिका (२) खण्डिता (३) कलहोठरिता (४) चर्कण्डिता (५) विप्रलम्बा (६) बाधकलम्बा (७) अमिसारिका (८) स्वाधीनपतिका तथा (९) प्रीतमयवनी।

प्रेमाश्रयी शास्त्रा में 'पद्मावत' में चेतन तथा 'रासत्र विभावरी' में हंस मिठिर नायिका का कामध्यास्त्रीय वर्गीकरण करते हैं। इसके अनुसार नायिका की चार जाति होती है—(१) परिणी (२) विधिनी (३) संधिनी और (४) इस्तिनी। नायिकाओं का रति की दृष्टि से (१) मुगी (२) बड़वा तथा (३) इस्तिनी वर्गीकरण भी किया गया है।

संपूर्ण मल्लि-श्रु गार में स्वल्प रचना नायिका-भेद के आधार पर नहीं हुई है। नायिकाओं की जाति का जहाँ-जहाँ भी उल्लेख हुआ है जहाँ परिणी माना गया है। इस काव्य में नायिका का जो भी रूप प्राप्त है वह स्वतन्त्र रूप में है। यह दूसरी बात है कि नायिका भेद के अधिकतर रूप इस साहित्य में प्राप्त हो पाएँगे।

मल्लि-श्रु गार की आभयात्मन्वम नायिकाओं का अध्ययन उनके दो मुख्य भेद स्वकीया और परकीया के अन्तर्गत करना उचित होगा। सामान्या में केवल मुग्धा जाती है और वह गोप्य है इसलिए यह स्वीकृत बनावश्यक है।

स्वकीया नायिका

हिन्दी मल्लि-श्रु में स्वकीया का यथेष्ट चित्रण हुआ है। मल्लि की कल्याणश्री शास्त्रा को छोड़कर तीस सभ्य शास्त्रों में स्वकीया रूप ही प्राप्त है। कल्याणश्री शास्त्रा में भी राधा को अनेक प्रकार से स्वकीयात्म प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है; पर इनमें सबसमन समझल हुए हैं। इसका विशेषण 'परकीया नायिका' के अन्तर्गत किया जाएगा।

ज्ञानाभयो शाखा

निर्दुःख ज्ञानाभयो-शाखा में आत्मा को स्वकीया नायिका माना गया है। इसका नायिका भेद के अन्तर्गत अव्ययन समीचीन नहीं है। फिर भी यदि हम चाहें तो उसकी प्रेम-वक्तियों के आधार पर उसे प्रकृमा नायिका की संज्ञा दे सकते हैं। नायिका का यह रूप या तो स्वाधीनपठिका बचवा बिरहोत्कण्ठिता का है।

प्र नाभयो शाखा

इस शाखा में सभी नायिकाएँ बिबाह द्वारा स्वकीया हो जाती हैं। इन बिबाह के पूर्व सभी नायिकाएँ कल्पका परकीया हैं।

स्वकीयात्व प्राप्त करने के बाद सामान्यतः प्रेमवाया-काव्य समाप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप नायिका के स्वकीया रूप का अधिक विस्तार नहीं है। पद्मावत इसका अपवाद है। बिबाहसी में भी स्वकीया रूप का अल्प विवर्ण है। पद्मावत में नागमती और पद्मावती दोनों के स्वकीया रूप का यथेष्ट विकास हुआ है। मनुमावती की कथा बिबाहोपरान्त नहीं बढ़ाई गई है।

मुग्धा नायिका

प्रेम-काव्यों में मुग्धा नायिका के वर्णन के लिए यथेष्ट अवकाश है किन्तु इसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया गया है। बिबाहोपरान्त अत्यंत लज्जित काल के लिए बिबाहसी और पद्मावती में मुग्धत्व प्रदर्शित किया गया है। बिबाहोपरान्त जब सहैनिषा रत्नसेन को पद्मावती के जाने की सूचना देती है और वह बासा को बौह पकड़कर लेन पर साठा है उनी स्थान पर ही नायिका का मुग्धा रूप प्रदर्शित हुआ है। वह मन में गकुचाती डरती और सिसकती है। इसके बाद ही कवि ने एक लटके से उसके मुग्धत्व को लपट कर दिया। वह रत्नसेन को 'ओसी' संबोधन कर जो कुछ कहती है वह उसे मर्यादा एवं प्रकृमा नायिका की सीमा में बँध बना है। बिबाहसी में बेचाही कौलावती को सोहावदात के दिन ही अपने पति को मनाया पड़ता है। मुग्धा नायिका बनने का उसके पास अवकाश कहीं ? हाँ बिबाहसी के करिय में गगन लिए विषेय स्थान है और कवि ने इन अवसर का उपयोग भी किया है। प्रथम मयायम से बाला डरती है और माव पन रगने से मयमीन है। उसके बाला वीरो में अर्धता-नी पड़ गई है। छप-बन से गगिनी उस सेज के पास ग आई बद् पानी क किनारे जाकर गयी हो गई। अनेक प्रकार से मगिनी उस मममानी है पर वह मममानी नहीं है। वृ अर अनेक प्रकार से उमम धिमनी करता है पर वह गक भी बाव नहीं मानती। दगव बाद कृ अर उटफर उमकी बौह पकड़ता है। पद्मावती की सीमा बिबाहसी भी वृ अर वी जायी बरकर रो वृष कहती है

वह उसक मुग्धत्व को जय कर उस प्रवृत्ता की श्रेणी में बैठा यथा है। इस प्रकार विशावली से मुख्या का संदेह ही मानना चाहिए। मधुमासती में मुग्धा का रूप अधिक सहज और स्वाभाविक है। इसमें मुख्या की स्वाभाविक मितल-अमितापा, लज्जा और भय आदि सभी का वर्णन है। प्रेमाश्रयी काम्यों में मुग्धा का यह मूर्खताम वर्णन है। इसकी एक सतक देगिए

मं जटाह कु धरहि भी त्हां सुरति तेन तिघातन जहां ।
 बहुरि सखी बाला फुल्लिनाई । बुरति जन जो लै बैसाई ।
 किछु धामन्य मितल के किछु मै हिये भये ।
 प्रथम समागम बात विस्ति न सोह करेह ॥
 कु धर बहि कानिनि पहि कहा । हिया सेरान जो रे बुख रहा ।
 धबहुँ तज बाठिल निठुराई । परिहरि ताक लागु भीब भाई ।
 लाक छोड़ि कह रस सी बैसा । सोई भये तज बुहुँ के नया ।
 पहे जो लौचक/धाल विसाये । हुनहु पिमा रस रूप धमाये ।
 बगिप हुनो के हिये बीतानी । मितल गाव के तपट तिरानी ।
 मैन मैन ते सोने मन ते मन धरधाम ।
 बुह हीबर जो एक भी भो सो एक पराम ॥

सति विघत रूप बस बीरु । रवि सति मिति एक भी बीरु ।
 मुक-मुज सेव सोह मा करई । प्रथम समागम डर हरई ।
 कुँधर भयर धररन्हु लौं बोर । कुँधरि बिमुख मै मे मुख भोर ।
 हीब भरम मुज कुँके बाला । धबिको कर रतन उबिधारा ।
 बुधी कर लै ताकन्हु मुख धरि । धबर बसन के लखित करि ।
 एक बोय वरम विधारी, श्री श्री प्रीति समन ।
 तिसरे लाक ध्यायेउ पलकह बुहुँ रतिरग ॥ (११२ ३२)

मध्या नायिका

मध्या नायिका का स्वरूप कबल पर्याप्त और विशावली में ही उपलब्ध है। मयार्थ में यह रूप भी मध्या और प्रवृत्ता का अद्भुत सम्मिश्रण है। 'साहायरात' में नायिका का प्रिय में मभायन जियमें बह उम जोयो बहकर फाकारनी है और फिर बनेरु प्रकार न प्रम-वर्षा करनी है मध्या की माया का पात्र कर प्रवृत्ता की बीमा को छूने लगता है। किन्तु इतना बाद वाला रूप पुन मध्या के संतमल ही माना है। नायिका के उपसृजन भर्तों का आधार रति शोभा में नायिका की अममि ब्रता एव यौवनानि का अधिक विधान मध्या नायिका की माया के प्रति लगता है। अतएव प्रवृत्ता की स्थिति को पहुँचना हुई नायिका को गुन मध्या की पूरस्थिति

में माना अनुपमोक्त होगा। इसी आधार पर पद्मावती और चित्रावती को प्रथम समामम के अक्षर पर मुग्ध होने पर भी प्रकृष्टा नायिका नहीं मानना चाहिए। वे मध्या एवं प्रथमा की सवि-स्वम की ही नायिकाएँ मानी जाएँगी। पद्मावती का रत्नसेन से प्रथम समामम के बिन बाद विवाह एवं उसके पदचतुर्भों में संपन्न भोग्य के स्वरूप को मध्या का रूप ही मानना चाहिए। यही स्थिति चित्रावती की भी है।

मध्या के उपभेद भीरा भीराभीरा और अभीरा में इस साहित्य में दूसरा रूप भीराभीरा ही प्राप्त है। पद्मावती चित्रावती और नागमती तीनों में ही यह रूप प्राप्त है। यह रूप अपने प्रेम का उत्प्रेषण और प्रिय की निष्ठुरता का वर्णन करते समय हुआ है।

प्रथमा नायिका

इस शाखा में प्रथमा नायिका का अभाव है। इसमें मध्यम ही प्राप्त है यद्यपि यह मध्यम कहीं-कहीं प्रथमता की सीमा को छूने लगता है।

स्वकीया के व्यवस्थानुसार अन्य भेद

नायिका के व्यवस्थानुसार आठ भेदों में से स्वाधीनभू का संक्षिप्त प्रीतिभू का और वास्तवमया रूप ही इस शाखा में प्राप्त है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है —

स्वाधीनभू का

स्वाधीनभू का नायिका का प्रेमी उसकी प्रेम और मे रँबा हुआ उसे छोड़ कर मध्यम नहीं आ सकता है। यदि इन सदाग का आधार से तो प्रेमाययी शाखा में मधुमावती को ही स्वाधीनभू का माना जाता चाहिए। बिबाहोपरतंत मनोहर मधुमावती की कथा समाप्त हो जाती है। अपनी परनी के अतिरिक्त उसका किसी अन्य से प्रेम होने की संभावना नहीं है। फलतः मधुमावती का स्वाधीनभू का मान दिया जा सकता है। पद्मावती और नागमती तथा चित्रावती और भीतावती इस शौर्य की अपेक्षादिनी नहीं हैं। नागमती को छोड़कर रत्नसेन पद्मावती की छात्र में बना गया था और पुनः नागमती के प्रेम के कारण ही वह बिलीक मोट भाया। इसी प्रकार चित्रावती के कारण सुबान में भीतावती का छोड़ा और भीतावती के कारण बह पुनः मोट भाया। अतएव दोनों के प्रति नायक का प्रेम हाँसे हुए भी एक से मिलन की स्थिति में दूसरे की लक्ष्मि की स्थिति अनिवाय है। इसीलिए इन चार नायिकाओं की स्वाधीनभू का नहीं कहा जा सकता है। ही त्रिप समय नायक जिनके पास है उनके समय के लिए बह स्वाधीनभू का नहीं आ सकती है।

संविता

संविता नायिका कबल पद्मावती और बिजावली में प्राप्त है। पद्मावती की खोज में जाने के कारण नागमती प्रोपिनभन् का ही नहीं संविता भी हो गई है। इसका बाद बिलौड़ सीटने के बाद रत्नसेन-नागमती मिशन के अखर पर पद्यिनी की स्थिति भी संविता नायिका की हो गई थी। यहो हाल बिजावली और कौसावती का भी हुआ था।

संविता नायिका की कविताओं में उग्रता का अभाव है। भावक की मिष्टरता और अपनी अकहेसना की मध्य अभिवक्ति है। कवियों का संविता नायिका का कवय चित्र ही नायिका है। संविता पद्यिनी का एक चित्र निम्नलिखित है -

कहो बुद्ध कथा रति बिहारी । मोर मण्ड बड़े पनुमिनि राभी ।
 भात देस सति बदन मसीनी । कबल नैन राते तन खीनी ।
 रति मजत पनि कीन्ही बिहारी । बिमत भई अम देखे मारू ।
 बुद्ध हवा सति रोई बकारा । टूठी सीनु मण्डतनु के मारा ।
 रते न राके होइ निसाता । तर्हबदि जाहि जहाँ निति बासी ।
 हँ के नेहु मानि कुब मेली । सीब नाम भुरानी बेली ।
 मण्ड नैन रते की घरी । भरौ ते डारी छुठी भरौ ।
 तुमर सरोवर हस जल चखहि मदन बिछेइ ।
 कबल प्रीति नहि परिहर सुखि पंक बस होइ ॥ (४३०)

प्रोपिनभन् का

इस साहित्य में स्वकीया प्रोपिनभन् का रूप नागमती और कौसावती का ही है। इन प्रसंगों में रत्नसेन और तुमान अपनी-अपनी विवाहिता गस्त्रियों को छोड़कर अन्य पद्यिनी और बिजावली की खोज में जाते हैं। इनके अतिरिक्त रत्नसेन-अपन संघ के मोल-खंड तक नागमती और पद्यिनी दोनों प्रापिनभन् का है।

वासकमज्जा

स्वकीया नायिका का वासकमज्जा रूप कवय बिजावली का भी प्राप्त है तुमान के मोटने पर कौसावती घासहो गृ गार कर वासकमज्जा रूप में उसकी प्रतीक्षा करती है -

कंत बधा बरसीति पर सोरहू लामि सिगर ।
 वासक-सेवा होइ रही ताइ नन बुद बार ॥ (४३६)

स्वीकीया नायिका के अर्थ में रूपगतिना एक ज्येष्ठा और कनिष्ठा है। नागमती और पद्मावती दोनों ही रूपगतिना नायिकाएँ हैं। नागमती के रूपगतिता होने का बता उन समय लगता है जब वह सुना के पूसती है कि क्या

उसके समान सुन्दरी और कोई नारी भी है। उसका यह रूपगविता रूप रत्नसेन के सीटने पर पुनः प्रकट होता है। यह कहती है यद्यपि पद्मिनी अत्यन्त सुन्दरी है पर क्या यह रूप में मेरे बराबर हो सकती है? जहाँ अम्बराओं के बीच में महामुन्दरी राधिका हों वहाँ चन्द्रावती उसकी घोमा की तुलना नहीं कर सकती। (४२६)। पद्मावती को भी अपने रूप का बड़ा गर्व है और यह भी जागमगी को कुछ नहीं गिनती है। यह बिलीङ्ग में रत्नसेन से कहती है 'मैं सिंहस्र द्वीप की पद्मिनी हूँ। जम्बू द्वीप की माधिन मेरी बराबरी नहीं कर सकती है। मैं सुयम्बिन निर्मल और उज्ज्वल हूँ। यह बिय से मरी डरावनी और कासी है। मेरी सुगन्धि से माहृष्ट भौरे सग सग जाते हैं। उसे देखकर मनुष्य डर से भाव जाते हैं। (४३१)। दोनों का यह रूप-मर्च ही परस्पर झगड़ा करानेवाला होता है।

पति के प्रेम क आचार पर पद्मिनी और चन्द्रावती ख्येच्छ तथा जागमगी और कौलावती कनिष्ठा हैं।

सभी नायिकाएँ संभोग-आनन्दिता हैं। समागम के उपरान्त का उनका यह स्वरूप प्रकट होता है।

प्रोभापयी छाया में नायिका इन विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। स्वकीया की इतनी विविधता भक्ति-साहित्य की अन्य धाराओं में उपलब्ध नहीं है। रामापयी छाया

राम-काव्य श्रु पार-काव्य नहीं है। श्रु पार उसमें प्रासंगिक रूप में आया है। इस साहित्य में सभी नायिकाएँ स्वकीया हैं पर उनका वर्गीकरण नायिका भेद प्रमाप्ती पर कठिन है।

श्रु पार की आनन्दन नायिकाएँ पार्वती सीता माण्डवी और भ्रुठकीर्ति हैं। इनमें सी माण्डवी और भ्रुठकीर्ति के अपने पतियों को देखकर मन ही मन प्रसन्न होने मात्र का उल्लेख है। इस रूप में ये मुग्धा स्वाधीनपतिना नायिकाओं की श्रेणी में रसी जा सकती हैं। उनका यह रूप विवाह के अवसर पर प्रकट हुआ है —

अनुरूप बर कुम्हिलि परस्पर सति सभुष हिमें हरपही।

सब मुदित सुन्दरता सराहहि सुमन सुरपन बरपही।।

उपरोक्त उल्लेख में अतिरिक्त होने के अतिरिक्त उदिसा के श्रु पार का एक उल्लेख भीनावती में प्राप्त है। विवाह के उपरान्त के इस पद में उदिसा का पत्राकर बनने प्रिय को देखने का उल्लेख है। उदिसा और सबसभ आनन्दित होकर बेतिमूह जाते हैं इसलिए उदिसा का स्वरूप स्वाधीनमनुष्य का मुग्धा नायिका का भावा जा सकता है। भीनावती का यह पद अतिरिक्त है —

संज्ञे समित्त सपनकास सोने ।

तसिये समित्त उरमिजा परसपर सखत सुनोचन-कोने ॥

सुखनात्तार सिवार छार करि कनक रचेहुं तिहि सोने ।

कन-मेस-परमिति न परत कहि बिचरि रही मति सोने ॥

सोमा-सोम-सनेहु सोहाययो सखत केसि-गृह घीने ।

देबि तियनि के नयन सखल भये सुततीबास हू के होने ॥

(बा. १०७)

पार्वती

राम-साहित्य में पार्वती का स्वाग सीता के बाद ही है। धिरजी से इनका विवाह हुआ था। अतएव ये स्वकीया नायिका है। मानस और पार्वती-मंगल में इसका विस्तार से वर्णन है। किन्तु विवाह के बाद का इनका बचन संक्षिप्त शकितिक और कचन मानस में ही प्राप्त है। पार्वती का निम्नलिखित रूप इस साहित्य में प्राप्त है।

स्वाधीनमर्तु का पार्वती

नायिका भेद की दृष्टि से पार्वती स्वाधीनमर्तु का है। उनके पति पित्त का उनके अधिकृत और किसी पर अनुप्राण नहीं है। वे सदा पार्वती को अपनी प्रिया मानते हैं और उनका पून आदर-भक्तिकार करते हैं इसीलिए उन्हें स्वाधीन मर्तु का मानना चाहिए —

जाति प्रिया आदर भति कीन्हा । काम भाष घातनु हर बीन्हा ॥

(मानस बा० १०६)

पार्वती के मुग्धा रूप का उल्लेख नहीं है।

अप्या-अगमना पार्वती

पार्वती ५ इस रूप का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कवि ने इतना मात्र कहा है कि पित्त पार्वती विविध प्रकार के भोग बिसाम करते हुए अपने बच्चों सहित कैलाश पर रहने लगे। वे अत्यन्त लगे बिहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया —

करहि बिबिध बिपि भोग बिसासा । पनन समेत बसहि कैलासा ॥

हर-भिरबा बिहार नित नयक । पृहि बिपि बिपुल काल बनि गयक ॥

(मानस, बा १०२)

उपयुक्त उल्लेख में विविध विपि भोग-बिसामा और 'बिहार नित नयक' के पार्वती के मग्धा और अगमना हान का अनुमान मयाया जा सकता है। नायिका भेद के अन्वय रूप पार्वती में समलक्ष्य नहीं है।

सीता

राम-काव्य की नायिका सीता है और इस दृष्टि से सारे राम-काव्य में इन्हींका सबसे अधिक उल्लेख है किन्तु फिर भी यह भाषा में काफी कम है। हम साहित्य में सीता के निम्नलिखित रूप प्राप्त हैं —

मुग्धा सीता

सीता के सबसे मनोहारी रूपों में उनका मुग्धा रूप है। उनका विवाह हो गया है। पति उन्हें पहले ही पसन्द आ गये हैं। उन्हें इतना पास देखकर वे बार-बार सकुचाती हैं। स्थिर दृष्टि से जाह कर भी देखना संभव नहीं है। वे एक सरस-सा मार्ग निकाल लेती हैं। वे कंकण अथवा हार की भंगि में राम की छवि को एकटक निहारती रहती हैं। उनकी यह मुग्धता जनबास में भी है। भारतीय कुल-नियमों की भाँति वे भी अपने पति का नाम धैर्य में धरती हैं। पाम-नयुक्तियों की विज्ञान की भाँति वे बड़े ही मुखर हृदय से संकेत द्वारा करती हैं। मुग्धा नायिका का उनका यह रूप अनूठा है।

सीता की मध्या प्रवस्था नायिका रूप में कहीं भी नहीं मिलती है।

प्रोपितभर्तृका

जनबास के लिए राम कटिबद्ध हैं। इस समाचार की सुनने के बाद वे जब तक उन्हें साथ जनबास जाने की अनुमति नहीं मिलती है तब तक का उनका रूप प्रोपितभर्तृका का है। इसमें भविष्य प्रवास की आशंका है। प्रोपितभर्तृका का दूसरा रूप उनके वियोग का है। इस समय यद्यपि वे स्वयं प्रवास में हैं, किन्तु वह भी तो भिय का ही प्रवास हो जाता है। सीताहृदय से लेकर राममित्तम तक की स्थिति इसी मेर के अंतर्गत है।

स्वाधीनभर्तृका

सीता स्वाधीनभर्तृका हैं। उनके पति उन्हींका प्यार करते हैं। उनकी इच्छानुसार राम उन्हें कबा-बातों सुनाते हैं एवं वन में अपने हाथों उनका श्रृंगार करते हैं जिससे उपयुक्त बात स्पष्ट होती है। राम का अपने प्रति बढ़ता स्नेह वे प्रतिदिन देखती हैं।

पतिव्रता

सीता क पतिव्रत की व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे इसकी वास्तव्य हैं। उनका बाध जीवन ही उनका पतिव्रत की पोषणा करना है।

पति के विचारों की समझौतानी

सीता शिव न हृदयपन भाषा की जानौतानी और उदनुगार कार्य करने वाली है।

पतिसेविका

सीता पतिसेविका है। उसे अपने धर्म की चिन्ता नहीं है। वह पति के मनी धर्मों को दूर करने को बहती है। पति के साथ चलने का वह यही कारण बतलाती है —

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति विष सेवा करिहौं । पारस जनित लकन भ्रम हरिहौं ॥
पाप बजावि बैठि तह छाहौं । करिहुँ बाउ मुनिन मन माहौं ॥
मम कन सहित स्पाम तनु देखै । कहै कुरु लमड प्राणपति पैसै ॥
सम यहि तुन तद प्लसब जाती । पाय पत्नीटिहि सब निधि बासो ॥
(मानस प्र० १९)

रामायणी शास्त्रा की नायिकाओं के स्वरूप के इस अध्ययन से स्पष्ट है कि हममें परम्परागत नायिका भेद का अवसम्बन्ध नहीं लिया गया है। अधिकतर नायिकाओं की उदात्त जातियों के बिना ही विस्तृत रूप से दिये गये हैं। श्रु या रिक भेद जो बोझे-बहुत हैं वे सांकेतिक ही हैं।

कृष्णाशयी शास्त्रा

कृष्णाशयी शास्त्रा के अस्तम-संप्रदाय में राधा को स्वकीयात्म प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। यह कार्य राध के अक्षर पर ब्रह्मा द्वारा उनका विवाह कृष्ण से करा कर किया गया है। संसक के विचार से मत्त कवियों का यह प्रयास सफल नहीं रहा और राधा को स्वकीयात्म प्राप्त नहीं हो सका। इसकी विस्तृत चर्चा परकीया के प्रसंग में की जायेगी। शैतन्य-सम्प्रदाय में राधा को परकीया माना गया अतएव वहाँ स्वकीया का प्रदान ही नहीं उठता है। शेष राधावस्तम सभी सम्प्रदाय आदि में राधा का स्वरूप सर्व प्रचलित चारणा से पूर्वतः मिलन है। इन सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण को निरन्तर कविरतन चिपित किया गया है। हममें नायिका-स्वरूप की विविधता का अवकाश नहीं है। नायिका के जो रूप प्राप्त हैं वे निम्नलिखित हैं —

मुग्धा

राधा का मुग्धा रूप कृष्ण-नाहित्य में बहुत ही कम है। सामान्यतः वह काम-कल्प-कोविता एवं काम केति रत्ना है। एक-आप स्वतों पर और वह भी विगेषतः प्रथम ममागम के अवसर पर ही जन्मा यह रूप परिचयित होता है। इन अवसर पर नायिका अतिशय सज्जातीसा, मठदीवा और शिव स्वर्ण को बचाने वाली है। यथा—

नमित पीव छवि सीव रही पूषट पठहि संभारि ।
 बरनन सैवत बनुरई प्रति सतबन पुकु बारि ॥
 जो प्रिय बाहुत सुयो बिय कुबरि कुबनि नहि रेत ।
 बितबनि मुसकनि रस मरी हरि हरि प्रागनि सैत ॥

(अबबास ग्यानीस सीता रत्नरतनावसी सीता २-७)

किन्तु यह मुग्धत्व बरुपकासोन है। बाब में नायक की आनुभवा बेलकर नायिका स्वयं सक्रिय हो जाती है। बाब एक प्रकार में हम साहित्य में मुग्धा रूप उपलब्ध नहीं है।

मध्या और प्रपञ्चा

नायिका के मध्या और प्रपञ्चाबान बिब हम साहित्य में अधिक उपलब्ध हैं। इनके अन्तर्गत नायिका का प्रिय के लिए स्वयं सक्रिय हो जाना विविध प्रकार से रति-रिक्वा संपादन करना आदि के पर्यन्त आठे हैं। प्रपञ्चा नायिका के अंतर्गत ही राधा का रतिदुहा रतिकसाकोविदा रतिरणापीरा आदि रूप आये हैं। राधा के प्रपञ्चा रूप का एक उदाहरण स्वामी हरिबास की रचना केसिमास से बिया वा रहा है। इनमें नायिका कृष्ण से अपना जीवन-मर पीने के लिए कहती है —

घराब लात ऐले मर बीब तेरो मया मेरी प्रगिया घरि ।
 कुब की सुराही मनन की व्यासी, बाक घोबियों घंकी भरि ।
 घपरनि बुबाइत सब रस तन की न जान हं इत-उत हरि ।
 बी हरिबास के स्वामी रुपामा कु अबिहारी की मुहुबत की घसर जहाँ बापुन हरि ॥

(केसिमास ७४)

नृत्यकला-प्रवीणा

हम साहित्य में राधा का नृत्यकला प्रवीणा रूप भी मयेष्ट बजित हुआ है। राधा-नृत्य की बनेक सभोग-सीसाए नृत्यादि से सापुरित हैं। इन सीसाओं के बन्ध राधा और कृष्ण हैं। दोनों ही इन कला में निपारण हैं। यह रूप इत साहित्य में सर्वत्र प्राप्त है।

नायिका के मरवसाभेशानुमार स्वापीनमनु का अभिगारिका एवं स्वयं दूतिका रूप हम साहित्य में उपलब्ध हैं।

स्वाधीनमनु का

राधा स्वाधीनमनु का है और उनकी बोध प्रतिडरिनी नहीं है। कृष्ण उनसे प्रेम के बरा आवासी है। कृष्ण राधा की कृपा के बितने आवासी हैं इसका एक सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित है —

हिन्दी भक्ति-श्रुतार का स्वल्प

में है। अन्य माहिरियों में परकीया का जो रूप मान्य है वह 'कर्मका परकीया' का है। विवाह ने पूर्व माना-पिता व मधीन प्रेमी कर्म्या 'कर्मका परकीया' के अन्तर्गत आया। यह कर्मका परकीया रूप राम और प्रेमाशयी धाबा के साहित्य में प्राप्त है। कर्मका परकीया का विवाह जब प्रिय से हो जाता है तब उसे स्वकीयात्वं प्राप्त हो जाता है। इच्छाशयी धाबा में कर्मका परकीया और कुछ परकीया (दुन्दरे की पत्नी) का उल्लेख है किन्तु स्वकीयात्वं प्राप्त करनेवासी कर्मका परकीया का नहीं है। नीचे विभिन्न भक्ति-साधकों में प्राप्त परकीया क रूपों पर विचार किया जा रहा है।

शानाशयी धाबा

शानाशयी धाबा में परकीया क समस्त रूपों का निदान अभाव है। प्रेमाशयी धाबा

इस साहित्य में कर्मका परकीया का विस्तृत उल्लेख है। इस साहित्य की गभीर मुख्य मायिकाएँ—पद्मावती, बिजावती, कीलावती और मधुमावती प्रारम्भ में कर्मदाएँ ही हैं। इनमें पद्मावती क अतिरिक्त अन्य का विवाहोपलब्ध स्वल्प विवर्णित नहीं हुआ है। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रेमाशयी धाबा में परकीया मायिका की ही प्रयोजना है।

प्रेमाशयी धाबा में प्राप्त कर्मका परकीया का धार्मिक बर्गीकरण कठिन है। परकीया क मुग्धा मध्या और प्रीति भेद सामान्यतः नहीं किए जाते हैं यद्यपि महदा ने अपनी रत्नमंडरी में उन्हें स्वीकार किया है। फिर परकीया के मुग्धा मतिना आदि जो भेद हैं वे भी इस धाबा में उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि मायिका अपना प्रेम बनी भी धिया कर नहीं रत्नी है। वह जो उस प्रेम क लिए मर मिटने के भी बहूत महत्तापूर्ण प्रतीत नहीं होत। अतएव हमें धार्मिक बर्गीकरण का आधार दोहकर मायिका के अन्वय रूप को ही लेना होगा।

प्रमयीकृता मायिका

दूरंतम म मेव गानेशामी यह प्र म की प्रथम स्थिति है। प्रिय के प्रत्यक्ष-उपगत अन्वय नाम मुग्धा-धरम विवरणों आदि में मायिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है और वह उममें वीरिन रहती है। पद्मावती, बिजावती, कीलावती और मधुमावती मया प्र मयादिना मायिका रहती हैं।

विशक्तिरथा मायिका

यं व कीया व तात्र य भदा य मे एक है। इसमें मायिका अपने प्रिय के विरते के अनेक पत्र करती है तथा मायक पर अपना प्रेम विनी किया द्वारा

व्यक्त करती है। प्रेमाशयी छाया की सभी नायिकाएँ क्रिया विवाहपार्य हैं। वे न केवल प्रिय से मिलने का संदेश ही भेजती हैं बरन् उसे प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न करती हैं। कौशावती उस चोर बनवाकर पकड़वा लेती है। विभावली उसे दूत द्वारा खोजने का प्रयत्न करती है। पद्मावती वदन शरा उसकी छाती पर अपना प्रेम अंकित कर जाती है।

अभिसारिका

अभिसारिका प्रिय से मिलने के लिए जाती है। पद्मावत के वसंत खंड में पद्मावती का रत्नसम से मिलने के लिए महादेव के मंदिर में जाना ही उसका अभिसार है।

श्रुतिता

कन्यका परकीया का मुद्रिता रूप केवल मधुमावती में ही प्राप्त है। प्रथम मिलन में मनोहर और मधुमावती के केलिविषाम में उनका मुद्रिता रूप प्राप्त है।

स्वाधीनमर्त्या

परकीया नायिका के स्वाधीनमर्त्या होने में संदेह किया जाता है किंतु पति या भर्ता का अथ प्रथयी ही माय्य है। इस अर्थ को स्वीकार करने पर कन्यका परकीया भी स्वाधीनमर्त्या का ह्रा सकती है। इस रूप में कौशावती का जोड़ कर श्रीप राधा परकीयाएँ स्वाधीनमर्त्या का हैं क्योंकि उनके प्रेमियों का प्रेम उनके प्रति एकनिष्ठ रहा है।

विरहिणी

कन्यका परकीया का विरहिणी रूप में अनेक स्थलों पर चित्रण है। रत्न सेन के प्रेम में पद्मावती विरहिणी है और उसके संकट को सुनकर अपने प्राण देने की तत्पर है। कृटीचर द्वारा मुशान से विधोम होने पर विभावली विरहिणी है। मधुमावती के विरहिणी रूप का भी उल्लेख है। इस प्रकार इस माहिर्य में नायिका का यह रूप लगभग सर्वत्र प्राप्त है।

सकल रूप से इस माहिर्य में कन्यका परकीया के अनेक रूप प्राप्त हैं। वे सभी अंत में स्वकीया ह्रा जाती हैं।

शामाशयी छाया

इस छाया में गीता का विवाह के पूर्व का रूप कन्यका परकीया का माना जा सकता है। इसका तथा सामान्य परकीया के प्रेय में यह अन्तर है कि नायक नायिका एक-दूसरे के प्रेम में अवयव होते हैं मिलने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु

। प्रेम एक प्रकार से एकांगी रहता है। राम के हृदय में उनके प्रति प्रेम है पर सीता सबसे अलग नहीं हैं। इसलिए उन्हें कन्यका परकीया भी कहना बिलकुल है।

कृष्णाक्षयी घाघा

कृष्णाक्षयी घाघा में परकीया अपने सुष्ठ रूप में प्राण्य है। योगरि की पत्निमां जिनका कृष्ण से प्रेम था के सभी सुष्ठ परकीया है। उनका प्रेम भावना एक तथा धारिणिक दोनों ही धरानम पर अत्यंत तीव्र और उरकृष्ट था। ठगी तो जिस बोधी की उसके पति ने उस में जाने से रोक सिमा बहु अपने धारी की ही छोड़कर भिय के पास पहुँच गई। इन नायिकाओं में कृष्ण प्रेम में लोक-परलोक पति भादि सभी का परित्याग कर दिया है। ऐसी ही एक नायिका कहती है कि मैंने तो मन्द-मन्दन से प्रेम किया है। कोई इसे बाहे पातिव्रत कहे या व्यभिचार-में तो प्रीति स्वाम सों कीनी।

कोरु निम्नो कोरु बग्गो धब तो यह कर हीनी।

को पतिव्रत तो यह छोटा सों इम्हे सम्यो है।

को व्यभिचार मन्द-मन्दन सों बाह्यो अधिक र्मैह।

को बत पाहो तो धोर न भायो मर्षाबा को भय।

धरमानम नाम विरिपर को भायो मोटी संय।

मन्दरास ने परकीया प्रेम को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए इसे 'रस की अर्पण' कहा है —

रस में जो उपरति रस प्राहो। रस की अर्पण बहुत कवि ताही ॥

(रूपमंजरी)

इसी 'अर्पण रस' की संकेत उन्होंने मधुपूर्ण 'रूपमंजरी' की रचना की है। रूपमंजरी का विवाह लोभी मित्र व कारण कुबद्धि कुसुम राजकुमार से हो गया। उनकी मायी इंदुमती नहीं चाहती थी कि रूपमंजरी का कर-भौद्वय यों ही गल्ट हो। वह इनके लिए उपयुक्त नामक कृष्ण को ही मधुमती है। उनके प्रेम के लिए प्रार्थना करती है। वे स्वप्न में रूपमंजरी को दान देते हैं। रूपमंजरी उनके प्रेम में पीड़ित होती है। कृष्ण का उनके स्वप्न में मिलन होना है और इन प्रकार परकीया प्रेम पर आपारित यह कथा समाप्त होती है।

रूपमंजरी की कथा के गादुरस पर भीरी का प्रेम भी परकीया प्रेम है। उनके प्रेम के मधुर्य में कहा जाता है कि वह गापी नाव का है। यही वर 'भीरी नाव' के प्रेम और पापियों के प्रेम व अन्तर को गमना तथा सामप्रद हाथा। मोपियों ने गायने उनको बाह्यो हाद मंग-ज्य में से। उनके उन्हीने प्रीति नाई की। भीरी नाव के प्रेम में उत यथाय के स्थान वर कहरना ही अर्पण

होती है। इस प्रकार गोपी-कृष्ण-संबंध परकीयारमक का जबकि गोपी माव का सम्बन्ध सामाजिक दृष्टि से परकीया की हेयता को प्राप्त नहीं करता। यही कारण है कि यदि एक गृहणी की प्रीति कृष्ण से जुड़ जाती है तो उसकी प्रीति यद्यपि परकीया माव की होती है किन्तु न तो समाज उस पर आक्षेप करता है और न ही उसे हेय समझता है। किन्तु वही स्त्री यदि किसी हाड़-मांस के पुरुष का कर्तव्य मानकर आत्मसमर्पण करे, जैसाकि अकटर हो भी जाता है, तो न केवल समाज ही उसे हेय दृष्टि से देखता है वरिष्ठ गोपी-भाव क समर्पक भी उसे व्यभिचार कहने से नहीं बचते हैं। इसीलिए गोपी भाव और गोपी प्रेम में बड़ा अंतर है। गोपियों के सम्मुख माता पिता भाई-बन्धु सास-जनक पति और समाज का विरोध पूर्ण सत्यता के माव था। वे उनकी भर्त्सना के लिए निरंतर तत्पर रहती थीं। इनके विपरीत गोपी-भाव की प्रीति का अधिकतर समाज की बंधना ही प्राप्त होती है।

मीरा का विवाह हो चुका था। कृष्ण से उनका परकीया संबंध ही संभव था। इस दृष्टि से उनकी तथा कर्णवरी की स्थिति बड़ी समान-सी थी। इस परकीया संबंध के लिए न तो समाज उन्हें हेय दृष्टि से देखता न सास-जनक। एक विधवा के लिए तो यह समबन्धुमति उपयुक्त ही थी। अतएव उनके पक्षों एवं लोक-विचरित्तियों में जो सास आदि की भर्त्सना का उल्लेख है इसका कारण उनका कृष्ण के प्रति परकीया प्रेमभाव नहीं होता चाहिए। संभवत इमका कारण उनका राजमहल की मर्यादा का अतिक्रमण कर साधु-मनों के बीच भ्रमण होगा। परकीया भाव की उपासना में कृष्ण की छोक साधुओं के बीच में आकर पक नहीं है। वह तो गर्भव, उनके महस में ही विराजमान थे। अत यह संभावना कम है कि अपनी भक्ति के कारण ही उनका परिवारवाले उनसे हट्ये। यह भी संभव हो सकता है कि उनकी प्रीति किसी मानवी कर्तव्य की ओर मयी हो जिसका संकेत पद्मावती उद्यम ने किया है। जो भी हो जहाँ तक उनकी भक्ति का सम्बन्ध है वह परकीया की ही है। रही उनको अपने को स्वकीया समझने की बात, तो इस सम्बन्ध में यही ध्यान रखना है कि उन्होंने अपने को चाह जितना स्वकीया-सा समझा हो पर बार-बार सामाजिक परिस्थितियाँ उन्हें उनका परकीयात्व याद दिला देती थी जिन्हें वे भूल नहीं सकीं।

राधा का परकीयात्व

भक्ति-साहित्य में राधा के परकीयात्व का प्रश्न महत्वपूर्ण है। वैतन्य संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य किसी संप्रदाय में राधा को प्रीता नहीं माना गया है। बल्लभ-संप्रदाय में राधा का कृष्ण से विवाह कराकर उनकी समस्त श्रीका की स्वकीया का बोझ-बिभास माना जाता है। अतएव यह आवश्यक है कि राधा

के विवाह पर उनके श्रीका-विलास पर ठनिक विस्तार से विचार किया जाए, इनके पूर्व राधाकृष्ण के प्रेम विकास का अत्यन्त आश्चर्यक है।

राधा-कृष्ण-प्रेम का विकास

राधा-कृष्ण प्रेम का विकास सूरदास ने अत्यन्त स्वाभाविक और मनो-बैज्ञानिक ढंग से किया है। हरि व्रज-सोरी में खेलने निकले हैं। और उन्हें वहाँ अचानक ही सुन्दरी राधा बिलसाई पड़ जाती है। दोनों के नेत्र मिल जाते हैं और उनमें ठपीरी पड़ जाती है। स्वाम राधा से उसका परिचय पृथक् है। तुम कभी व्रज की घोरी में बिलसाई नहीं पड़नीं। राधा भी खूब उत्तर देती है। कानों से सुनती है कि मूँब का पुत्र माघन चारी करता रहना है। मानो कह रही हों कि आज उसी चोर को देख भी लिया। किन्तु रसिक शिरोमणि ने ऐसी बात बनाई कि दोनों में दोष होने लगा। यहाँ तक बात-स्नेह और मिथता का रूप स्पष्ट है। किन्तु अबसे पर से ही श्रेयो-प्रेम का विकास होने लगता है। इस परिवर्तन के बीच किटना समय बीत चुका है। इसका उल्लेख नहीं है। जब नेत्रों से बातें होती हैं। दोनों मुह्यप्रीति प्रकट करते हैं। मिमने का बहाना बतलाते हैं। दोनों अपनी प्रीति को विषाकर रखते हैं। राधा बूधरे दिन बहाना बनाकर मन्व की स्तरिक में जाती है। मन्द कृष्ण को छीपकर राधा से रखवाली करने को कहते हैं। कृष्ण राधा की मीठी पकड़ते हैं तथा कृष्ण पर हाथ रखते हैं। इतने में यद्योदा आ जाती है। कृष्ण अपने वृत्त के काम-स्वल्प से पूर्वतः परिचित हैं। उल्लेख के पूर्व खेलने का बहाना करते हैं। यद्योदा उठे सत्य समझती है। कृष्ण राधा को बुन्दावन से पाते हैं। कहते हैं कि अपने-मुम्हारे बीच कृष्ण भी अन्तर नहीं रख सकूँगा। तुम्हारा लन-ठाप एवं कामाधि छाँव करूँगा। राधा भी काम से पीड़ित है। मन्व किन्तु स्वीकृति से मुन शुका सिनी है। स्वाम मगन में मेघ छाँवते हैं। मीठी जाती है। मन्व राधा से कृष्ण को मँभासने के लिए कहते हैं। दोनों घोर वन में जाकर कामोन्मत्त होकर विहार करते हैं। दोनों का प्रेम नवीन है। स्वाम नवीन है। कामरथ नवीन है। मन्व-वीरन से मन्व दोनों आनन्द सेते हैं। काम की यशाता छाँव हानी है। पर प्रेमोन्मत्तता के कारण दोनों एक-दूसरे को छोड़ते नहीं हैं। अन्व-वार्ता के बीच म हार का अन्तर भी बाधक है तथा मरकट मणि शिम प्रवार स्वर्ण में जड़ी हा। उनी प्रकार दोनों एक-दूसरे से सिपटे हैं। राधा हठ कर मना करती है। शून्य पंर पकड़ते हैं और मान-माघन होता है। पुनः रति शारम्य हानी है। कृष्ण मन्वुष्ट होकर राधा पर रीसते हैं। हृष से प्यारी को कर्ण मगाते हैं। राधा मुम्करा देती है। बुन्दाविक का बाद रति मगाप्य होती है और कृष्ण पर जाते हैं।

बस राधा का कृष्ण क पर मिल्य आयमन होते मगा । यथोदा से परिचय भी हो गया । यथोदा ने राधा से कृष्ण क साथ खेलते क लिए भाठे रहने को कहा । राधा आज सदी । राधा को दक्षिण ही कृष्ण अपनी सुन-बुन मृत जाते हैं । माय की जमह ब्रह्म का दुहन बैठ जाते हैं । खूब हँसी हाठी है । हास-परिहास बढ़ने लगा । कृष्ण कभी ब्रह्म की मार राधा पर-मार देते हैं । राधा बनावटी कोय करती है । फिर गावड़ी सीखा होगी है । कृष्ण पारकी बनकर बिय बहारते हैं

उपसृजन से सम्बन्धित पत्नी का डॉ० वीनदयानु गुप्त ने परकीया के अन्तर्गत नहीं लिखा है । उनके अनुसार 'कृष्ण से माधुर्य-भाव का प्रेम करनेवासी दो प्रकार की गोपियाँ थीं । एक के कुमारिकाएँ थी जिन्होंने प्रारम्भ से ही कृष्ण की कन्यापुत्री और मुँहों पर मुख होकर उन्हें अपना पति माना था और उनमें से कुछ का ब्रह्मसे बरण भी हो गया था । दूसरी के विवाहिता गोपियाँ थी जिन्होंने पर-पुरुष कृष्ण से परकीय रूप में प्रेम किया था । अष्टछाप अन्तों ने जैसा कि अभी कहा गया है, बहुधा गोपियों को स्वकीया ही चिन्तित किया है । यद्यपि कुछ गोपियों का उनसे विवाह नहीं हुआ था । फिर भी वे लोक-नाम कुल-कानि छोड़ कर कृष्ण से ही प्रेम करती थीं । परकीया भावनासे पद इनकी रचनाओं में बहुत कम हैं । जहाँ गोपियों के मान और शोचिता के नाम उन्हींने प्रकट किये हैं वहाँ उन्हींने गोपियों को अन्त्यपूर्वा अथवा स्वकीया ही रखा है । इन स्वतों पर उनका उपनाम 'शीतला माय' से हुआ ।" आगे चलकर 'पूर्वराय की अवस्था में आसक्त मल की रक्षा' प्रकरण में वे पुन कहते हैं 'पीछे कहा गया है कि अष्टछाप काव्य में 'पूर्वराय अवस्था की आसक्ति का जो रूप हमें मिलता है वह अन्त्यपूर्वा कुमारी गोपिकाओं का है, परकीयाओं का नहीं है ।'

उपसृक्त मठानुसार राधा परकीया नहीं है । डॉ० गुप्त के उपसृक्त मत पर विचार करना समीचीन होगा । पूर्वराय का अर्थ श्रु गार रस प्रकरण में करते हुए साहित्य दर्पणकार कहते हैं— 'विप्रसन्न और सम्मोघ ये दो श्रु गार रस के भेद हैं । जहाँ अनुपम तो अति चक्रे है परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रसन्न कहते हैं । वह विप्रसन्न (१) पूर्वराय (२) मान, (३) प्रभाव और (४) कथन इन चारों से चार प्रकार का होता है । गौदमादि युक्तों का अर्थ अथवा दर्शन से परस्पर अनुभवन भावक और नायिका की समागम से पहल की रक्षा का नाम 'पूर्वराय' है । 'उज्ज्वल नीलमणि' में स्वयंसेवामी श्री उपसृक्त मठ से सहमत हैं । उन्हींने विप्रसन्न क भेदा से कथन को स्वीकार न करके उसके स्थान पर 'प्रमत्त-विश्रय' को स्वीकार किया है । इन एक मान में दोनों एक मत हैं कि समागम के पूर्व की रक्षा का नाम पूर्वराय है —

रतिप्रीतिपमात्पूर्व बर्तन भवभाविका ।

तयोन्मीलति प्राचीं पूर्वरागः स उच्यते ॥ (उत्तमस नीलमणि)

इस प्रकार पूर्वराग के दो सद्यन हुए —

(१) यह विप्रलम्भ श्रृंगार का एक भेद है ।

(२) सामान्य के पूर्व की वियोगावस्था को पूर्वराग कहते हैं । अतएव सामान्य के बाद पूर्वराग की स्थिति नहीं रहती है ।

यदि हम नायिका भेद प्रकरण देखें तो धर्मजय भानुदत्त विरवनाथ और रूपबोस्वामी के आचार पर परकीया क निम्नलिखित तत्त्व प्रकट होते हैं —

(१) परकीया नायिका भेद में ही नायिका का एक भेद है ।

(२) इसके बन्धका और परीक्षा दो भेद हैं ।

(३) कल्पका परकीया की स्थिति में सामान्यारि से कोई अन्तर नहीं पड़ता है ।

उपयुक्त विरभेदपत्र से पूर्वराग और परकीया का अन्तर स्पष्ट हो जाता है । स्वकीया परकीया आदि नायिका के भेद हैं । इनका आचार नायिकाओं की सामाजिक स्थिति है । समस्त नायिकाओं को इनके अन्तर्गत जाना चाहिए । इस प्रकार राधा या तो स्वकीया है या परकीया है और या सामान्या है । विवाह के पूर्व राधा स्वकीया हो नहीं सकती और उनके सामान्या होने का प्रश्न ही नहीं उठता । क्योंकि उनका विवाह किसी गोप से नहीं हुआ है इसलिए उन्हें परकीया हीना चाहिए । परकीया क कल्पका भेद के अन्तर्गत वे जाती हैं । कल्प से उनका समाकलिषित विवाह राम-प्रकरण में हाता है । अतएव रास क पूर्व तक वे कल्पका परकीया ही हैं ।

एही पूर्वराग की बात तो यह नायिकाओं का भेद नहीं है । यह तो नायिका क प्रेम की स्थिति का ध्यान है । हृदय में प्रेम प्रस्फुटित हो गया है किन्तु सामान्य नहीं हो पा रहा है । इस अवसर के विरह को पूर्वराग कहते हैं । यह परकीया में ही हो सकता है स्वकीया में नहीं । इसलिए पूर्वराग की स्थिति की सभी नायिकाओं को परकीया माना जाना चाहिए । उनमें से जो स्वकीयात्वं प्राप्त कर लेती हैं उनका परकीयात्वं अन्वार्द है । जो स्वकीयात्वं नहीं प्राप्त कर पाती वे शुद्ध परकीया ही रहती हैं । राधा शुद्ध परकीया है क्योंकि उनका विवाह कल्प में नहीं हाता है । त्रिग विवाह कहा गया है वह बचल गेन है विवाह नहीं ।

इस अतिरिक्त राधा-शृंगार-मन्त्राद्य में पूर्वराग की स्थिति भी अधिक बतलाने नहीं रहती है । राधा का हृदय में निरप-निमित्त होगा है । राधा ही नहीं बल्कि ललायक भी हो चुका है । ऐसी स्थिति में एक जाय पर को दाखकर खेद

पूर्वराय के अन्तर्गत नहीं लिए जा सकते हैं। उन्हें परकीया के अन्तर्गत ही लेना होता है।

राधा-विवाह प्रसंग

सामान्य में राधा का ही उल्लेख नहीं है, फिर विवाह का प्रसंग ही कहा जाता है। सूरदास ने इसके विपरीत रास को विवाह प्रसंग ही माना है —

जाकीं ब्यास बरनत रास ।

हैं पंचर्ष विवाह चित्त में सुनी विविध विभास ॥ (सूरदास, १६२६)

इस विवाह का सूर ने वर्णन किया है। यह पंचर्ष-विवाह है जिसमें ब्याह की बनेक रीतिवारी प्रयुक्त हुई थी जैसे 'कंकण-सोरन' आदि। प्रश्न है कि क्या राधा रूप्य का सचमुच पंचर्ष-विवाह हुआ था? इस पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम पंचर्ष-विवाह के लक्षणों का अवलोकन करें।

यदि मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रंथों को हम छोड़ भी दें तो भी काम से संबंधित कामसूत्र में भी इसके लक्षण विस्तारपूर्वक हैं। वात्स्यायन 'मयोष्योपावर्तन'—वर प्राप्ति हेतु कन्या का स्वयं प्रयत्न करना—नाटक १६वें प्रकरण के 'बाम्बन्तरोपचार' में कहते हैं कि यदि कन्या को विश्वास हो जाए तो रति-क्रीड़ा करे और अपने इस पंचर्ष विधिना विवाह की सूचना संबंधियों पर प्रकट कर दे। बाने चल कर 'विवाह-योग प्रकरण' में पंचर्ष विवाह की पुनः चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि इस प्रकार विवाह-संस्कार हो जाने के बाद उसके माता-पिता को सूचना दे। विवाहीपक्षों उसके साथ संजोम करके मायस्वैव उसे ग्रहण करे तथा अपने और कन्या के संबंधियों में इस बात का प्रचार करा दे। विवाहोपरांत प्रेम-व्यवहारों द्वारा सड़की के माता-पिता तथा अन्य संबंधियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार पंचर्ष विधि से उसे ग्रहण करे।

याज्ञवल्क्य स्मृति और पारस्कर पृथगुक्त में पंचर्ष विवाह के बाद होम, नक्षत्रादी आदि क्रियाओं का बाद में होना आवश्यक बतसाया गया है जिसके अभाव में कन्या दूसरे वर को दी जा सकती है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि पंचर्ष विवाह का उद्घाटन आवश्यक है। इसका कारण समाज को इस उद्देश्य से अवगत कर विवाह को वैधानिकता प्रदान करना है। पंचर्ष में विवाह में होनेवाली तयाम धूम-धाम का यही रहस्य है कि समाज जान जाए कि अमुक स्त्री-पुरुष परस्त्री-पति रूप में रहने जा रहे हैं तथा इनका यौनात्मक संबंध सामाजिक है। स्त्री-पुरुष के यौनात्मक संबंध की स्वीकृति देने के लिए ही विवाह होता है। पंचर्ष विवाह में संबंध को प्रकट कर यह बात समाज पर व्यक्त की जाती है। इसमें सज्जा का प्रसंग नहीं है। इसके बाद नायक-नायिका पति-पत्नी रूप में रहते हैं।

जब यदि हम राधा-कृष्ण के विवाह को देखें तो यद्यपि उस विवाह का सम्पादन ब्रह्मा ने किया था (इस प्रकार भी वह संघर्ष विवाह नहीं हुआ) सुरगण वहाँ उपस्थित थे सतकारि नारद और धिब्र इम कृत्य पर प्रसन्न हुए थे किन्तु इसकी खर्चा न तो रूपमान और उनकी पत्नी से और न ही मन्ध-बसोदा से ही कमी की गई। फलस्वरूप राधा-कृष्ण के प्रेम का खयाल ब्रह्म में ओरों में चल पड़ा और यह खयाल करनेवासी वही गोपियाँ हैं जो दोनों के ब्याह में उपस्थित थीं। माता पिता गुरु-भाई सभी बूट हैं। (सूरसागर २३०२)। रूपमान-पत्नी समझाती है कि पर बर नहीं जाया जाता। ब्रह्म भर में 'राधा-कृष्ण' 'राधा-कृष्ण' की खर्चा चल रही है। ऐसा काम मत करो जिससे निम्ना फीने जाय। ऐसे समय क्यों नहीं दोनों में से कोई एक अपने विवाह की बात कहता? क्यों नहीं कोई गोपिका उन दोनों के विवाह की बात कहती? क्यों राधा अपनी प्रीति धिपाती फिरती है? इतना ही नहीं जब राधा इस खयाल की खर्चा कृष्णा से करती है। तो वे अपने-दोनों के विवाह द्वारा उसको संतोष नहीं देते हैं। वे आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की याद दिलाते हैं तथा राधा के मन से लोफ-लज्जा से भय को दूर भगाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उन दोनों के विवाह पर किसीको विरहास नहीं है। गोपियाँ भी उसे बातों का चल मात्र समझकर विस्मृत कर चुकी हैं। राधा-कृष्ण के माता-पिता भी जगस अलग नहीं हैं। दोनों का सम्बन्ध सामाजिक स्वीकृति पर न होकर प्रेम पर अवलंबित है। वे दोनों भी हमसे परिचित हैं। इसीसे राधा का परकीयात्व सिद्ध है। कवि ने राधा के विवाह का उल्लेख तो अवश्य कर दिया है किन्तु मन्मूर्ख सूरसागर ने ब्याप्त राधा के स्वरूप में वे परकीयात्व नहीं भर सके हैं। राधा कभी भी अपने को कृष्ण की पत्नी नहीं सोच सकी है। उन्होंने स्वयं अपने को सर्वत्र परकीया अनुभव किया है। दोनों का विवाह मन्मथ एक छिल ही था और वह छिल ही रह गया।

राधा-कृष्ण प्रेम का एक अन्य समाधान यह कह कर किया जाता है कि राधा कृष्ण की प्रकृति है। अपने स्वयं का भान उन्हें स्वयं पुरुष ने कराया और इस अधिगता के कारण परकीयात्व नहीं है।

इन सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि परकीया-अपकीया एक सामाजिक प्रश्न है धार्मिक नहीं। समाज की दृष्टि में कुछ निष्पत्ति में खैरी स्त्री ही परकीया हानी है। यदि वह अविवाहित है और उनका प्रेम किसी पुरुष से है अपना वह विवाहित है और उनका प्रेम किसी अन्य पुरुष से है तो वह परकीया है। यदि हम राधा-कृष्ण के संघर्ष विवाह का जिन किमीने भी विवाह नहीं माना है न मानें तो राधा अनुद्धा परकीया है। उनमें अनुद्धा परकीया के अनेक भव दिलाते

है। यदि हम उसके बिबाह का मान में तो वे स्वकीया बनकर हो जानी हैं, किन्तु कर्मकलाप स्वकीयात्व को बाहर के हैं।

नायिकाओं का चरित्र-विवरण

भक्ति-श्रु पार की नायिकाओं का संक्षिप्त चरित्र निम्नलिखित प्रकार का है।

श्यामयी शाखा

इस शाखा के कवियों ने अपनी आरमा को ही ईश्वर की प्रिया माना है। आरमा का परमात्मा से यह सम्बन्ध पत्नी और पति का है। इस सम्बन्ध के कारण हम काव्य में नायिका का जो स्वरूप उपलब्ध है उसमें पत्नी का गौरव और स्वकीया की मर्यादा बड़े ही मजाहूर रूप में व्यक्त हुई है। यह नायिका पूर्ण धृष्टा गिनी है। अपने मंत्रीमी जीवन के सम्बन्ध में वह मुन्नर नहीं है। इसका विप्रमंत्र ही अधिक सुन्दर है। इसका विमोचिनी रूप कल्प तथा हृदयशासक है। इसका पानिब्रत तन्त्र असकता है। इसका रूप उत्कृष्ट गौरवपूर्ण और महाम है।

प्रेमाशयी शाखा

प्रेमाशयी शाखा की सभी नायिकाओं का चरित्र बड़ी माया में एक रूप प्राप्त हुए भी पर्वत विधिय है।

नायकता का छोड़ कर इस शाखा की सभी नायिकाएँ अविवाहिता हैं। विभिन्न परिस्थितियों में उनका प्रेम होता है। प्रेमिका रूप में वे सभी एकत्रिष्ठ निर्मीक चतुर और प्रेम-संध में सबस्य त्याग करनेवाली हैं। अपने प्रिय को पाके के लिए वे सभी विधियों का उपयोग करती हैं। नायक से अपने प्रेम-निबन्धन में सभी नायिकाएँ दुःख हैं। आरिचिक बुझना सभी में है। नायक की उदासीनता का उन पर प्रभाव नहीं बढ़ता है। संमोचिनी रूप में सभी नायिकाएँ काम-कला-विगारदा तथा बलि को संतुष्ट करनेवाली हैं।

नायिकाओं का विमोचिनी रूप हृदयशासक है। नायकता का विमोचिनी रूप वाहेस्विकता लिए हुए अर्थात् कल्प है। सब नायिकाएँ पतिव्रता बुद्ध और एक निष्ठ प्रेमवासी हैं।

राधाशयी शाखा

राधाशयी शाखा में सभी का स्वरूप शिखों की महत्त शिक्षाया अविरतान उल्लुकाण व परिपूर्ण और अपने अचरान का दिगानेराणी नायिका का है। पार्वती रूप में वे एकत्रिष्ठ प्रेमिका बुद्ध तथा पतिव्रती हैं। वे आर्य विधिया नाटी हैं तथा श्रु पार की नायिकाओं में पारयन हैं।

सीता का स्वरूप अधिक कोमल अधिक मधुर और हृदय को आकर्षित करने वाला है। कुमारी भीता ससृज्ज भर्माणा का ध्यान रखनेवाली अपने प्रेम को हृदय के अंतरतम में छिपा कर, देवी-देवताओं की कृपा पर ही अपनी इच्छा की छोड़ने वाली मुहुमारी है। अपने पिता के बचनों से बँधी हुई वे अपने प्रेम को हृदय में ही गोपन रखती हैं। यह निश्चित है कि यदि राम के अतिरिक्त कोई अन्य राजा उनके पिता की प्रतिज्ञा की पूर्ण करने में समर्थ होगा तो भी शायद हृदय में राम के प्रति समस्त कोमल भावनाएँ रहते हुए भी वे उनको अममाना पहनाने में न हिचकतीं। साथ ही-साथ यदि राम उनके पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने में असमर्थ होते तो भी निश्चित था कि हृदय में राम के प्रेम को संजोये हुए भी वे मौन रह जाती और कभी भी अपने प्रेम को प्रकट न करतीं। ऐसा निरीह और सरस जनका यह स्वरूप है जो सबका मन मोह लेता है।

अपने विवाहित रूप में सीता का पाठित्व कमजोर उठ। इसका प्रसरतम रूप रावण के सम्मुख असोक बाटिका में प्रकट हुआ है। सीता के लिए समस्त सुख समस्त भीषण समस्त धर्म और कर्म सब कुछ अपने प्रिय राम की चरण सेवा में है। वे अपनी सास की अवहेलना करती हैं। भूर्यु-शय्या पर पड़े बसुर को छोड़ती हैं तथा राम के उपदेशों को भी ठुकराकर उनके चरणों की छाया नहीं छोड़ना चाहतीं। बस ही उनके लिए अयोध्या बस जाता है। राम के संयोग में उनके पाठित्व में उनके समस्त कष्टों को पारगमन की भाँति सुखों में परिणत कर दिया तो राम के वियोग में रावण की असोक-बाटिका में यह जनका रखकर होकर एक अशेष कबच बन गया।

सीता का संयोगिनी रूप बहुत कम मिलता है। राम का प्रेम उन्हें सदा मिला है।

सीता का वियोगिनी रूप बड़ा ही हृदयद्रावक है। ध्याय के हाथ में पड़ी हुई निरीह हिन्दी की भाँति सीता की स्थिति है। असोक-बाटिका में हृत्-वदना अशोभुनी, एक बेगी किए निरंतर प्रिय के ध्यान में मन लगाए बैठी रहती हैं। उनके केशों में सदा धाँसू धरे रहते हैं। भीषण जनका विरह और शोक जनका कष्ट है। फिर भी उनमें कितना तेज है यह रावण का लिए गए उनके उत्तरों से स्पष्ट है। मार्ग का यह तेजस्वी स्वरूप भक्ति-शास्त्र में दुर्लभ है।

ममत्र रूप में सीता का स्वरूप अतमोहक मरम एकत्रिष्ठ दृढ़जना तेजस्वी और पाठित्व से परिपूर्ण है।

हृत्पाथपी धारा

हृत्पाथपी धारा की प्रमुख नादिका राधा और गौप नादिकाओं में अंशवली मयमा वृ दा लमिता आदि गोविदा है। इन नादिकाओं का स्वरूप दो रूपों

में विकसित हुआ है। एक रूप में ये सभी स्वयं अलग-अलग स्वल्प नायिकाएँ हैं, तथा दूसरे रूप में एक माय नायिका राधा है और सेव सभी उसकी सक्षियाँ मात्र हैं। यह दूसरा रूप नायिका-साहाय्य का है।

गोपियाँ

कृष्ण-काम्य में नायिका रूप में गोपियाँ महत्वपूर्ण हैं। अपना अलग व्यक्तित्व न प्रकट करते हुए भी गोपी-रूप में नायिकामों का एक सांस्कृतिक व्यक्तित्व है जिसके साधारण पर उनके रूप की एक रूपरेखा लींजी जा सकती है।

गोपियाँ कृष्ण की धर्याधिक प्यार करनेवासी व्रज-नसनाएँ हैं। वे कृष्ण के रूप-लाभ्य पर मूग्ध और उनके साहचर्य की आकांक्षिनी हैं। अपने प्रेम के लिए उन्होंने घर-द्वार, लोक-नग्ना सबका त्याग कर दिया है। कृष्ण प्राण्डि क लिए उन्होंने व्रत-उपवासादि सभी रचे। उनको प्रेम की वरम उपसक्ति राम के अवसर पर हुई।

गोपियों का जीवन ईर्ष्या, प्रेम, हास-परिहास छिपाव-बुराव आदि सभी स्वामाधिक वृत्तियों से पूर्ण मति आमाव-प्रमोह का है। उनमें जीवन अपने पूर्ण रूप से प्रवाहित होता है।

विधोषिनी गोपियों का रूप हृदय शत्रु है। मिथि-दिन कृष्ण की स्मृति में डूबी हुई वे कभी अपने दुर्माय्य को ता कभी कृष्ण की निष्कुरता और मधुर की नापरियों को कोछा करती हैं। उनके जीवन में वैराग्य पूर्ण रूप से आगया है। कृष्ण का प्रेम सूखन से सूखनतर होकर अत्यंत पवित्र हो जाता है। उद्यन आपमम के अवसर पर उनकी उन्मुक्तता प्रेमावेश तथा वचनीयता उनके प्रेम को अत्यंत हृदयशत्रु बना देती है। इस स्थिति में भी उन्हें राधा की पीड़ा की ही चिन्ता है। उनका प्रेम को देख कर ही उद्वेग ने उन्हें प्रेम-प्यजा स्वल्पिनी कहा है।

सजिता, अंशुवती सुबधा प्रादि

सजिता, अंशुवती नायि कुछ महत्वपूर्ण गोपियाँ हैं जिन्हें कृष्ण का प्रेम कुछ अधिक प्रकट रूप में मिला है। कृष्ण प्रेम का प्रतिदान करने जाते हैं किन्तु कमी-कमी हमारे के मही पकड़े जात हैं। उन समय प्रमत्ता अद्विता रूप में ये उनकी मारेंना करती हैं। इनके स्वल्प का अधिक विकास नहीं हुआ है। कानांतर में ये राधा की प्रमृग सक्षियाँ बन जाती हैं।

राधा

राधा सबसे महत्वपूर्ण गोपी है। वह बचपन से ही चतुर है। प्रथम पिलन के अवसर पर कृष्ण की जोरी पर उसका अंग्य इस चतुरता का द्योतक है। चतुर होते हुए भी वह धोनी है। कृष्ण को ही बागों में समेवा मन हर लेते हैं। कृष्ण के

साथ उसका प्रेम द्रुतगति से बढ़ता है। मिसल के लिए उसे न जाने कितने बहाने बताते हैं। योपियाँ उसकी चतुरता पर आश्चर्य करती हैं।

राधा का प्रेम मम और एकनिष्ठ है। वे भी कृष्ण से एकनिष्ठा चाहती हैं। कमस्वरूप जगह संघर्ष है। वे जब कभी कृष्ण को जग्य लायिका के पास बेगती हैं उस समय कठोर मोन धारण कर लेती हैं। धनुनय-बिन्दव का सतपर मसूर नहीं होता है बर प्रेम की गरमता का मान हूँ ही वे प्रवित हो उठती हैं।

संयोगिनी राधा का रूप अत्यंत मम्य है। कामकमा-विधारणा राधा कृष्ण की रति-निपुणता पर मुग्ध है। कृष्ण भी उनके रति-नीपुण्य से अत्यंत प्रभावित हैं। वह सदा रस निमग्न रहनेवासी मिर्चुप्रेरवरी हैं। बस्तभेधर-सम्प्रदायी में उनका यह रूप अति बिसामिनी का है। बस्तभ-सम्प्रदाय में समुत्तम है।

बियोगिनी राधा का स्वरूप अत्यंत कण्य है। बियोग की स्थिति में तड़ित पटित-सी वह निरक्षम हा गई हैं। प्रिय से सम्पर्क हुई बस्तुएँ भी उन्हें प्रिय हो गई हैं और यह सब उनके प्रस्नेह से भीनी सारी को मुताना भी नहीं चाहती हैं।

उदय का संदेह सुनकर उनका क्या हाल हुआ यह अचर्चनीय है। उदय संदेह और योपियों के उपार्थन के बीच वह एकदम घाँस और निरक्षम बैठी रहीं। उनका प्रेम और कृष्ण का यह संदेह—बेचारी क्या कहें ? उनके मोन ने उनकी पीड़ा को और भी अधिक प्रभावघाती कर दिया। उदय ने कृष्ण से उसीक प्रेम के नीव गाए। अपने बीच से बिरहाग्नि घुटकर रह जाने में राधा अत्यंतम हैं।

राधा का बुद्धिज्ञ में कृष्ण मिसल के समय का रूप भी अत्यंत कण्य है। कितने वर्ष बीत गए। डारकावीर कृष्ण अपनी रानिबा के साथ आए हैं। उनसे बात्र भेंट होती। इस मिसल में राधा अपना स्वरूप जो बँधि। वे स्वयं मोहन रूप हो गईं। मिसल का वह दार्शनिक क्षण अपने गर्भ में जीवन-पर्यंत बियोग लिये था। वह कितना मुग्ध और दाहक रहा होगा ! कृष्ण ने राधा से बिहँसकर कहा 'हम और तुममें कुछ अन्तर नहीं है। यह कहकर उगहाने राधा का लाटा दिया। यह मिसल कण्य का यह बिहँसना राधा की यह चरमता और प्रिय पर उसका बिरहाग्न जगम स्वरूप का कुछ ऐसा रूप होता है जो कि अनिर्बचनीय है।

अष्टम अध्याय

भक्ति श्रु गार में संभोग-वर्णन

श्रु गार रम के दो भेदों—संभोग और विप्रसर्ग में संभोग ही अधिक महत्त्व
पूज है। विप्रसर्ग के मूस में भी गभोग की आकांक्षा रहती है। भक्ति-साहित्य में
भी संभोग-श्रु गार का ही विशेष वर्णन है। उत्कृष्टता की दृष्टि से भी यह विप्र
सर्ग से श्रेष्ठ नहीं है। फिर भी साहित्य शास्त्रियों ने उनकी बकहसना की है।
भक्ति श्रु गार के विवेचन के अन्तर्गत पर हमको कवम छू कर अपने कर्तव्य की
वृत्ति-श्री समझी गई है। इसका क्या कारण है? झूठी नीतिबजा और सच्चा के
विषय और क्या कारण कहा जा सकता है। धर्म को जीवन से पूर्वत अलग कर
उसे एक अति पवित्र रूप देने की भावना भी इस उद्देश्य का कारण हो सकती है।
धर्म और काम का जो पारम्यक बाध में हो गया वह भी इसका कारण हो सकता
है। एक समय काम धर्म का अन्तर्गत ही गिना जाता था। फिर दोनों एक-दूसरे
के विरोधी हो गये हैं। भक्ति-श्रु गार में धर्म और काम का जो रूपा अमुनी भेद
है वह इस भावना का विरोधी है। इसलिए यद्यपि उस साहित्य को हटाया नहीं
जा सकता है फिर भी उसकी उद्देश्य तो की ही जा सकती है। सम्भवत यही सब
इस उद्देश्य का कारण है।

एक अन्य कारण भी हो सकता है। साहित्य-शास्त्र में संभोग श्रु गार का
भेदोपभेद नहीं किया गया है। उसमें संभोग का विवेचन भी विस्तार नहीं है। शायद
इसी कारण भक्ति-साहित्य के आलोचकों ने इस विषय को बड़ी मात्रा में अछूता
छोड़ दिया। जो भी हो साहित्य-शास्त्र ने जिन काम को नहीं किया उस काम
शास्त्र बहुत पहले कर चुका था। काम-शास्त्र का मीमा सम्बन्ध संभोग में है और
उसका इस उद्देश्य समीचीन भी था।

ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त-कवि काम शास्त्र से परिचित थे। उनके वाक्य
का आधार यदि एक ओर भक्ति रही है तो दूसरी ओर काम-शास्त्र से भी उन्होंने
प्रेरणा ली है। संभोग श्रु गार का अध्ययन इसी काम-शास्त्रीय आधार पर ही
संभव है। अतएव उसका भी रूप देना उचित होगा।

संभोग के ग्रंथ

श्रुतमेव में संभोग के निम्नलिखित दस उपांग माने गये हैं — (१) भातिवन (२) चुम्बन (३) दस्तकर्म (४) मद्यसत (५) शीत्कार (६) प्रहसन (७) संवेसन (८) उपमृत् (९) बीपरिप्लव तथा (१०) नरायित ।

काम-शास्त्र में भी सप्तमम इहीकी स्वीकार किया गया है। बाह्यम्य ने काम के सम्बन्ध में 'अनुपपिठि का उल्लेख करते हुए सम्प्रयोग किया के आठ चरण या अंग माने हैं। इनमें से प्रत्येक के आठ-आठ भेद कर इनके ६४ उपांग हुए। काम-शास्त्र की बीसठ कथाओं के आधार पर इन्हें भी 'अनुपपिठि' कहते हैं। बाह्यम्य और वात्स्यायन के अनुसार संभोग के निम्नलिखित आठ अंग हैं — (१) भातिवन (२) चुम्बन (३) मद्यसत (४) वसतश्चेद (५) संवेसन (६) प्रहसन शीत्कार और विप्लव (७) पुठपाविताचरण और (८) बीपरिप्लव। कल्याणमल ने अपने मतम रंग' में वेपकर्षण का भी उल्लेख किया है।

साहित्य-शास्त्र में संभोग का वर्गीकरण विप्रलम्ब के आधार पर किया गया है। विप्रलम्ब के चार रूपों के ही अनुरूप संभोग के भी चार रूप (१) पूर्व रामास्तर संभोग (२) मातास्तर संभोग (३) प्रजासामस्तर संभोग और (४) कथन विप्रलम्बान्तर संभोग माने गये हैं। भक्ति-शास्त्र में इन्हें ही बोधे अस्तर से क्रमशः संतिष्ठ संकीर्ण सम्पूर्ण और समूह संभोग कहा गया है।

संभोग श्रुतार के प्रस्तुत अध्ययन में काम-शास्त्र का आधार ही समीचीन होगा किन्तु संभोग को कामशास्त्रीय आठ या दस उपांगों में न बाँटकर उसके निम्नलिखित वर्गीकरण का आधार माना जाएगा —

(क) संभोग-पूर्व विचार

इनके अन्तर्गत संभोग के पूर्व की जानेवासी समस्त क्रियाएँ आती हैं। भातिवन चुम्बनदि इगीके अन्तर्गत आते हैं। इन सम्बन्ध में यह ध्यान रखना है कि संभोग-पूर्व विचार होते हुए भी संभोग में भी इनका प्रयोग होता रहता है।

(ख) संभोग

इनके मुख्य रूप से तीन भेद किए जा सकते हैं। रति विपरीत और रति रम इनके अन्तर्गत आते हैं।

(ग) मुरलीत

यह संभोग के अन्तर्गत का स्वरूप है। इनमें संभोग प्रमाण का वर्णन रहता है। इस प्रकार संभोग-पूर्व विचार संभोग की सम्पन्नता की दृष्टि से उचित अंग है उगी प्रकार मुरलीत भी मद्यम संभोग का प्रमाण और उचित अंग अंग है।

(घ) हास विनाश

इसके अन्तर्गत मिलन की स्थिति में नायक-नायिका के पास-परिहास कीड़ा श्रु गार भादि आते हैं ।

(ङ) संभोग का साहित्य-शास्त्रीय रूप

इसके अन्तर्गत साहित्य-शास्त्रियों द्वारा भाग्य रूप बताया है ।

इसी वर्गीकरण के आधार पर भक्ति श्रु गार में उपलब्ध संभोग-श्रु गार का रूप प्रस्तुत किया जा रहा है ।

संभोग का रूप-पोड़ा और आनन्द

संभोग मूस रूप में आनन्ददायक है किन्तु यदि हम इसकी क्रियाओं पर दृष्टिपात करें तो वे मूस रूप में पीड़ात्मक हैं । भासिमन कुम्भन गल-वैठ कत प्रहसन संवेदन आदि संभोगे पीड़ा का मय है । संभोग में इन पीड़ात्मक क्रियाओं की स्वीकृति क्यों है ?

संभोग में पीड़ा की स्वीकृति को समझने के लिए हमें पद्म-जगत की प्रथम केसि का बचलोकम करना होगा । पद्म-जगत में प्रणय रेसि रेसि ही है त्रिगका प्रारम्भ 'रख' से होता है । यह केसि बचलोकम का रूप धारण कर लेती है । पद्मवर्म में माया अधिकतम घनिष्टता की तरफ की जाती है । घनिष्टता की तरफ अपने धर्म के अर्थों को अपनी घनिष्ट के प्रदर्शन द्वारा बचाकर उग बर्ष की सभी मायाओं का उपभोग करता है । जब कभी कोई अर्थ तर उसकी प्रतिबन्धिता करता है तो उसे पुन अपनी घनिष्ट का युद्ध से माध्यम से प्रदर्शन करना पड़ता है । जो विजयी होता है वही युद्ध-यति होता है तथा सभी मायाओं पर उसका अधिकार होता है । घनिष्टता की तरफ की बचलोकम का प्राप्त करने के लिए उस पर भी बस-प्रयोग करना पड़ता है । इस रूप में संभोग बसात्कार रहा होगा । इसके उपरान्त संभोग द्वारा प्राप्त आनन्द का सम्पूर्ण बसात्कार या घनिष्ट-अवस्था में हो गया होगा त्रिगले कारण बसात्कार की कल्पना क्रियाएँ तादात्म्य के द्वारा आनन्ददायक हो गई होंगी ।

मानव-जगत में भी प्रारम्भ में त्रिगनि इसके अन्तर्गत ही होंगी । बिनेला विजित कबीर की सभी स्थितियों का अपने अधिकार में करके उनका उपभोग करना होगा । इसमें भी उसे पल प्रयोग करना पड़ता होगा । धीरे धीरे घनिष्ट का आकर्षण और बस प्रयोग द्वारा भास-समर्पण की वरम्पण-नी बल पई होगी । आन्तर में बसात्कार के पीड़ात्मक रूप में तथा संभोग त्रिग आनन्द से तादात्म्य हो गया होगा । इस तादात्म्य के कारण ही पीड़ा-संभोग का अनिर्धार्य मय और उसको बचलोकम बन गई होगी ।

है। जब तक प्रेमी स्त्री की बोलों मुँहों को तृप्त नहीं कर सकता, तब तक वह उसे पूर्णतः सुखी नहीं रख सकता है।

पीड़ा द्वारा आनन्दानुभूति के पीछे गारी का धाटीरिक्त गठन भी एक कारण है। स्त्री-यौनि का अन्तर्मयि सगमय सभी प्रकार की स्पर्श-मादियों से बिहीन है। किन्ते मे अपनी रिपोर्ट में इस पर विस्तृत रूप से विचार किया है। उनके अनुसार इस अभाव के कारण ही स्त्री संभोग में पीड़ा की चाह करती है। यह पीड़ा उसकी रागान्धता की बड़क है। संसार के विभिन्न देशों में विस्मयजनक रूप में प्रत्येक कृत्रिम प्रयासों का प्रचलन इसी कारण से सदा से होता आया है। इनका प्रयोग यह सिद्ध करना है कि वे स्त्री का राग-बर्द्धन करते हैं। यह निश्चित है कि कामोत्तेजना के अभाव में इनका प्रयोग पीड़ा जनक ही होगा पर उतकी उपस्थिति में वे पीड़ा जनक होते हुए भी सुखदा हो जाते हैं।

प्रथम समागम और रति-भय

अपूर्वक कामात्मक पीड़ा एक सीमा ही तक प्राण्य है। स्त्री इस पीड़ा की चाह उतरी सीमा तक करना चाहती है जहाँ तक वह अक्षय्य न हो। कामात्मता में यह बड़ी माया में सख्य होती है। यही कारण है कि प्रथम समागम के अवसर पर रति-भय में पीड़ा ही अधिक होती है जिससे भय करना स्वाभाविक है। पीरे पीरे अन्धमान परिचय और सहवास-भुल के जनमभ से वह न केवल इस पीड़ा को महान करने में समर्थ हो जाती है बल्कि स्वयं उसकी दृष्ट्य भी करने लगती है।

पीड़ा की सीमा

पीड़ित करने और होने की यह दृष्ट्य स्वाभाविक है। इस पीड़ा को पुरुष एक सीमा में प्रदान करना है और आनन्द की भूमिका रूप में स्त्री स्वीकार करनी है। नीचातीन होने पर यह आनन्ददायक नहीं रह जाती है। यद्यपि पति-भुल के लिए इसे स्त्री स्वीकार कर सकती है। पीड़ा की यह सीमा सुनिश्चित नहीं है तथा प्रेम की प्रमादना के अनुरूप भूनाधिक होती रहती है। धीमातीत होने पर यह प्रेम की नायक है क्योंकि यद्यपि स्त्री यह चाहती है कि उगकी दृष्ट्य के बिना अनेक बिनाएँ की जाएँ अथवा पीड़ा की जाए पर इस गदक मूल में आनन्द की ही चाह है। जो पुरुष यह नहीं जानता है वह प्रेम को नहीं जानता है।

पीड़ा के आनन्ददायक होने का मनोवैज्ञानिक कारण

पीड़ा कामोत्तेजना में महायक होती है। संघन में इसका मनोवैज्ञानिक

कारण यह है कि पीड़ा सभी मनोवैगों को उत्तेजित करनेवाली होती है और कामोत्तेजना इसका अपवाद नहीं है।

भय और क्रोध दो मूल मनोवैग हैं और इनमें कोई मुक्त नहीं है। जीवन की रक्षा के लिए दोनों ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही का संबंध मानव की काम भावना से है। प्रणय-केसि दो मूलतः युद्ध है जिसमें दोनों मनोवैगों का स्थान है। पुरुष स्त्री पर अधिकार करने तथा उसको संतोष देने में सामान्यतः उन्हीं विधियों का उपयोग करता है जिनके द्वारा वह शत्रुओं पर अधिकार करता है। स्त्री पक्ष की प्रणय-केसि में यह भय मनोमुग्धकारी रूप में प्रकट होता है। सज्जा इसी भय का एक सरल रूप है। पुरुष की दृष्टि इस सज्जा स्त्री भय को नष्ट कर पुरस्कार स्वरूप प्रेम प्राप्त करना है। अतएव जिस क्षण यह भय और अहित काम के अंतर्गत होने लगते हैं उसी क्षण से मस्तिष्क प्रभावित होना प्रारंभ हो जाता है और स्त्री-पुरुष की कामोत्तेजना के लिए प्रभावित करने लगते हैं।

हिर्न ने अपनी पुस्तक 'कला की उत्पत्ति' में 'पीड़ा के मानसोपभोग' नामक अध्याय में बतसाया है कि क्रोध मूल रूप में एक क्रियात्मक मनोवैग है और पीड़ा ही मानसदायक हो जाता है। भय प्रारंभ में विभिन्न तथा दुःख होता है पर उसके मूल की भावना के नष्ट होते ही वह मानसदायक हो जाता है और कभी-कभी जमकी चाह तक होने लगती है।

दूसरे में क्रोध का प्रकोप देखकर आनन्द मिसता है। स्त्रियों को इस स्थिति में अधिक आनन्दानुभूति होती है। फीरी ने एक ऐसी स्त्री का उल्लेख किया है जो कि संभोग-युद्ध के लिए अपने पति को क्रुद्ध कर दिया करती थी। इस विधि से प्राप्त आनन्द की बर्बाद उसने अपनी एक सखी से भी की तथा उसे भी ऐसा ही करने की सलाह दी थी।

उपयुक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि पीड़ा प्रणय-केसि का अंग है। यह स्वयं मानसदायक नहीं है किन्तु एक सीमा के अन्दर कामोत्तेजना को प्रगाढ़ करने के कारण आनन्ददायक हो जाती है। पीड़ा एक साधनमात्र है जो क्रियाशील को बढ़ाकर तथा अन्य मनोवैगों को उत्पन्न कर उन्हें काम भावना की ओर प्रवर्तित कर देती है और इस प्रकार आनन्द की उत्पादक होती है।

संभोग और विभोग दोनों ही कर्षों में पीड़ा का महत्त्वपूर्ण स्थान है पर दोनों के स्वरूपों में यथेष्ट अंतर है। संभोग में पीड़ा का रूप स्पष्ट ऐहिक और कामानन्द का बर्तक है। विभोग में यह मूर्धन्य है। आनन्ददायक यह बातों ही में है। इसीलिए हम बिरह-जग्य कष्ट को कभी भी छोड़ना नहीं चाहते हैं।

संभोग के स्वरूप को इस बर्षा के उपरान्त अर्थात् शू गार में उपलब्ध संभोग-वर्जन का अध्ययन समीचीन होया।

इस आत्मियन का संकेत मूर में उपलब्ध है। मरमाती गोपियाँ जब यद्योबा को जमाहना देने जाती हैं उन समय कृप्य कहते हैं कि खेल से मुझे बुझाकर ये मेरा आत्मियन करती है और मेरे हाथों को अपनी जोसी पर रखकर स्वयं उठे फड़ डामती हैं। मंभावना यह है कि काम-कसा विघारक कृप्य गोपियों का आत्मियन प्राप्त कर स्वयं उसका उत्तर देते हों और गोपियों का आत्मियन करते हों जिससे उनकी जोसी फूट जाती है। यह संकेत निम्न भिन्नित पर में है —

मूर्तेहि मोहि लनाबति ग्बारि ।

केलत से मोहि बोल लियो इहि होउ मुन मरि बीगही धंकाबारि ।

मेरे कर अपने उर पारति प्रापुत हो जोसी मरि कारि । धारि

(सूर १२१)

(३) अपविष्टक आत्मियन

इसमें केवल नायिका ही सक्रिय भाग लेती है नायक निष्क्रिय रहता है। मूर में इसका भी उदाहरण है। कोई गोपी कृप्य के रूप पर मुग्ध होकर उनका आत्मियन करती है। यिगु कृप्य तरलन बारह बर्य से किछोर हो जाते हैं और फिर बाद में यिगुरूप कारण कर बैठे हैं। इस प्रकार सक्रिय केवल आत्मियन रहती है और यह आत्मियन अपविष्टक की कौटि में आ जाता है —

यए स्वाम तिहि ग्वात्मिन के घर ।

बीली जाइ मरति बधि टाड़ी प्रापु लये ऐलन द्वारे पर ।

किर बितई हरि कृष्टि यए परि, बोल लए हुरएँ कुँये घर ।

लिए लपाइ कठिन कुच के बिच, पाये जायि रही अपने कर ।

जमवि धंग मँदिधा उर बरकी मुनि बितरी तन की तिहि प्रीतर ।

तब जए स्वाम बरत हावत के रीझे कुवती का छवि पर ।

जन हरि लियो तनक से छुँ गए बैबि रहो तिसु रूप मनोहर ।

जावन से मुन धरति स्वाम के मूरत बनु रति-पति नागर बर ॥

(सूर, १११)

(४) लतावेष्टित आत्मियन

यह आत्मियन नायिका करती है। यह बुध पर लिपटी हुई लता की मूर्ति नायिका द्वारा नायक का आत्मियन है। राधा-शुष्य व मंयोप में स्वयं-स्वयन पर उनके आत्मियन की उपमा ममान बुध में लिपटी लता द्वारा दी गई है। इस प्रकार के सभी आत्मियन लतावेष्टित आत्मियन व अंतयन आयोगे। यथा—

किसोरी धंश-वर्ग पेंटी स्यामहि ।

हृष्य तमास तरल भुज साक्षा लडकि मिसी षडो वामहि ॥

प्रचरत एक तता पिरि उपज सोड बीरु कृष्णामहि ।

कसुड स्यामता स्यामल गिरि की छाई कनक धयामहि ॥ धारि

(सूट २७५८)

तथा

रसना क्षुण्ण रस-निधि बीम ।

कनक बेलि तमास धरभी सुनुज बँध धरौल ॥

(सूट २०१०)

(३) तिल-संज्ञक धीर क्षीर-नीरक

प्राप्त प्रसंगों में इन दोनों प्रकार के आसिगमों को मसप-अमग करना सरल नहीं है। इन आसिगमों का संकेत मरकत-वर्धन, पन-शामिनी या बी-धनकर के संयोग से दिया गया है। कवि श्याम का इस आसिगम का एक उदाहरण दिया जा रहा है —

गिरलि सलि स्यामा विहरति पिय लो ।

मुज मर्ह धरर, नातु बाहुन मर्ह विरुरत नाही कुष क्षुण हिय लो ॥

रद में लट, बट में पद धरभे, तन में तन मन में पन हिय लो ।

मिलि विरुरी व 'श्याम' की स्वाभिति ज्योब कांड मिलि पिय लो ॥

(श्याम, १७६)

उपरोक्त शेषों के अतिरिक्त स्तनासिगम मलाटिका बुद्धाधिकरक आदि आसिगमों का संकेत भी मिलता है। आसिगमों का यह संकेत कृष्णामयी साक्षा के मूर में सबसे अधिक है। सुष्पी-साहित्य तथा अन्य कृष्ण भक्तों के साहित्य में इसका अधिक विस्तार नहीं है। ज्ञान तथा रामाश्रयी साक्षा में इसका निरालम्ब अभाव है।

(१) बुम्बन

बुम्बन का स्वल्प पशुओं में भी प्राप्त है, मद्यपि यह निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं है कि इनका मूत्र में स्नेह का प्रदर्शन है या काम। पौधों, पदार्थों आदि में विरुद्ध सिद्धि के प्रति इस प्रकार की प्रेम-श्रद्धा पैदा आती है। कुत्तों का मूत्रना आटना और दाँतों से धीरे धीरे काटना मानव-बुम्बन से मिलने जुलनेवासी ही किया है।

मानव द्वारा प्रयुक्त बुम्बन में स्पर्श एक प्राण-मूत्र—दोनों का ही प्रयोग होता है।

बुम्बन का मनोवैज्ञानिक कारण

किमी भी वस्तु को बूझने की इच्छा मानव में स्वाभाविक है। सिधु किसी भी वस्तु को पाते ही उसे मुँह में ले जाता चाहता है। संभव है कि इसके मूल में स्तन-मान की भावना हो। ऐसा देखा गया है कि बच्चे वस्तुओं को ही मुँह में नहीं रखते हैं बल्कि जिन साधो को वे प्यार करते हैं उनके विभिन्न अंगों को चाटना भी चाहते हैं। संभव है कि इस भावना का विकास माता के चाटकर प्यार करने से हुआ हो। इस चाटने की क्रिया से बालक के मन में यह मनोभावना बन जाती है कि चाटना और मुँह का परस्पर सम्बन्ध है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि माता चाटने से प्राप्त होतेवामे स्वानुभूत आनन्द को सिधु को भी प्राप्त कराना चाहती है। इस चाटने में स्वका का स्वल्प भयंम होता है जिससे गुरुपुत्री और आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा अनुमान है कि बच्चे के बचपन में ऐसी बनी हुई भावना सुबावस्था में तीव्र कामोत्तेजना की स्थिति में पुन प्रकट हो जाती है।

बुम्बन और घ्राण का निकट का सम्बन्ध है। गाल मुँह या सताट को सूँघ कर प्रेम का प्रवर्धन किया जा सकता है। भारत में छोटी का सताट सूँघ कर प्रेम व्यक्त करने की परम्परा थी। ललितवासी मैबुज के समय बुम्बन क स्थान पर नाक रगड़ते हैं और जीभ से एक-दूसरे का मुख चाटते हैं। बाज सामा स्थान बुम्बन में घ्राण का स्थान गौण हो गया है।

आजकल बुम्बन का सामान्य बर्न बीठों द्वारा प्रिय व किमी भी अंग का हल्का या गहका स्पर्श है। प्रयाङ्गता क माथ-गाथ बीठों का प्रवीम अपिकापिक हीना जाता है और सामान्य स्पर्श से बङ्कर उस अंग का बीठों द्वारा बबाना चुनना और कभी-कभी तीक्ष्णता तक हाता है। इनके प्रयोग में कबल घाठ बीठ और जिह्वा तथा घीठ जिह्वा और दाँन तीना का उपयोग हा गकटा है। बुम्बन के कोमल रूप में कबल स्पष्ट मुख है। प्रयाङ्गवस्था में पीङ्गा का भी प्रवेध हो जाता है।

प्रिय का प्रत्यक्ष अंग बुम्बनीय हाता है किन्तु कायल अनेकपायुक्त एवं बुदुपुत्री उत्पन्न करनेवामे अंग अधिक बूमे जाने हैं। ऐम अंग मन्मक रूप कपोल मैव अपर बस जिह्वा आवि है।

बाल्यायन मे बुम्बन की अनेकानेक रिधिया तथा मनवानेक भेद बनताए है। उन्हाने बुम्बन-भूत वा भी उत्पन्न किया है।

बलिष्ठ-गुणार में बुम्बन का उत्पन्न

मलिष्ठ-वाच्य में अंभाय क अंग रूप मे बुम्बन का निरन्तर उत्पन्न है। आनिलन वा गह्री गह्री अनेक किया बया है उमीव माथ-नाथ बुम्बन का भी

उत्सेह कर दिया गया है। मल्ल कवियों ने कुम्भन के उत्सेह में उनका कामधार्मिक धर्मों को प्रकट करने का प्रयत्न नहीं किया है।

मस्ति-शृंगार की ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में कुम्भन का अभाव है। प्रेमाश्रयी शाखा में कुम्भन का मयेष्ट उत्सेह है। प्रथम समागत के अवसर पर रत्नसेन अपरों का रस लेने लगता है, तथा पद्मावती के अवसर भी अपना रस प्रदान करने लगते हैं —

भारव बाहु कीर भव्य देखें। धरत चाहें रस जानहुँ देखें ॥

(पद्यावत, ११९)

तथा

आपुन रस आपुहि दे देखें। धरत लहुँ भाये रस देखें ॥

(पद्यावत १२५)

इतिरथ क अवसर पर रत्नसेन राम-राज्य का रूपक देते हुए कहता है कि मैं तुम्हारे अपरों से भरे अमृत रस का सोखूँगा —

— ह्रीं अस कोपि जान लव कोऊ। कीर सिमार मिले मैं होऊ ॥

उहाँ न समुह रिपुन दर माहरी। इहाँ त क्यम बटक सुख पाहरी ॥

उहाँ त कोपि धरिबर मरी। इहाँ त अपर अनिध रस खरी ॥

(पद्यावत १३४)

बिजावली में श्री कीलावती तथा बिजावली दोनों से भेंट के समय कुम्भन का उत्सेह है —

धरतन साह धरत रस लीहू। एक रस छाड़ि कीर सब लीहू ॥

(बिजावली, ४०६)

तथा

धरत छूटे लो धमिरित पीषा। बेहि के विघ्नत धरत भा होषा ॥

(बिजावली २१६)

इस मल्ल कवियों में से लगभग सभी ने कुम्भन का मोड़ा-बहुत उत्सेह किया है किन्तु मूर कीर श्याता में इसका सबसे अधिक कथन है।

श्री मट्ट ने युगल-युगल न कुम्भन पर एक दाहा दिया है —

प्यारी प्रीतम परस्पर लख्यो रस धनुषाग।

धरत गुषा रस देत हँ सित स्वाम बड़ भाय ॥ (३३)

मूर ने ननि नेति म राधा का संसर्ग छोड़ कर मिय का कुम्भन लेने का उत्सेह किया है। इसी मन्त्रिणा : कारण यह दूतन का मारमन्त्र प्रिय है —

रिपि भापती राधा मारि।

उलटि कुम्भन देति रतिरिनि लपुनि कीहूँ मारि ॥ (मूर, १०७३)

हृत्पत्र मन्त्र कवियों में यद्यपि बुम्बन के काम-शास्त्रीय रूप नहीं मिलते हैं किन्तु उनके स्तन पर मृद्ध अल्प रूप प्राप्त हैं। ये नेत्र बुम्बन कपोल-बुम्बन, स्तन ग्रहण कर बुम्बन और धाम्निम-ग्रहण कर बुम्बन हैं। इनमें से प्रत्येक के एक-एक उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

नेत्र-बुम्बन

नेत्र बुम्बन का ज्ञान नायिका क नेत्रों पर प्रिय के अक्षरों पर लगी पीक के द्वारा होता है। कवि क्यास का एक ऐसा पद है —

देखि सखी धाम्निम मुख रंग बोज्ज बन ।
विचुरी धमक पीक-पलक ललित धर,
मन्दित्र गंड सिबिल-बसन बोर सखिरे तन ॥

(ध्यास ११९)

कपोल-बुम्बन

नेत्र बुम्बन की ही भाँति कपोल पर पीक देखकर कपोल-बुम्बन का ज्ञान होता है। सूर का एक ऐसा पद निम्नलिखित है —

सातन सौ रति माली धानी कहे बैत मना रंज-भीष्ट ।
बचल ध बचल कतहि बुराबति मानहुँ मीन महाउर घोष्ट ।
पीक कपोलनि तरिबन के द्विग भसमताति जोतिनि छवि घोष्ट ।
सुरदास ब्रमु छवि पर रोके, सामति हौं भिसि नैकु न सोष्ट ।

(सूर, १२८१)

स्तनग्रहण पूर्वक बुम्बन

स्तनग्रहण पूर्वक बुम्बन का प्रसिद्ध सूर बुम्बनदास और व्यास तीनों ही कवियों में किया है। हृत्पत्र कवी राधा न चरोखों को ग्रहणकर बुम्बन देते हैं और कवी राधा के स्तनग्रहण कर बुम्बन देने की अनुमति माँगते हैं। उपर्युक्त से सम्बन्धित कुछ पद नीचे दिये जा रहे हैं —

बहु छवि प्रिय निहारत स्वाम ।

नकुँक बुम्बन बैत उरज परि धति सकुबति तनु काम ॥

ननमुय नन न बोरति प्यारी निकज भए पिय देसे ॥ धावि

(सूर १२४३)

तया

राधा के समय पीढ़े बु ब-सदन में सटपरी सबे भिसि द्वारे टाढ़ी ।

नन्दनन्दन कुँबर बुपमान तया सौ करत केनि में बु रवि बाढ़ी ॥

गिया अंग-अंग सों सपटाई स्वामयन निय अ य-य म सों सपटाई स्यामा ।
 होठ कर लो कर परति उरोज घति प्रम सों कियो बुम्बन अनिरापा ॥

(शु भगवात, १०१)

तथा

बीन पयोधर है मेरी बीने ।

घबर-मुषा मधु प्याह बिबाधहु बिरहु रोय बल हीन ।

घोली घीठत घोली के बंध सोलन है घायोन ।

कुच पहि बुम्बन-दान लम है धरन कमल-रज लीने ॥

घपनें अ य लपन के घर में मिलन ह स्वाम मागिन ।

प्यास स्वामिनी सुनि रति-सलिला पोवत मीहुन-मीने ॥

(ध्यात १३६)

केसपहण पूर्वक बुम्बन

इस प्रकार के बुम्बन का उल्लेख कवच व्यासजी ने किया है । विद्यापति
 ने भी इसका उल्लेख है । उसके उदाहरण निम्नलिखित हैं —

घोरी-घोपाल लाल बिहुरत बनबासी ।

घपन कुंज तिमिर पुञ्ज हरत करत हाँसी ॥

× × ×

कच बरि हर बुम्बन करि, मुञ्जन बीच गाँसी ।

कर घबल बंजल घति हित की निहू बासी ॥ धारि ।

(ध्यात १८०)

विद्यापति की पंछिवाँ निम्नलिखित हैं —

प्रथमवि हाप पयोधर लागु ।

पुलके प्रमोदे मनोजब लागु ।

× × ×

धाम्बिल धरह धबर मधु बीने । धारि ।

(विद्यापति, ७७)

मज-मज

राज-वृद्धि की अवस्था में मत्स्यो के सम्यग्रूप संघर्ष करने का मज
 बिलेखन कहते हैं । इन्हीं उग्र रूप त्रिमें लपका हात हो जानी है का मरुष्टे-
 रन का मज-मज कहते हैं ।

कामघातन के अनुमान यद-मद्व केम बात पुढीं को प्रत्येक समापन में
 इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए । केचम प्रथम मीकुरेष्टा की गनिन्विनीवीं के

कृष्ण मठ कवियों में यद्यपि बुम्बन के नाम-व्याप्तौय रूप नहीं मिलते हैं, किन्तु उनके स्वाम पर वृद्ध अर्थ रूप प्राप्त हैं। ये नेत्र बुम्बन कपोल-बुम्बन स्तन ग्रहण कर बुम्बन और धम्मिम-ग्रहण कर बुम्बन हैं। इनमें से प्रत्येक के एक-एक उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

नेत्र-बुम्बन

नेत्र बुम्बन का ज्ञान मायिका के नेत्रों पर प्रिय के ज्वरों पर मगी पीक के द्वारा होता है। कवि व्यास का एक ऐसा पद है —

बैजि सली धाँकित मुच बैन होऊ बन ।
बिपुरी-पलक पीक-पलक संकित-प्रपर
संकित गीठ सिबिल-बसन गौर सारिरे तन ॥

(व्यास, ११६)

कपोल-बुम्बन

नेत्र-बुम्बन की ही भाँति कपोल पर पीक देखकर कपोल-बुम्बन का ज्ञान होता है। पुर का एक ऐसा पद निम्नलिखित है —

सासन सौ रति मानी जानी कहे देत नना रंग भीप ।
बबल ध बल कटाहि कुरावति मानहुँ मीन महावर धोए ।
पीक कपोसनि तरिवन कें द्विय भुनमसाति मोतिनि धबि जोए ।
सुरदास प्रनु छवि पर रीझे, जानति हौं निशि नकु न सोए ।

(पुर १२८१)

स्तनग्रहण पूर्वक बुम्बन

स्तनग्रहण पूर्वक बुम्बन का उल्लेख पुर बुम्बनदास और व्यास तीनों ही कवियों में किया है। कृष्ण कभी राधा के चरोंजों को ग्रहणकर बुम्बन देते हैं और कभी राधा से स्तनग्रहण कर बुम्बन लेने की अनुमति माँगते हैं। उपर्युक्त से सम्बन्धित कुछ पद नीचे दिये जा रहे हैं —

बहु छवि धंय मिहारत स्वाम ।

कबहुँक बुम्बन दैत घरज परि प्रति सजुवति तनु वाम ॥

मनमुच बैन न ओरति व्यासो निलज नए पिप ऐति ॥ धावि

(पुर, १२४१)

तथा

राधा के सग पीड़े कु ज-सदन में सहपदी सब मिलि द्वारें छाही ।

मन्वन्मन्व बु बर बुबभान तनया सौ करत केति में सु रवि बाही ॥

विद्या अक्ष-वर्षण सों सबडाई स्वामयन निय अ य-अ य सों लपटाई स्वामा ।
 शीक कर सों कर परति शरीर अति प्रम सों कियो बुझन अशिराया ॥

(शु भनबास १०१)

दशा

वीन मयोपर री मेरी बीने ।

अधर-मुखा मधु प्याइ दिवाबहु बिरह रोग बल हीने ।

घोली घोहल जोसी के बंध सोसत री धायोने ।

कुच गहि बुझन-बाग लंग री, अरन कमल-रज लीने ॥

अपने अ य नयन के धर में यिसन री स्वाम लयीन ।

व्यास स्वामिनी सुनि रति-समिता पोबत मोहन-मीन ॥

(व्यास ११६)

केलघहृष पूर्वक बुझन

इस प्रकार के बुझन का अस्सेल केवल व्यासजी ने किया है । विद्यापति
 में भी इसका अस्सेल है । उसके अबाहुरण निम्नलिखित हैं —

पोरी-गोपाल नाम बिहुरल बनबासी ।

अपन कुंच ठिमिर पुन हरठ, करत ह्रांती ॥

× × ×

कच धरि हर बुझन करि मुअन बीच गांती ।

कर अचल अचल अति हित कौ विदु बासी ॥ धारि ।

(व्यास १८०)

विद्यापति की पछिमी निम्नलिखित हैं —

अपमपि हाथ पयोपर लागु ।

पुलके अयोदे मनोमन लागु ।

× × ×

बान्जल बरह अघर मधु बीने । धारि ।

(विद्यापति ७२)

नख-अत

राम-बुद्धि की अबस्मा में लताओं से सम्यक्बुद्धेय संपर्शन करने को नख
 विनेलन कहते हैं । इनके अम रूप विमल लखा छल हो जानी है का नखको-
 दन या नख-अत कहते हैं ।

कामपासन के अनुहार मंद-अध्य देय वाले पुष्यों को प्रत्येक लयानम में
 इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए । केवल प्रथम मीबुनेच्छा की परिस्थितियों में

ही इसका प्रयोग करना चाहिए। प्रबंध बैंग नाम नायक-नायिका इनका प्रयोग यथेच्छा प्रत्येक समास में कर सकते हैं। राधा-कृष्ण ने अपने गभीर समासों में इसका प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि दोनों प्रबंध बैंग नाम नायक-नायिका हैं।

कामशास्त्र में नयो क स्वरूप सुन्दर गतों क गुण मय दान के स्वात तथा मल-शत क स्वरूपों का विसृज विवेचन है। भक्त-कवियों ने इसका चुम्बन-आति मय से कही अधिक उल्लेख किया है किन्तु उनसे भवाभेदों का सम्यक वर्णन नहीं किया है। मल-शत का चुम्बन-आतिमय से अधिक वर्णन नायक-नायिका के मफल एवं प्रबंध रति का संकेत देने के लिए किया गया है। यह नायिकाओं के सोहान का चिह्न है और लड़नाएँ इसीसे प्रिय की अम्यन केमि से अवयव होती हैं।

मल-शत में पीड़ा की मात्रा आसिपन चुम्बन से अधिक स्पष्ट और तीव्र होती है। यह प्रबुद्ध राधावस्था में ही सङ्ग होता है और उसीका चोतक भी है।

काम-शास्त्र में बर्चित मल दान के विमिल रूपों का उल्लेख भक्त-कवियों की रचनाओं में स्वाभाविक रूप से किया जा सकता था। इसके द्वारा नायक-नायिका के नाय-शास्त्रज्ञ होने की पुष्टि बड़ी मरमता और सुन्दर ढंग से हो सकती थी पर भक्त-कवियों ने मल-शतों का इस रूप में वर्णन नहीं किया। उन्होंने सामान्य रूप से मल-शत का उल्लेख मात्र किया है। वह वर्णन प्रेमाश्रयी और कृपाश्रयी धारा में ही उपमन्व है। नाय-शत-वर्णन के ऐसे ही दो-तीन उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं —

नारय जान कीर नय देई । अघर धांनु रत जानहुँ तेई ॥ (परमावत ३१८)

नया

अघर रदन छर धरन नय उपति गई पुनि मांय ।

प्रयन सनागन अनु कियो, तियन भयो तव धाय ॥

(बिबावली, ४०६)

तया

राधा प्यारी तेरे मन लसोत ।

त निज बदन बनक तन जोवन तियो मनोहर सोत ॥

×

×

×

बुध गुण पर नय रैय अमट जानी शकर सिर शति होत ।

सँ थी हित हरिचय कहत कए धर्मनि शति धारत सँ बोक ॥

(द्वितोराती २३)

नन्द-सत का प्रयोग कबल नायक ही नहीं करता है । नायिका भी नायक पर नन्द-सत करती है । ऐसे नन्द-सतों का संभोग यद्विता की उक्तिगणों में मिलता है —

हृषा करी उठि भीरहीं भेरे मूह घ्राए ।

भव हस भई यदुभागिनी निति बिह्व विहाए ॥

× × ×

यह भीतीं तुमही कही उर-सत धरनाए ।

सूर स्वाम बस राति ही बनि तिया त्रैसाए ॥

(सूर, ३३०७)

रतिरम के विभिन्न जायगों में नन्द का सहस्रवर्ण स्वाम है । दस नन्द-जागों का प्रहार नायक-नायिका निरंतर सहते रहते हैं —

जोवन-बस शोक दस सामत राबत खेत धरे ।

घोर-स्वाम सैनिक सगमुष रबनी मुख कोप भरे ॥

बसनख-बाग प्रहार सहस्र शोक उरज मुख न धरे ।

भागत नदि लागति छति धरनि बसनापुन गिदरे ॥ यादि

(ध्यात ५२६)

एक भीमसत बचन

नन्द-सत का एक भीमसत बर्णन व्यासजी ने किया है । राधा के बुच्चों पर कृष्ण की छ मसियाँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानों जोंकें बधिर पीठी हैं । बुच्चों पर कृष्ण की स्वाम उ गतियों ५ नयो हाथ दिए गए सगों से निःसृत रक्त को लेकर ही यह उतरेता पी गई है । परध ला की दृष्टि से यह चाहे किठनी भी सटीक क्यों न हो किन्तु प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त भीमसत है । यह एक निम्नलिखित है —

भेन तिरात पात भवसोकें ।

इनि मँह सोमा तिधु सबात न बलक ताकरी सोक ॥

सबन होत मुख भवन हमारे मुगत तुम्हारी डोकें ।

कहा-कहा धनुमख कटिदं हो सदन कला-कुस कोक ॥

बुच की रत बापत कर बत रबिरहि पीबत खोक ।

देतें ही 'व्यास' रतिर रस भोपी बिरघ बुद्धित तिर डोकें ॥

(ध्यात ६३७)

दसनखदहन

नन्द-सत के माय-माय प्रदूष राधाकन्या में दसनखदहन का भी प्रयोग किया

जाता है। उत्तरोष्ठ जिह्वा तथा नेत्रों को छोड़कर शेष समस्त बुद्धिमान स्वामि
 दधनश्लेषन का स्वामि भी है। काम-शास्त्र में इसके बनेक विचार हैं किन्तु भक्त
 कवियों ने इनका सामान्य उल्लेख मात्र ही किया है। जिस प्रकार आतिगण-बुद्धन
 का पाद-गम उल्लेख होता है उसी प्रकार नख-रत-शत का भी छाप-ही-साम
 उल्लेख किया गया है। दधनश्लेषन के ऐसे उदाहरण नख-शत के उदाहरणों में
 पीछे दिए जा चुके हैं।

रति रग के आवुषों में बघनों का उल्लेख धनि के रूप में किया गया है —
 धानु प्रति कोरे स्यावा-स्याम ।

धीर देत वृ शाबल बीरु करत मुरत-स प्राम ॥

× × ×

बसत-सक्ति नख-मुक्ति करपति धरत, कपीत विहारे, धारि

(ध्यात १००)

बुद्धि मायिका भी दाँतों से बघरों को धड़ित करने को कहती है —

धुनि रो कुल की कानि ललन सी में भयरो माँड़ोली ।

मेरे इनके कोड बीच परे जिनि सधर रतन पाड़ीगी ॥ धारि

(धूर, २५४)

केस-कर्पण

काम-शास्त्र में मंभोग-पूरुष कियारों के अन्तर्गत केस-कर्पण का उल्लेख
 केवल कल्याणमत ने किया है। शास्त्रायतन में इसका स्वतन्त्र रूप से वर्णन नहीं
 किया है मद्यति केच पकड़कर अवर-मान करने तथा दधनश्लेषन की कर्षा करने
 की है। भक्त-कवियों ने केस-कर्पण का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख समभग नहीं ही किया
 है। इनके स्वामि पर उन्होंने मुरग में केच और विधेपकर माँग के विचारने का
 उल्लेख किया है। केच और माँग का यह विचरना सफल रति का विज्ञान माना
 गया है।

विवाहसी में मुजान ने एक मंभोग छोड़कर रति की समस्त कियारों
 बीतावनी के गाव की धी त्रिनमें से एक केच-कर्पण भी होयी क्योंकि प्रातः
 उनकी माँग पूरुष उपन गई थी —

धरत रतन छर धरत नख उपति गई धुनि माँग ।

प्रथम ललागत अनु कियो तिबल जपो धरत धीग ॥

(विद्या ४०६)

पद्मावत में भी इनका उल्लेख है —

मुँटे धरत-धन लख भेता । एरी मय भंग भे केता ॥

(पद्मावत, ३१७)

हृत्प-काव्य में भी नेत्र-वर्णन तथा चक्षुं क क्षिप्रित होने का स्पष्ट उल्लेख है —

बन बिह्वरत नृपमान किछोरी ।

शुभुम-शुभ सयनीय कुम्भ कमनीय स्वाम-रंज बोरी ॥

× × ×

केस करवि भाबेत प्रथर क्षत्रित संज्ञनि भ्रमभोरी ।

रति बिपरीति पीत छबि स्यात्तहि फबि गई स गनि रोरी ॥

(ध्यात ३७३)

तथा

रति रस कलि बिनात हास रंज नीने हो ।

कोळ सुम्बर नादि क समाए मात ॥

× × ×

धाल सिपिम शुभ सिपिम भात ।

सति सुख सिचिम जनात ।

केस सिचिम वर बेस सिचिम ।

बय नम सिचिम सिरात ॥ (गोविंद स्वामा २५६)

संभोग पूर्व की इन क्रियाओं से स्पष्ट है कि भक्ति-श्रु गार में संभोग का यह पक्ष अछूता नहीं है। भवन-नग इसके महत्त्व से परिचिन के और उन्हीं से सफल संभोग की भूमिका-रूप में इसे स्वीकार किया है।

(स) संभोग

प्रेम की अरम पण्यति संभोग है। यही प्रेम का साध्य है। इसीमें प्रेमी प्रेमिका की धारीरक और मानसिक शक्तों ही भवान्तों पर अभिन्नता होती है। प्रेम की उष्ण भूमि में जब प्रेमी-प्रेमिका समस्त बिधि विधियों को त्याग कर एक-दूसरे की अपना तन और मन समर्पित करते हैं तभी संभोग सफल होता है। इस सफलता के लिए आवश्यक है कि नायक-नायिका शक्ती ही इस काम के लिए तैयार हों इसमें कबि रगते हों तथा पर्याप्ततः सचित महद्योग प्रदान करें। इस सक्रिय महद्योग को प्राप्त करने में संभोग पूर्ण कियाए महदायक होती हैं। इसी लिए उनका इनना महत्त्व है। मज्जा का गमन्य प्राप्त करना कठिन है पर उमस भी कठिन उरका सक्रिय महद्योग प्राप्त करना है। मज्जा नवीनता अनभिज्ञता भय आदि अनेक कारण उनके प्रथम भिन्न के पूर्व महद्योग को अर्जित बना देते हैं। इसी कारण से जगन्नाथ ने 'रमभंजरी' में कहा है —

जो करव की कर बिर कर सो नबोड़ा बाता उर पर ।

त्रिस प्रकार से हृदय पर पारे को स्थिर करना कठिन है इसी प्रकार बबोड़ा बासा का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना कठिन है ।

रतिमय

बबोड़ा की रति में यद्यपि पूर्णता नहीं है किन्तु उसकी लज्जा उसका 'न-न' करना उसका भय यह सभी रतिकों को अत्यंत प्रिय रहे हैं । फिर भी इसका विशेष उल्लेख कृष्ण भक्त कवियों ने नहीं किया है । इसका कारण राधा का रति-नामरी रूप है । वे बबोड़ा रूप में चित्रित ही नहीं हैं । काम-कला विद्यारदा राधा प्रारम्भ से ही संपूर्ण संभोग करती हैं । इसका अपवाद विद्यापति का काव्य है । उन्होंने बबोड़ा के इन रति भय का अनेक पदों में सुन्दर चित्रण किया है । विद्यापति एक पद में ऐसी नायिका का चित्रण निम्नलिखित रूप में करते हैं —

'एक ता (नायिका) बलहीना उम पर भी अल्पवयसी हाथ परते ही कोटि अनुगत करती है । अक के नाम से हृदय बलघन होता है माना हाथी के (पीरों) उसे मृजाल पड़ गया हो । बाँकों में बाँसू भरकर 'मा-मा' कहती है मागों सिंह के भय से हरिणी के प्राण काँपते हों । (नायक ने) कौशल से दुष्-कोरक हाथ में ले लिया । (नायिका का) मुख देखने से स्त्री-जय का संदेह हुआ । बिलागिनी छोटी और कगहायी युवा बूचुहसी मदन-बाधा नहीं मुनता । विद्यापति कहते हैं 'मुरारि मुन ! अनिरिक्त बल प्रयोग से तारी नहीं बचती' ।"

प्रेमाश्रयी काव्यों में सोहागरान के समय नायिका के इन भय का उल्लेख है । चित्रावती ने इन भय का सुन्दर वर्णन उपमान में किया है । वे कहते हैं प्रथम मन्नागम ने बासा करती है । किसी भी प्रकार आगे पीर नहीं बढ़ाती । मत्त हस्तिनी के समान चित्रावती है और उनकी छुट्ट पंढिकाएँ मत्तवामी हस्तिनी के पंढे के सदृश हैं किन्तु उनके पीरों में लज्जा रुपी अर्गसा पड़ गई है । वह धमककर आँग बन्द करती किन्तु गतिवाँ उसे पकड़े दे-दे कर बढ़ा रही है । और उबररस्ती वह क्षेत्र के पाग गई, किन्तु भय के कारण पाटी से आगे नहीं बढ़ती है । चतुर गतिवाँ उसे बहुरानी और गमसानी है किन्तु क्षेत्र-गरिता को चित्रावती छूती भी नहीं है ।" (२३१) पद्मावत में अपने भय का उल्लेख पद्मावती स्वयं गधियों में करती है । पद कहती है 'उाके कौह पकड़ने के मध्य में क्या कहूँगी ? प्रेम का मैं अत्रिभंग हूँ । मैं अभी शान्ति हूँ और पति लक्षण । क्षेत्र पर बढ़ने पर मैं जाने क्या जाया ? उगर्की अनुभवी गतिवाँ उसे गायतना देने हुए कहती हैं 'जब तक मिलन नहीं होगा ? अभी तक भय है । क्या कभी भय के बाधा से भी शान्ति दृष्टी है । (३० ३ १)

प्रिय मिसन के लिए शू गार

शू गार की रीति ही निरासी है। जिस संभोग में स्त्री-पुरुष को समस्त मज्जा का परित्याग कर बस्त्रबिहीन होना पड़ता है उसीके लिए नायक और विशेष रूप में नायिका सुन्दरतम बस्त्रों से सजाई जाती है। जिन शू गार में प्रत्येक प्रकार का सामूयण वापक होता है, जो टूटते हैं उतारे जाते हैं उन्हीं सामूयणों से नायिका का शू गार होगा है। इनका एक कारण है। मभोग के लिए आनोदीपन से ये विशेष महामयक हैं। इनका नोदने में हगने में काम की जो बूँड हाठी है वह व्यसन नहीं की जा सकती है। फिर अपने सौंदर्य को बढ़ाने तथा प्रिय को सुन्दरतम रूप में अपने को समर्पित करने की चाह भी इनका पीछ है। शू गार न केवल कामोदीपन ही करता है बल्कि स्त्री-पुरुष के आकर्षण को प्रगाढतर भी करता है। अनेक काम धाम्निषों का मत है कि प्रेम और आकर्षण के स्थायित्व के ये दिन मूलम शू गार अत्यावश्यक है।

अपने को सुन्दरतम रूप में प्रिय को समर्पित करने की इच्छा जब बच्चे में भी होती है। सामाजिक विप्लवाचार के कारण वह अपना शू गार नहीं कर सकती है। किन्तु इनके महत्त्व के कारण ही सोहागरान के दिन बच्चे के शू गार की परंपरा है। यह शू गार उसी मरिचि मण्ड विधानी धारि करती है।

बच्चे के इस शू गार का दणन प्रौमाथयी काव्य में ही संभव है यही नायिका का विवाह होता है। पद्मावती में पद्मावती तथा जिजाकसी में कीलाकनी के इस शू गार का बचन है। पद्मावती के इस शू गार का बचन जामनी में इस प्रकार किया है —

मणियों में सर्वप्रथम स्नान करा कर सुन्दर पीतल बस्त्र पहनाए। मांस मेंबारकर अर्धम गीमाय बिल्ल सेदुर भरा। मस्तर पर सुन्दर टीका नैत्रों में बर्जन कानों में कु इस और नाक में फूल पहनाए। पद्मावती में पान धाया तथा पले कलाई कटि तथा चरणों आदि शू गार के बारह स्थानों पर बारह पहने पहने और सोमहों शू गार किया। उनका सम मद्रम का रूप अवधानीय है। ऐसा शू गार कर पद्मावती प्रिय मे मिसने गई। (२६६ ३००)

राधा के सम्बन्ध में मणियों द्वारा इस शू गार का स्थापन ही नहीं है। राधा बहुत ही तथा अपने प्रेम को मणियों से छिपा कर रगती है। इसलिए वह अपना शू गार स्वयं करती है। इस शू गार का मूर का एक पद नीचे दिया जा रहा है

धारी संघ निगार कियो।

सेवी रही मुनग कर अपने टीका बाज कियो ॥

मोक्षिनि मीन सँवारि प्रथम ही केसरि घाट सँवारि ॥
 लोचन घाँबि मखन तरिपन-छबि को कबि कहूँ निवारि ॥
 नाता नय प्रतिही छबि राजति घघरनि बीरा-रग ।
 नख-सत छाबि बीर घोली बनि मूर मिसन हरि संग ॥

(२६४५)

रामा-वस्त्रम सद्यी-मप्रहाय आदि गिनमें रामा स्वकीया तथा सदा संभोग-रता है वही उनका शृंगार उनकी सखियाँ आदि करती है। उन रामा का तो स्वरूप ही विलक्षण है। उन्हें रति रम से इतनी छट्टी कहाँ कि शृंगार करें। यह बाधितव ता उनकी सखियों का ही है किन्तु मूर की राधा को कि परकीया है अपना शृंगार स्वयं करती है।

मिसन-स्वपन

रति-स्वपन बीर रति-शय्या का संभोग-कर्म बीर उससे प्राप्त आनन्द पर विषेय प्रभाव पड़ना है। सुन्दर निरापद सुखमय बीर एकान्त स्वान इस कार्य के लिए उपयुक्त है। इन सभी सुखियाओं को एक साथ प्राप्त करना या तो स्वकीया के लिए ही संभव है और या उन परकीयाओं के लिए जिन्होंने बरगठ जगुपई से मयम-बुझकर घरो सहेट-स्वपन रवे हैं। किन्तु सामान्यतः परकीया को जहाँ-जब एकांत मिले उसका नाम उठाना पड़ना है। यही कारण है कि उनके मिसन के अनेक स्वपन होते हैं। वास्वयान के बाधम्य के मतानुसार निम्नलिखित सहेट-स्वपन बीर समय उपयुक्त माने हैं — देवासम उद्यान सामूहिक स्नानागार विवाहोरसम यत्र कुनर घटना के समय इन त्योहादि के अथवा अग्निकांड के अथवा, मेले तमासे नाटकादि के अथवा।

मक्ति-शृंगार के नायक-नायिकाओं को मिसन-स्वपनों की कठिनाई नहीं है। स्वकीया के लिए तो उनका प्रमाद या कंठ है जहाँ किसी प्रकार की बाधा नहीं है। ऐसी ही नायिका निजैदरती निरत्य-विहारिणी राधायानी हैं उनके रति-स्वपन बहुत कंठ बन उन-न मरी-मुसिन तथा हिडोना हैं। ये कंठ विभिन्न रूप और रतों में बनत हैं। मूर की राधा और अन्य गोपिकाओं की स्थिति कुछ भिन्न है। वे परकीया हैं। उनके लिए गृह पर गुपिया नहीं है तथा अन्य दुर्गों में अन्य सखियों का अथ इह-इह है। अंततः एक देसा उल्लेख किया है जिसमें गोपिका रूप की भिरसक रुन से जाने पर में जाने जाने क लिए बहूनी है —

बरम बाँधने श्रिय के हो मोहन ! बननि घायें तें मति डरहु ।
 तो ली श्रित जो ली देसों बारबार या सापों बिन धनत न परहु !
 तन मुप खंन तो ही ली प्यारे ! जो ली ल-न घाँकी भरहु ।

रतिकरु मोक्ष रविक नैव-नैवम तुम विप । भेरे सकल दुःख हरतु ।
 बाबहु बाहु ररुत एह भेरे इयाम मनोहर । सक न करतु ?
 कुम्भनबास प्रभु गोबर्द्धन-धर । तुम धरि-गोबन कातेव वरतु ॥

(२०६)

अग्य गोपियों के मिसन-रत्न कुंज पत्नी नदी पुमिन या जो भी मुदिषा-
 जनक स्थाप रहा बही है । मुख्यत वन-कुंज और यमुना-पुमिन ही उनके मिसन
 स्थल हैं ।

शेष

स्वकीया भायिकाओं की सेवा तो अनेक प्रान्तों में भनि बलंकृत रहती है ।
 इनका प्रस्त मुख्य रूप से परकीया के मन्त्र-व में ही उठता है । राधा सम्बन्धी पत्रों
 में हम सेवा का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है । ऐसे अनेकतर स्वस्व हैं जब कि राधा
 की मखिया सेवा की रचना करती हैं । अग्य अवसरों में तो परिस्मिति के अनुरूप
 जो कुछ भी प्राप्त हा जाए उन्हींसे सेवा का निर्माण होता है ।

कुंजों में पुष्पादि उपलब्ध होने के कारण सेवा उनसे मत्राई जाती है । यह
 सेवा करी राधा सजाती है (मूर २६७७ ६१२६ आदि) कभी कल्प सजाते हैं ।
 (पोरिहस्वामी २७६, कुंभनबास २६४ श्रीमद् ३० आदि) और कभी राधा-
 कल्प दोनों ही मिस कर मत्राते हैं । एक बार तो कुंजगली में दोनों की मनायाम
 भेट हो गई । समय कम था । ऐसे समय सेवा का प्रस्त ही नहीं उठता है । एक और
 कल्प ने श्रीधरा ने अपना पीतान्बर धरती पर बिछाया तो दूसरी ओर राधा ने
 स्वयं ही श्रीधरा से अपनी जोती प्रोती । दोनों की ही जातुरता इनमें अभिभ्यक्त
 है —

इहं जातुरनि जतुरता मूली ।

कुञ्ज मली धनबोले डोलत भेट भई सुख-मूली ॥

स्याम पीत पट सेवा करी स्यामा जिनु कबुकि लुली ।

रजनी मुस मुञ्ज वैष परस्पर, चितवत भूला हूली ॥

अथ द्योति अ मुदियनि काते कहत कुंवरि मुञ्ज कूली ।

विय-हिय मुञ्ज ई 'म्यात' स्वामिनो मुरति डोलि अडि भूली ।

(ध्यात, ४३२)

प्रभुदान ने सेवा का एक मरौर से बाँधा है जिसमें जीवन की मदिप मरी
 हुई है । वे कहते हैं —

सेवा तरोवर राजत है अत मादिक रूप भरी लपलाई ।

अ गनि धाना तरंग उठ तहाँ पीन पटासनि की अथ गई ॥

प्यासी सखी भरि स कुम मीन विषे तें गिरी उपमा प्रुष पाई ।
 प्र म गीयद नै डारै हूँ तोरि के कचन कंज चहुँ बिद्या माई ॥

(ध्यातीस लीला पृ० २१)

गैज के स्वरूप उसकी कोमलता और उसके मीठपन का एक बड़ा सुन्दर वर्णन जायसी ने पद्मावत में किया है। वे कहते हैं

प्रथम यह मैं मान लूँगी के ऊपर कैगास बा। बहूँ मुसबागी में मोने की
 बाव्या थी। उसकी चार दिशाओ म थ पठ हीरे और रत्नों से जड़े हुए चार लंगे
 लगे थे। बहूँ माधिर्य और मोनी दीपक जैसे प्रमदते थे तिनकी ज्योति से
 राग में भी ज्वाला रहता था। ऊपर मान बंदोबा छाया हुआ था और नीचे मूमि
 पर लाल बिछावन पिछी थी। उनमें परमंग बिछा था जिम पर सेज समी थी।
 किन्नर लिए ऐसी मुग्धबाओ रची गई है? बोना मोर लंगे तकिये (गंडुबा) और
 मोल चपटे तकिये (मनमुई) लगे थे। कण्ठे रेशम की बई चुन कर उनक भीतर
 मरी गई थी। फलों से मरी ऐसी सेज किमक योग्य है? कौन उनपर मोकक मुद
 भोग करेगा? वह सेज अत्यंत मुट्टमार सजाई गई थी। कोई उसे छू नहीं पाता था।
 रैतने मात्र से भी वह क्षण-क्षण में झुकी-सी जाती थी पाँव रखने से तो न जाने
 कौनी हो जायगी ॥ (पद्मावत २६१)

प्रथम समागम

प्रथम समागम का उपपन्न बचन प्रेमाशयी रागा के माहिर्य में ही हुआ
 है। इस माहिर्य में ही नायक-नायिका का विभिन्न बिबाह हाता है और इसी
 कारण मोहामराग के बदतर पर इन्होंने प्रथम समागम का स्वाभाविक वर्णन
 किया है। राम-माहिर्य में भी निब-वार्त्तनी तथा राम-नीता आदि के बिबाह के
 प्रसंग हैं किन्तु कवि की अतिथय मर्दाशापीयता के कारण प्रथम समागम का संकेत
 नहीं है। इन्द्राशयी रागा में मुरबाग ने राम के प्रसंग में राधा-रूप्य का बिबाह
 कराया है किन्तु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है यह एक मात्र माम था। राधा
 रूप्य का भिन्न हमने पूर्व भी ही चुरा था।

प्रेमाशयी रागा में प्रथम समागम के जनमर पर नायक द्वारा प्रयुक्त
 वातियन बुरन मग और दंग राग आदि कामोत्तेजक क्रियाओं का उल्लेख है।
 इस रागा के मनी नामक काव कता उगत हैं और रति के लिए नायिका को पूज
 कोन तनर करने का प्रयास करते हैं। उनमान ने तो इस उमेरक क्रियाओं में
 नायिका-बोदिस्य बागण्ड (clitoris) के पदन का भी उल्लेख किया है।
 इनके द्वारा नायिका में प्रयाप्यता आनाओ है तथा कामाधिकद में उसकी बाप

मनमय बाब बाँध पुनि काँपी । राबल बार हाँक गहि काँपी ॥

(बिशावली, ३६७)

नायिका को बार-बार आतिगन-बुझावि कि-माँसी से उत्तेवित कर नायक प्रसन्न करता है । संभोग-वर्णन में कवि नायिका के रति-भय का स्वरूप संकेत करता है किन्तु धीमे ही नायक कार्यरत हो जाता है । रति में नायिका के श्रु या एरि चूर हो जाते हैं । सिद्ध प्रवेश के साम कुमारीशब्द विधीर्ण हो जाता है । देवा मि;मृष्ट एत से रन जाती है और बँठ में स्वसन के उपरांत नायिका की सीतलता मिशती है ।

इस काव्य में सिद्ध-प्रवेश का संकेत कनक-पिचकारी से बेतने से बर्मा से मोती बेपने से कमल-कोष्ठ में अमर-प्रवेश से मयबा बज्जु न का बाप स राहु को मारने से किया गया है । कुमारी कन्या के वीनीशब्द भंग होने का संकेत रन बुझान से भरना सिधीरा-सूटना कंचन-नङ्-टूटना तथा अमृत-ज्ञान क फूटने से किया गया है । नायक के स्वसन का संकेत सीप में मोती पड़ने तथा वयन से धार छिन्कने के द्वारा किया गया है । इन सबको काम-प्रतीक कहा जा सकता है ।

श्रीमामयी मन्त्रों के इस वर्णन से एक बात स्पष्ट है कि कम्पुनि नायक-नायिका के संभोग को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया है और उसके शुद्ध वर्णन में हिचकिचाए नहीं हैं । इन वर्णनों के द्वारा उनके संभोग-श्रु गार में स्वृजता और सजीवता जा गई है । संभोग श्रु गार क उनके मुख पर नीचे पराहरणार्थ दिए जा रहे हैं —

बिशावली और गुजान के प्रथम समायम का बचन नीचे दिए पद में है । इसमें कामोत्तेजना-क्रियार्थ एवं संभोग का बचन है —

कुँघर सपत कामिनि मयमाना तिभु सपति बाबा परमाता ।
रही अक हैबर समुझाई सो गुजान तब अक में लाई ॥
पू मुख धौलि रूप धस बैदा सो बैदा बैहि धीस सुरैसा ।
अधर पू ट धी अमिरित बोधा बैहि के विप्रत अमर भा होया ॥
राहु मरत कताविधि काँपा लोचन पत घानन पद भाँया ।
पुनि मनमय रति कागु लेपारी, धौलि अदूत कनक पिचकारी ॥
रंय गुताप होऊ नै भरे रोम रोम तन मोती भरे ।

तैव रंम रोमाँच तन घामु पतन नुरधंय ।

प्रथम समायम को कियो सिबल भा लव धय ॥

इस छंद में घोषित बसूत कनक पिचारी' द्वारा कवि मुजान-कौलावती संभोग की याद दिलाते हुए स्मरण कराता है कि उन सीपों के प्रथम-मिलन में संभोग नहीं हुआ था। इस छंद में सात्विक अनुमाथों की भी छटा है।

प्रायची ने पद्मावती से रतनसेन के प्रथम समागम का वर्णन कई छंदों में किया है। इन्हींमें उन्होंने नारी-जीवन में काम क्रीड़ा का महत्त्व बतलाते हुए कहा है कि क्रीड़ा से पति को संतोष होता है। जा नारी क्रीड़ा नहीं करती वह मुनायी नहीं है। इसी काम-क्रीड़ा से मोक्ष मिलता है —

किरिरा काम कैलि मनुहारी । किरिरा जैहू नहिं सौ म मुमारी ॥

किरिरा होइ बंत कर सोखू । किरिरा किहू पाव पनि भोखू ॥

इसी छंद में रति मुख से बिकट का संस्कार करते हुए उन्होंने स्वप्न का संकट किया है —

पिड पिड करत भीम पनि सुखी बोसी जाधिक भाति ।

परी सो बूँद सीप बनु भौंती क्षिए परी मुख साँति ॥ (३१७)

प्रथम समागम के एक अन्य वर्णन में उन्होंने राम रावण के युद्ध से कपक बांधते हुए नायिका के कंबलमड़ (मुमारी-स्वर) के टूटने का तथा उसके समस्त श्रृंगारिक के नष्ट होने का उल्लेख किया है —

कहीं कृति बल रावण रामा । सेव बिपति बिरह स प्रामा ।

लीगू संक कंबलमड़ टूटा । कौगू सिगार भ्रहा सब नूटा ।

सौ जोवन संमंत बिबंता । बिबला बिरह भीब सं मंसा ।

मुटे संप-म व सब भेता । छूटी संप संप भे किता ।

कंबुकि चुर चुर भे तापे । टूटे हार मोति छुराणे ।

बारी टाड सलोत्री टूटी । बाँहू कंगन कताईं नूटी ।

जन्म संप छूट सल भंडी । बेतरि दूदि तिलक मा भेंदी ।

पुहुप सिगार संबरि जो जोवन नबत बसगत ।

घरपत्र बेटे हिय भाइ के मरपत्र बीगूँ कगत ॥ (३१८)

बंशान में भी प्रथम समागम की रति का पूरा-पूरा वर्णन किया है। सज्जा के कारण नायिका दीपक बुझाना चाहती है। हरी नायक और भी उत्रासा करता है। लजा कर वह दोनों हाथों में मुग का डक लेती है। उसके बाद रति होती है। श्रृंगार टूट जाते हैं। मुमारी-स्वर भंग होता है। स्वप्नकावर्णन दोनों को पानि मिलनी है —

सुत वाम रस अकम नरेक, रतन अयेव ब्रेव बी परोक ।
 कंबुकि तरकि तरिक उर फाटी, बीपसिस मांय बी पाटी ।
 सेतुर मिमिया तिलक तिलारा काकर नन बीठ रतनारा ।
 कम्पहार मियहार से दूदे, बसि मल बल बेहू सी छूदे ।
 बहुरि पूणिगी अन्वित जानी, भी सीती बी सातति रागी ।
 काम सलति उर बीसिये कही एक न टार ।
 तब ये दुयी सीति भी अब पवन से डिकका बार ।

(पृ० १३१)

कृष्य-श्राव्य में जिस प्रथम समायम का उल्लेख है वह नबोड़ा का नहीं प्रतीत होता है । परमाण्व ने प्रथम समायम के लिए राधा के स्वयं श्रु पार करने का उल्लेख किया है जो एक रूप के लिए अस्वामाधिक है । एक परकीया में ही यह संभव है । परमाण्व का यह पद निम्नलिखित है —

राधे बीठी तिलक हींवारति ।

मुपनयनी कुमुमायुय के घर मुमय नन्द सुत क्य विचारति ॥
 बरचन हाम तिवार बनावत बासर काम बुयति यों डारति ।
 अन्तर प्रीति स्थामनुन्दर सीं प्रथम समायम कैति बींवारति ॥
 बातर पत रजनी बज घावत मिलत साल मोक्येन पाटी ।
 परमाण्व स्वामी के लयम रति रस अगन मुवित बज तारी ॥

(परमाण्व सागर, ३७१)

उपर्युक्त उल्लेख में नबोड़ा की मज्जा नहीं काम-कलावत परकीया राधा की उत्सुकता हीं अधिक है ।

दामावर स्वामी तथा प्रबुवास ने भी राधा के प्रथम समायम का वर्णन किया है किन्तु उनकी राधा अधि काम-कला-वता है । वे प्रथम समायम पर ही रतिरक तथा विपरीत का सायोजन करने वाली हैं । उनका यह रूप स्वामाधिक नहीं है । प्रबुवास का यह अर्थ निम्नलिखित है —

प्रथम समायम घरत रस, बर बिहार के रंग ।
 बिलतत नागर नवत कम कोक कलन के घर ॥१॥
 अमित प्रीत छवि सीं ब रही पू घट पटहि स मारि ।
 अरनन टैबठ अतुरई प्रति ससाज मुकुंवारि ॥२॥
 बी अकल बाहूत दुयी पिय, कुंवरि छुबनि नहि हैत ।
 बितबनि मुषकनि रस मये, हरि हरि प्राननि हैत ॥३॥

रस विनोद विपरीति रति बरपत प्यार को मेहु ।
बस्यी जमदि भरि नैम की तोरि मेहु यरा मेहु ॥

(ध्यासीस लीला, पृ० १९७-१९८)

रति-वर्धन

भक्त-कवियों में रति-वर्धन दो प्रकार से किया है। प्रथम प्रकार में रति का संकेत या कथन मात्र है। दूसरे प्रकार का रति-वर्धन विस्तृत है। इसमें रति सम्बन्धी बनेक किम्वदों का कथित वर्धन है।

रति का संकेत

रति का संकेत राम-नाहिरय में है। अतिव्यथ मर्यादा की नाशना के कारण कवि ने ऐसे प्रसंग का वर्धन किया है जिसके उपरान्त पति पत्नी की रति की कल्पना की जा सकती है। विवाहापरान्त अयोध्या सीटने पर कवि ने मोहामरगत का उल्लेख नहीं किया है। उसने कहा है कि सानें बटुओं को अपने साथ लेकर आईं। इस प्रकार तत्काल मिलन का उल्लेख कर दिया है। जागे बस कर कवि ने 'कंकण-छोरड़' श्राव वा उल्लेख करते हुए बहुत विवाद और आनन्द का कथन किया है। इसी कंकण-छोरड़ से ही नायक-नायिकाओं व मिलन का संकेत किया गया है। यह प्रथा वर्तमान काल की 'बीबी' श्राव क समान है जिसके बाद ही रति पत्नी मिल सकते हैं।

रति-वर्धन माय

राम-नाहिरय में शिव-शार्वती की रति का कथन है। उनके संभोग का वर्धन न करने का उल्लेख किया है। शिव-शार्वती जगत के पिता और माता हैं फिर उनके श्रु गार का वर्धन कैसे किया जा सकता है। संभव है कि इन बचन पर तुमारी व मन्त्रिक में कामिदाम के शिव-शार्वती के श्रु गार की दात विद्वानों की भाँति कीच बर् हो। तुमारी ने इगीसे इनके श्रु गार का वर्धन नहीं करने हुए भी इतना मात्र कहा कि दोनों ने बनेक प्रकार व भोग-विभोग किया -

बसहि सन्नु कलासहि घाय । नुर सब निज-निज लोक सिपाय ॥
जयत माकु-पिनु सन्नु भदानी । ठैहि सिगाए व चहुज बतानी ॥
करहि बिबिध बिबि भोग बिसाया । गनगु गमेज बसहि कँसाया ॥
हर गिरिजा बिहार बित जयऊ । एहि बिधि बिगुल काल घति गयऊ ॥
तब बसयेज बरबदन श्रुमारा । तारक घगुर समर पैहि घारा ॥

(भागत वा० १०३)

इसी प्रकार का कवन मात्र कृष्ण-साहित्य में भी प्राप्त है। कृष्ण भक्त कवियों ने यदि रति का विस्तृत वर्णन किया है तो अनेक स्वप्नों पर रति का केवल कवन मात्र ही किया है। ऐसे अस्मैव कृष्ण-साहित्य में सर्वत्र प्राप्त हैं।

रति का विस्तृत वर्णन

रति का विस्तृत वर्णन सभी कविता में नहीं किया है। जिन कवियों ने रति का विस्तृत वर्णन किया है उन्होंने भी कहीं एक ही स्थान पर कविक रूप से रति का संयोगवाच वर्णन नहीं किया है। किन्तु ऐसे कवियों की रचनाओं में रत्नांगों के ऐसे अस्मैव मिलते हैं जिनके आचार पर रति के विस्तृत वर्णन की रूप रेखा तैयार की जा सकती है। ऐसी ही रूप रेखा नीचे दी जा रही है —

धार्मिक

रति के लिए उत्पन्न भाविका में भी स्वाभाविक भयना होती है। अतएव नायक उसे प्यार से सेव पर आर्ध्रित करता है। अक्सर ता जैसे अरु में अर कर ही सेव पर लागू पड़ता है। पूर क एक पद की इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं —

इसे सत कमल इक ठौर ।

दिलकी प्रति धारर ईशे की जाइ मिले ई धौर ॥

×

×

×

इतने जतन किये नख-नखन तब बहु निठुर बनाई ।

धरि क एक सुर के स्वामी पयक पर झूई धाई ॥

(१०७६)

वार्तालाप

सेव पर आई भाविका से वार्तालाप के विशेष अस्मैव नहीं मिलते हैं। बिहारनिदेश के एक पद में रामा की रिजाने के लिए कृष्ण का काम-कहानी कहने का अस्मैव है। वह पद निम्नलिखित है —

मैहूँ नहूँ बूद बन तपन मानों प्रेम बरबे पानी ।

सीबि सीबि मन मीव बड़ावत गावत प्रोतम विर्याहि रिम्यवत

कहि-कहि काम कहानी ।

कुहिन बात बुबात गात तिरात रीभि-रीभि य न-संग रग रतिक लागी ।

भी बिहारनिवास मुक सम्पति इन्वति विनति बिलति रस पावत रिनु

रति मानी ॥

ताम्बूल-निवेदन

भारतीय श्रृंगार प्रसाधनों में पान का महत्त्वपूर्व स्थान है। बाठीसाप प्रारम्भ करने में इसका उपयोग होता है। प्रकटपरागवस्था में मित्र-प्रिया एक-दूसरे को मुख द्वारा पान खात-खिसाते हैं। कभी-कभी जुड़ा पान भी पिया जाता है। बुम्बल में नायक-नायिका परस्पर एक-दूसरे की पीक पी लेते हैं। इस प्रकार से पान द्वारा अनेक शीशायें होती हैं।

कृष्ण भक्त कवियों ने नायक-नायिका के पान खात का तथा एक-दूसरे की पीक पीने का भी उल्लेख किया है। यह उल्लेख श्यामजी द्वारा हुआ है —

श्याम के गोरी सहज सिंगार ।

कन्धन तन हीरा बसनाबनि नख मुक्ता मुखसार ॥

× × ×

पिय के गंठ घण्ट, रसना मुख मुखमय बूठी धार ।

श्याम बसि बिन पीक पियत बड़ भागिनि भित जगार ॥

(श्याम, ३७३)

बुम्बल-आभिषेक

रति के पूर्व एवं रति में भी बुम्बल-आभिषेक का निरन्तर प्रयोग होता रहता है। इसका वर्णन सभी कवियों ने किया है।

बस्त्रापहरण

बस्त्रापहरण द्वारा रति का प्रथम महत्त्वपूर्व कथन श्रव्यता जाता है। कृष्ण भक्त कवियों ने बस्त्रापहरण का उल्लेख कई प्रकार से किया है। कहीं कामोत्तेजना से नायिका की जोड़ी के बंद स्वयं दूरने लगते हैं तो कहीं नायक उन्हें रोसता है। कहीं उतावली में नायिका स्वयं जोड़ी उतारती है तो कहीं नायक बिजम्ब सहन न कर सकने के कारण बस्त्री को फाड़ देता है, तो कहीं उसकी जाँघों के बस्त्र को गीबता है। इस प्रकार बस्त्रापहरण के अनेक रूप हैं। श्री हित-हरिचंदा का बस्त्रापहरण का एक पद भीचे दिया जाता है —

घात्र बन कीड़त श्यामा-श्याम ।

मुक्ता बनी निधि परत खीरनी बधिर बुद्ध प्रभिराम ॥

घण्टन घण्ट करत बरिदम्बन ऐकन जघन बुद्धत ।

पर नख पात तिरीटी बितबनि बम्पति रस लम्बूत ॥

बे मुख बीन बपोपर परतत नाम बुद्धा पिय हार ।

बसननि बीक प्रशक प्राकर्षत समर धमिन सत मार ॥

बस पत प्रबल चौप रस संपद घति सुन्दर सुकुमार ।

भे भी हित हरिबल धातु लुप इरत हौ बलि विभर बिहार ॥

(हितचौरासी, ३२)

कृष्ण-मर्दन और मङ्गल-कथादि

संसार की सुन्दरतम वस्तुओं में कृष्ण माने जा सकते हैं । सुन्दरी के पुष्ट मुडोस उन्नत और स्निग्ध उरोओं की मादकता का बचन कौन कर सकता है ? उनका रस्यन ही काम की महरू प्रबाहित करनेवाला हाता है फिर उनके स्पर्श की मादकता का अनुमान कौन कर सकता है ?

मानव-जाति में ही सतानोत्पत्ति के पूर्व कृष्णों का पुर्ण विकास पाया जाता है । फलस्वरूप वे कामोद्दीपन के प्रलय-केंद्र हो गए हैं । स्त्री के लिए भी इनका स्पर्श, मर्दन, प्रहसन या चूपन सभी क्रियाएँ बलि कामोद्दीपक हैं । इनके इस महरू को ही समझकर कृष्ण-भजन कवियों ने अपने काव्य में कृष्ण-स्पर्श कृष्ण-मर्दन आदि का वर्णन किया है । यथार्थ में कृष्णों के अनादृत हुए बिना उगहले काम की पूषता ही नहीं मानी है । इसीलिए तो आवुरता म रामा स्वयं ही बचती चोली खोलती हैं । कृष्ण सम्बन्धी बचन इस काव्य में सबत्र प्राप्त हैं ।

मीची-मोचन

कृष्ण साहित्य क श्रु गार-बचन में मीची-मोचन का मर्दन उल्लेख है । इस क्रिया के बाद मायिका पुर्णतया निर्दरवा हा जाती है और तभी रति मयम्न हो पाती है । इसक उल्लेख में विस्तार का अवकाश नहीं है । कवियों ने सामान्यत मीची खोलने का उल्लेख किया है । कभी-कभी मायिका भ्रिम का मीची खोलने से रोकड़ी है और दानों में वेत-मा मच जाता है । मूर क ऐसे ही पद की निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ हैं —

मवल मापरि, मवल मापर कितोर मिलि कुञ्ज कोयम-कमल बसति लया रखो ।

पौरसाबस मय बजिर ताबर दिने सरस मनि मुहुल कंचन मुद्रामा लखी ॥

सुन्दर मीची बंध रहति पिय पानि यहि पीय के मुञ्जनि मैं कनहू मोहन मची ॥

(मूर १८०६)

अपन-स्पर्श तथा मर्दन-सहन-बचन

मायक की काम-कला-निपुणता और कीचुपता अपन-स्पर्श तथा मर्दन सहन-बचन म होती है । कुछ ही कवियों ने इसका वर्णन किया है । इसका बचन करनेवाले कवियों में क्याम प्रमुग है । उगहले कृष्ण की इन क्रिया के माय घटा की मज्जा का भी उल्लेख किया है —

साम्प्रत-निवेदन

भारतीय श्रृंगार प्रगाथनों में पान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तविक प्रारम्भ करने में इसका उपयोग होता है। प्रबद्धराजावस्था में प्रिय-प्रिया एक-दूसरे को मुग्न द्वारा पान खाते-खिलाते हैं। कभी-कभी जूझ पान भी खाया जाता है। चुम्बन में नायक-नायिका परस्पर एक-दूसरे की पीक पी लेते हैं। इस प्रकार से पान द्वारा बनेक प्रीड़ाएँ होती हैं।

कृष्ण मन्त्र कवियों ने नायक-नायिका के पान खाने का तथा एक-दूसरे की पीक पीने का भी उल्लेख किया है। यह उल्लेख ब्यासजी द्वारा हुआ है —

स्वान्तं कौपी सहज सिंगार ।

कम्बन तन हीरा बतनाबलि नख मुक्ता मुक्तातर ॥

× × ×

पिय के शंख अघर, रसना मुख मुखमय बूझी बार ।

भ्यात दाति विन पीक पियत बड़ भापिनि सैत जगार ॥

(ब्यास, २७३)

चुम्बन-आतिगन

रति के पूर्व एवं रति में भी चुम्बन-आतिगन का निरन्तर प्रयोग होता रहता है। इसका ब्यय सभी कवियों ने किया है।

बस्त्रापहरण

बस्त्रापहरण द्वारा रति का प्रथम महत्त्वपूर्ण कदम उठाया जाता है। कृष्ण मन्त्र कवियों ने बस्त्रापहरण का उल्लेख कई प्रकार से किया है। कहीं कामी-सेविका से नायिका की बोगी के बंद स्वयं टूटने सपते हैं तो कहीं नायक उन्हें धामता है। कहीं उत्साहनी में नायिका स्वयं बोमी उत्तरती है तो कहीं नायक बिलम्ब महत्त्व न कर मन्त्र के कारण बस्त्रों को फाड़ देता है तो कहीं समझी जायों के बन्धन को गीबला है। इस प्रकार बस्त्रापहरण के बनेक रूप हैं। श्री हित हरिश्चर का बस्त्रापहरण का एक पद नीचे दिया जाता है —

घाह बन बीड़त श्यामा-दधान ।

मुग्धन बनी निजि शरद चारुनी बहिर कुम्भ घमिराव ॥

घग्घन अघर करत बहिरम्भन ऐबत जयन कुम्भ ॥

घर नख पान तिरिटी बिनबनि बभ्यनि रस समगुल ॥

बे भुज बीन बयोपर परतन बाम बुगा पिय हार ॥

बनबनि पीक घसाक घाबर्धन नमर धमिन सन बार ॥

पल पल प्रबस खीप रस रीपद भलि सुन्दर सुकुमार ।

खं नी क्षित हरिबंध भाग्य तुम दूत हों बलि विनाय विहार ॥

(हितचौरासी, १९)

कुच-मर्दन और मक-मतादि

संसार की सुन्दरताम वस्तुओं में कुच माने जा सकते हैं। सुन्दरी के पुष्ट, सुटीन उन्नत और सिंगर उरोजों की मादकता का वर्णन कौन कर सकता है ? उनका दर्शन ही काम की सहर प्रबाहित करनेवाला होता है फिर उनके स्पर्श की मादकता का अनुमान कौन कर सकता है ?

मानव-जाति में ही सतामोत्पत्ति के पूर्व कुचों का पूर्ण विकास पामा जाता है। फलस्वरूप ये कामोद्दीपन के प्रलय-कोण्ड हो गए हैं। स्त्री के लिए भी इनका स्पर्श, मर्दन, महजन या चूपन सभी क्रियाएँ बलि कामोद्दीपक हैं। इनके इस महजन को ही समझकर कुच-मनत्र कवियों ने अपने काव्य में कुच-स्पर्श, कुच-मर्दन आदि का वर्णन किया है। यमार्थ में कुचों के अनावृत हुए बिना उम्होंने काम की पूर्णता ही नहीं मानी है। इसीलिए तां आदुरता में राधा स्वयं ही अपनी बोसी खोसती है। कुच सम्बन्धी कवन इस काव्य में सर्वत्र प्राप्त है।

नीबी-मोचन

कृष्ण साहित्य के श्रु मार-वर्धन में नीबी-मोचन का सबत्र उल्लेख है। इस क्रिया के बाद नायिका पुनःतया निर्बलता हा जाती है और तभी रति संपन्न हो पाती है। इसका उल्लेख में विस्तार का अवकाश नहीं है। कवियों ने सामान्यतः नीबी खोलने का उल्लेख किया है। कभी-कभी नायिका प्रिय का नीबी खोलने से रोकती है और दोनों में खेल-सा मक जाता है। मूर के ऐसे ही बर की निम्नलिखित कुछ बंछिर्वाँ हैं —

नवल नायदि, नवल नायद कितीर मिलि कुच कोमल-कमल-दमनि सम्या रही ।
 औरसांभल प्र ग हरि र तावर मिले, अरस मनि मुहुल कंचन मुघाया लखी ॥
 सुन्दर नीबी बंध रहति पिय पानि बहि दीप के मुबनि में कलह मोहन मची ॥
 (मूर १८०६)

अपम-स्पर्श तथा मदन-सदन-दर्शन

नायक की काम-कला-निपुणता और कोतृकता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सदन-दर्शन में होती है। कुछ ही कवियों ने इनका वर्णन किया है। इन्हीं वर्णन करनेवाले कवियों में व्यास प्रमुख हैं। उन्होंने कृष्ण की इस क्रिया के महत्त्व की मज्जा का भी उल्लेख किया है —

बन बिहुरत रूपमान किछोरी ।

×

×

×

सरत बचन हरसन लमि परत पकरि हरि कृ करि जिहोरी ।

भदन-सदन की बदन बिलोकत नैननि सुबति गोरी ॥

(२७९)

एक समय पर म उन्होंने रति के लिए तत्पर राधा का वर्णन करने में उसकी योग्यता के विमर्श होने तक का उल्लेख कर दिया —

काम-कामक-तिहासन तरलित, सिबिस बलन कदि छोटी ॥ (४११)

रति

उपर्युक्त समस्त क्रियाओं के बाद रति की क्रिया आती है। मक्त-कवियों के संश्लेष का चित्रण नहीं किया है। उन्होंने इस क्रिया की व्यंजना अनेक प्रकार से की है। कहीं राधा-रूपन कनक-वैशि और तमाल के समान मिपटे हैं कहीं दोनों के बीच में बाधक हार राधा पगारती है और कहीं बाधुपणों के रव हो रहे हैं। इन्हीं सब वर्णनों द्वारा रति का संकेत अधिकतर किया गया है। बाधुपणों के रव का एक पर निम्नलिखित है —

तल्प रची नबक ज सरब में पीछे बंपति करत बिहार ।

धरत-धरत हौत-हौत बिलसि मिलि सुरत समापन परम अपार ॥

परिरसन च बन धानियन कीड़त ही भयो सिबिस सिगार ।

कंकन-बलय किकिनी सुपुर मुनि बिरमि-बिरमि उपजत भवकार ।

जमकन बदन-मदन रत हांपठ राधा रसिकिनि नबकुवार ।

'गोबिंद' निरखि-हरनि गुन-मावन कुमल बिलोर सिग्या बधिकार ।

(गोविंदस्वामी २९३)

रघुनाथ

राधा-रूपन की इस रति का वर्णन करते हुए मुरदाग कहते हैं कि राधा ने रूपन की गभी आगाए धूरी कर की (२६३२)। रूपन ने भी रति में राधा को बचन कर दिया (१-२४०)। फिर भी दोनों का इस आनन्द में मतौप नहीं है। बारंबार वे कुछ ही हुई कामादि को प्रदर्शित करते हैं —

देखी जाई माथी राधा बीरत ।

सुरत समय संतोष न जानत किरि-किरि एक धरत ॥

मुच के धनित गुणवत कम जल यह छवि धनहि हरत ।

मानहुं काम-धगिनि निरखत भई क्वाता कैरि करत ॥

द्विविध प्रेम की राशि लाङ्गिणी, पलकनि बीच भरतः ।

सूर स्वाम स्वामा सुख भीडत मनसिज पाद परत ॥

(सूर, १०१८)

विपरीत रति

संभोग के आसनों में सामान्य आसन न बाध जो दूसरा सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण आसन है वह विपरीत रति का है । इसमें पुरुष के स्थान पर स्त्री सक्रिय होती है । वह मायकवत आचरण करती है । संभोग की यह विधि अति प्राचीन और विश्व-व्यापिनी है । प्राचीन रोम कीक चीन जापान और भारत—सर्वत्र इसका प्रचलन था । आधुनिक काल में भी यह बहुत अधिक प्रचलित है । किते और उनके साधियों के मतानुसार अमरीका में ३५ प्रतिशत विवाहित एवं ४५ प्रतिशत विवाहित स्त्रियों द्वारा इसका प्रयोग होता है । भारतीय काम-शास्त्रों में भी इसकी माग्गता है ।

विपरीत रति के मनाविज्ञान पर विचार करते हुए किते ने इसके प्रयोग के तीन कारण बतसाए हैं —

(१) परम्परागत बीज-कृदियों में सुख स्थियों द्वारा इसका प्रयोग होता है ।

(२) परंपरागत बीज-कृदियों का तोड़ने की इच्छा रखनेवाली स्त्रियों द्वारा इसका प्रयोग होता है ।

(३) शारीरिक स्वर्णमता एवं सक्रियता की इच्छा रखनेवाली स्त्रियां द्वारा इसका प्रयोग होता है ।

नवित्त-काम्य में विपरीत-वर्णन

मकल-कवियों ने संभोग में विपरीत रति का विस्तृत सूत्र और रोचक वर्णन किया है । राधा की दृष्टि से यह सामान्य संभोग-वर्णन से कुछ ही कम होगा । विपरीत रति की इस बहुमता के निम्नलिखित कारण अनुमानित किए जा सकते हैं —

(१) इच्छा और राधा दोनों ही नव दयनि है । नित्य नवीनता की इच्छा उन्हें बार-बार इस आसन के प्रयोग के लिए प्रेरित करती है ।

(२) राधा और इच्छा दोनों ही काम-रसा विभारक हैं । दोनों ही अपनी विभिन्न काम-किम्याओं द्वारा एक-दूसरे को रिताता चाहते हैं । इसी कारण से राधा विपरीत आसन ग्रहण करती है ।

(३) अगुरु रूप्य राधा क संघर्षों का दर्शन एवं विवासीमता का आग्रह

सेना चाहते हैं। इसलिए वे उन्हें बार-बार विपरीत रति के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

(४) साम्प्रदायिक क्षेत्र में राधा की कृष्ण से अधिक महत्ता व्यक्त करने का यह एक मरत और सुमन साधन था। विपरीत संभोग करनेवाली स्त्री को ऐसे पुरुष पर महत्ता की परम्परागत धारणा से भी इसमें सहायता मिली होगी। राधा सभी कार्यों में कृष्ण से बढ़कर थी। फिर क्रिया में वे कैंठे पीछे रह जातीं। साथ-ही साथ सामान्य संभोगासनों में राधा की काम-क्रिया विदग्धता को व्यक्त करना कठिन था और उनकी गन्धिता भी नहीं दिखलाई जा सकती थी। विपरीत रति द्वारा दोनों ही बातें संभव हो जाती हैं। राधा को भी कृष्ण को सुरत में हराने का अश्मर मिल जाता है।

(५) संभोग का वजन करनेवाला अधिकतर पुरुष हुए हैं। यद्यपि उन्होंने राधा के संभोग का वर्णन किया है पर वे पुरुषाचरण को विस्मृत न कर सके। उन्होंने अपना तादात्म्य राधा की सखी से किया और पुरुषाचरण का आरोप राधा पर कर दिया। यह आरोप उन्होंने विपरीत रति द्वारा व्यक्त किया।

सामान्य रति के सामान ही विभिन्न कवियों ने विपरीत रति के विभिन्न वर्णों का वर्णन किया है त्रिकके आचार पर विपरीत रति का एक सन्तुर्भ चित्र बनाया जा सकता है। ऐसे चित्र में सर्वप्रथम विपरीत रति की तैयारी आती है। विपरीत रति की तैयारी

विपरीत रति के लिए राधा और कृष्ण दोनों ही विपरीत शृंगार करते हैं। कृष्ण राधा का आनूषण पहनकर अविद्या पहनते हैं तथा पू पट बाड़ते हैं। राधा भी कृष्ण का रूप बनाती हैं। इन नए रूपों को देख-बैलकर दोनों परस्पर मुग्ध होते हैं। (मूर २७१८, द्वितहरिबंध प्रबन्धम आदि)

विपरीत मान-बीड़ा

नायक नायिका का रूप धारण कर मान करता है। नायिका नायक बनकर मनाती है। इस प्रकार के मान-बीचन की रोचक बीड़ा होती है, मूर का एक पैसा ही वर्णन निम्नलिखित है—

भीकें श्याम मान तुम धारो।

तुम बैठे बुढ़ मान छानि मैं बैठयी जान तुम्हारो ॥

यह मन साथ बहुत ही मेर तुम बिनु कीन निहारै।

नापरि पिय-तनु अपनो सोजा बारबार निहार ॥

बनी मान भात बेदी छवि भैरनि यजन-रव।

मूर निरति पिय पू पट की छवि पुनरि न मानति अग ॥ (२७७१)

मान-मोचन के उपरोध या जैसे ही विपरीत की रीमारी हा जाने के बाद विपरीत रति होती है। इस रति-वचन में लज्जा सभी कवियों ने आत्मिक लज्जा का कुछ-वर्धन एव नीची मोचन बाध काम-कियामों का उल्लेख किया है। लज्जा समस्त भक्त-कवियों का यह प्रिय विषय रहा है। सूरदास ने एक वर्णन में अनेक अनुभावों का उल्लेख करते हुए दोनों की वृत्त जोड़ी की सप्रहृता की है। यह पद निम्नलिखित है —

स्वाम-स्वामा परम कुसल जोरी ।

मनौ लज्जा अंतर पर दामिनि की कला सहज मति मति मति भई श्री ।
 प्रसन्न आकुल बिबुधि स्वाम-मुख पर रहीं मानौ बल राहु सति घेरि लीर्यों ।
 चित्त मुख बाह बु बन करत सकुच तजि बसत-छत अंतर पिय मयन बीर्यों ।
 परत लज्जा-बुद्ध टप हवति आगत-बाल भई बेहाल रति-मोह भारी ।
 बिबु-वरति देत विषयेत असुत सुबत सूर विपरीत रति पीड प्यारी ॥

(२१५१)

आभूषणों की शक्ति और कटि-आसन

लज्जा और विधेयकर विपरीत रति की श्रृंखला करने की सबसे प्रभाव वाली विधि नामिका के आभूषणों की शक्ति के वर्णन द्वारा है। अनेक कवियों ने विपरीत रति की श्रृंखला इसी प्रकार की है। ऐसे ही उदाहरण निम्नलिखित हैं —

प्राणनाथ प्रेम-रूप सुखरी अनूप रासि रास में तरन रंग मय भेट आबनी ।
 प्रिया अकोर लाल की पियूष पुत्र भास की सरोज मंग जोबिका मनोस पुत्र साबिनी ॥
 शैव के समान काज हैत ही दुष्यार बद्ध दुन्दु छबीसी छंस सुद घट बाबिनी ।
 विदारिनी विधोय-रोय साधि के प्रमंग प्रोय अति-अति राधिके लिकु अ विराजिनी ॥

(हितनाथ स्वामी)

आभूषण एक वृत्त वर्णन बिहारी क विपरीत रति-वर्णन से कितना मिलता प्रसता है —

पट्टो मीन मजोर पीर किंकिय शोलाहस करी ।

बेहब मदन-सवन मन सुदत बस्तन रतिक बिहारी ॥

(बस्तन रतिक पृ० १६)

आभूषणों के इसी एक द्वारा कटि-आसन की श्रृंखला भी हो पाती है। फिर भी बस्तन रतिक ने कटि-आसन का स्पष्ट एवं अत्यंत कामोत्तेजक वर्णन किया है —

रति विपरीति मुरीति मुहाई । रसना हरदि कहत सुम्पाई ॥
 ठेस छबी छर हरी छबीली । लकि-लकि लहलहात धरबीली ॥
 सहज मुरति विपुरति प्रसकनि की । शोभा स्वैबकिनु भलकन की ।
 गोस-कपोल तंबोस लसक छबि । मय-मोतिन की ध्योति रही कबि ॥
 रति प्यारी-प्यारी कहर करति-मुरति विपरीति ॥
 रति-पति की मुरति भई लई बुहुनि मन प्रीति ॥
 मतबारी हारी नहीं प्यारी रति विपरीति ॥
 मुक्ति उर सों उर साइ के भिति प्रघर-रस मीति ॥

(ब्रह्मरस रसिक पृ० १६)

विपरीत रति की शोभा

विपरीत रति के वर्णनों में ही कवियों ने उसकी शोभा का भी वर्णन किया है । व्यास कवि ने हमकी शोभा ऐसी बतलाई है कि उसका वर्णन करते-करते खेप और बतुरानन की आयु ही समाप्त हुई जा रही है । उनका यह वर्णन निम्न लिखित पद में है —

बिहरत राधा कुंभ सती री ।
 लीस मुग्ध पंद ममयानिस लीतल सरद-सती री ॥
 करना रस बबनालय बल सिस मोहुन मग मती री ।
 विपरित रति बिहरति विप ऊपर प्रघर-मुपा बरती री ॥
 मानहुं बाबस शत्रु की घायम घन-बायिनि बिगली री ॥
 बप-लील-मुन लहज माधुरी रीक-रीम बरती री ॥
 यह छबि 'व्यास' सेत बतुरानन बरनत बीत सती री ॥

(व्यास १८२)

यदि-कवियों का विपरीत वर्णन यथेष्ट विस्तृत और प्रभावशाली हुआ है । उन्होंने अत्यन्त बलि और उरमाह के राधा-कुम्भ की विपरीत रति का स्वप्न और विचारमय वर्णन किया है ।

रतिरत्न

मनोव में रतिरत्न के महत्त्व पर हम पीछे खर्चा कर चुके हैं । मनोवैज्ञानिकों ने मनानुसार संभोग का रूप रसात्मक हुआ है । अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रति यह बचार्थ रस का रूप न लेता है । अपनी प्रेमिका के प्रति हमका रूप कीड़ात्मक होता है किन्तु कभी-कभी पुण्य का अपनी प्रेमिका पर अधिकार करने का प्रयत्न कीड़ात्मकता के बरकर रसात्मक ही जाता है । इन परिवर्तन का कारण रती की

मस्तिष्क की शक्ति है। अक्सर कुछ स्वभाव की स्त्रियों की यह अभिसाया होती है कि उनके साथ संभोग करने में पुरुष को अपने पीरय का सहारा लेना पड़े। पीरय का यह प्रदर्शन काम-वृद्धक होता है।

परिचय की अधिकता एवं समय बीतने पर स्त्रियाँ संभोग में सक्रिय भाग लेने समर्थी हैं। इस स्थिति में कभी कभी व्यापक रति में मागदाय होती है। यह रतिक्रिया धीरे-धीरे कीड़ात्मक रूप धारण कर लेती है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रतिरस है। इस रतिरस में नायक-नायिका एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। प्रेम के विभिन्न पाठ-प्रतिपाठ ही दोनों पक्षों की सेवा होती है। नायक-नायिका की संभोगेच्छा ही उनका उत्साह होता है। इस रतिरस में १ धिधिस हो जाए, क्यात हा जाए बड़ी पचासित होता है।

रतिरस के कारण

अन्त-कवियों ने नायक-नायिका के रतिरस के अनेक कारणों का उल्लेख किया है। कभी यह अंतर्गमनपति को पराजित करने के लिए होता है, तो कभी प्रिय से सामान्य रति में अपनी पराजय का बदला लेने के लिए नायिका रस का आयोजन करती है। कभी यह रस मान-जन होने पर होता है। इन कारणों से सम्बन्धित परम्यास मूल आदि अनेक कवियों में प्राप्त हैं।

रतिरस-सम्बन्ध

रतिरस की सम्बन्ध में दोनों पक्षों की चर्चा ही स्पष्ट है। दंत और मल, कटास कुछ आदि काम कीड़ा क बचपन ही संस्कार है जिसका रतिरस में प्रयोग होता है। रतिरस की सम्बन्ध का वर्धन मूल और म्यास ने बड़े उत्साह से किया है। नायिका के मूलक का मुठ-लेना से एक सुन्दर रूपक म्यास कवि ने दिया है। वे कहते हैं कि सुन्दर मन्द-मयन्द की चाल ही पर है। अक्षय हास चूँचट सन और सुसे हुए बाल ही काम-नृपति के चर्चर है। दोनों कुछ कठिन मुमट हैं मरन ही कबच और लट्टे ठलवार हैं। मीन सेत्र और नूपुर ही सेना के निधान हैं। मेव ही बाल हैं जो कि कब तक बिचे हुए हैं। नीर्दि बनूप हैं। दंत ही सक्ति मल ही मूल हैं। कुज रस है, मनी सारपी हैं। इनसे मुनजिन दोनों रतिरस कीर मुठ करते हैं।

(१८१-१८२)

रतिरस-वर्धन

रतिरस का वर्धन की प्रकार को रूपकों द्वारा किया गया है। प्रथम रूपक राम-राज्य मुठ का है। डॉ० वासुदेवराय अधवाल ने पद्यावत में 'राज-राम'

की व्याख्या करते हुए रावण का अर्थ पति तथा रामा का पत्नी लिखा है। भैया बिचार है कि इसका अर्थ रावण और राम ही सेना चाहिए जिसके युद्ध से पत्नी पति की रति का स्वरूप व्यंजित किया था। इस रत्न का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

राम रावण के जैसे रूप में सेज टूट गई। उसने लंका से सी (पति ने कटि ग्रहण कर संभोग किया)। कंचनगड़ टूट गया (पत्नी का कौमार्य भंग हो गया)। बितना श्रु गार किया था सब भुट गया। उसका मरमत्त यौवन चूर-चूर हो गया। दोनों के बीच में जो बिरह था वह प्राप्त भैकर भाग गया। अंध-अंध का सब श्रु गार भुट गया। माँग छट गई। केच लुप्त गए। कंचुकी के बंध चूर-चूर हो गए। हार टूट कर मोठी बिपार गए। बाहिनी और सुन्दर टूट्टे टूट गए। भुज बन्ध और कनार्ई के कर्मन टट गए। उम आतिघन से अंगों पर लया चंदन पुष्प मया। नाक की बेमर टूट गई और मस्तक का तिमक मिट गया। बाला ने यौवन के नवन वर्णन में पुष्पों का जो श्रु गार किया था पति ने हृदय में अरयजे की भाँति लगाकर सब भौड़ बाला (३१५)।

रतिरत्न का यह वर्णन मम नहीं है। इसमें मायक की केभि का ही संकेत है। नायिका की सक्रियता का उल्लेख नहीं है। वह रावण की भाँति पराबिभ है। इस रतिरत्न का वर्णन की दूनरी बिरोधता यह है कि यह प्रथम समागम के अवसर का है। ममत्त इनी कारण से कवि ने नायिका की सक्रिय नहीं दिखमाया हो।

आगे चलकर पदच्छतु के प्रथम में नायिका अधिक प्रयत्न हो गई है। वह रत्नमेन को रतिरत्न के लिए समकारती है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य का बयान करती हुई वह कहती है — 'हे प्रियतम मैं नहीं जानती कि तुम्हारी प्रतिष्ठा की देता कहाँ लिखी है। पर मुझे अपने पिता की मयथ है आज मुझ से बराह मुग होकर न जायेंगी। कल की भाँति नहीं है। आज रावण की भाँति लंघाम करो। मैंने भी श्रु गार का मंग्यदल भजा लिया है। हाथी की रति मेरे नाम है। प्यरा की कहलान मेरे अंजल में है। समुद्र की हिमोर मेरे मेनों में है। गह्वर का रूप मेरी नायिका में है। मुझ में मरी तुलना में कीन टिक सकना है। मेरा नाम गतो पद्मावती है। सब मुग मैंने जीन लिए है। तेरा जैना योयी जिसके योग्य हा उमर नाम लू जा कर बराबरी कर।

पद्मावती की इस चुनौती पर रत्नमेन योग और श्रु गार तथा शक्ति मभी पर अपना ममान अभिचार बतात हुए कहता है कि मैं रावण की भाँति तुम पर बिजय प्राप्त करूँगा। वह कहता है "मब जानते हैं मैं ऐसा जोगी हूँ जिसने बीर और श्रु गार दोनों रम जीन लिए हैं। वही मैं पचुदल के नामने रहता था

यह तुम्हारे पारस में जो काम का कटक-रस है उसका सामने हूँ । वहाँ कुपित होकर मैं बीरी बस का महान करता था यहाँ अप्रत रस पीने के लिए तुम्हारे अक्षर का अंजन करूँगा । वहाँ तो सडन से राजाओं को मारता था यहाँ तुम्हारी विरहाग्नि का संहार करूँगा । वहाँ तो केमरी बन कर ह्राषियों पर सपट्टा था यहाँ है कामिनी तू मेरे सामने रसा न लिए हा-हा करेयी । वहाँ तो कटक और स्फुंवावार का नाश करता था यहाँ तुम्हारे गू गार को खींचूँगा । वहाँ तो ह्राषियों के गंड स्वस को फड़ता था, यहाँ तुम्हारे कृष-कसयों पर ह्रास बनाऊँगा ।

पद्मावती और रत्नसेन इस प्रकार से राम-रावण रूपक से एक-दूसरे को मुझ के लिए समकारते हैं ।

गढ़-विजय-रूपक

रतिरस का दूसरा रूपक गढ़-विजय का है । स्त्री के काम-गढ़ को नायक जीतता है । जिस प्रकार एक राजा धनु से अपने गढ़ की रक्षा करता है वैसे ही स्त्री अपने मन की कामदेव से रक्षा करती है । पुरुष साम राम बड और भेद से इस गढ़ की पीठकर उसके पन का अपहरण करता है । इस गढ़-विजय का सर्वोत्तम रूपक मापुरी-बाषी मन्त्राण्ड है । चतुर गुण कृष्ण का नायिका के गढ़ में प्रवेश ही नहीं हो पा रहा है । उन्हींने उनकी सखी को मिसाया तथा नायिका के चरखों पर पीर रस दिए । नायिका पसीजी । प्रवेश का बखसर पाठे ही कृष्ण सभी प्रतिकूल संयोगों को अपने अनुकूल बनाने लगे । माम राम और भेद से प्रवेश कर कृष्ण बड का प्रयोग करते लगे -

प्रिया देत तन प्राब लीं अकर बसायी मिन ।

अब तर लागी काम की, कुटिल गई तब तेन ॥

करके लगे ते ठीर कलमलि जटि काम के मितन को न कोऊ डिय प्राय है

बीठ हूँ गए हैं लोग कामि कछु मानत है तब मननव अघिठ रितायी है ।

कोऊ सड कोऊ बंड बंधन तो बाँधि राखे नृपति अनय बल आवनी बनारयो है ।

काहु तो निजाप कोनी काहु को तनीस बीनी कोऊ बाँहु सोलि बाल मुषस बसायी है ।

नियट बान गढ़ प्रिया तन, केहि बिधि कियो प्रवेश ।

अकर देत अकर करतो बडुयी अनन करेय ॥

(मापुरीबाणी पृ० १७-१८)

रतिरस-वर्जन

अपूर्व रूपकों द्वारा तथा सामान्य रूप से भी रतिरस का कवियों ने वर्जन किया है । कुछ कवियों ने ऊ की उड़ानें मरी हैं । बल्लभ रतिक ने तो उरारण कपी

बुझी से दोस बलाने की बल्यना की है -

भारतु बँडि उरख दुरख गोलनि-बोमनि मँत ॥ (पृ० ४४)

स्वाम कवि ने मल-बानों के प्रहार का उल्लेख किया है। मूर ने भीर भी पबिक बिल्लत बर्धन किया है। उनका एक ऐसा ही पद निम्नलिखित है -

बीरु राबत रतिरन धीर ।

महा मुनड प्रयठे भूतत बुधमानु-मुता बलबीर ॥

भीह धनुय बड़ाइ बरस्पद, सजे कबख तगु भीर ॥

गुन स धान निमेव पटत नहि, छुटे कटछछनि तीर ॥

नख मेजा धाकृत डर सार्य मकु न मानत धीर ॥

मुरली बरनि शरि घापुब लौ गड़े मुमुन भड भीर ॥

प्रम सपुड छानि मरबाबा बर्मनि मिसे तजि तीर ॥

करत बिहार कुहू बिधि से मनु सँबित मुषा छरीर ।

घीत बस बोबन बाह रबिर रचि बंधन मिति कभ भीर ॥

मुरदास स्वामी अस प्यारी, बिहरत कु ब कुटीर ॥ (२६०४)

विपरीत रतिरन

सामान्य संभोग के अतिरिक्त विपरीत संभोग में भी रतिरन का उल्लेख उपलब्ध है। इन विपरीत रतिरन वर्णनों में नायिका की क्रिया विरग्वता प्रदर्शित की गई है। ये वर्णन भी पूर्व वर्णनों के ही समान हैं।

बय-बराबय

रतिरन में दोनों ही बीर एक से एक बड़कर हैं। किमुकी विजय हुई और किमुकी नहीं हुई, यह कहना बड़ा कठिन है। कही पर कामदेव की पराजय का उल्लेख है (सूर ३०७६ बादि) और कही उल्लेख की। उल्लेख की हार के एक पद में कवि कहता है कि नयकर नतिपुड में राजा ने पीन पयोधर हार निर्जब आधिं मे बनेक प्रहार कर उल्लेख को बँडिन किया और अंत में अपना रास बना कर छोड़ दिया -

घानु अति कीये स्यावा-स्वाम ।

बीर अत बुम्बाबन बीरु, करत मुरत-सँपाव ॥

बननि बँबुकि-बर्म मुडुड कुब बर्मनि, लड करगत ।

बंध-बंध बनुरंग सँग (बर) मूपन रब-मु बनि बास ॥

गौर स्याम बागत बने निमु बिरबाबलि प्रतिपाल ।

बंधत बंधन बुजा-पनाटा (छबि)केत बमर बिकराल ॥

भीह-यनुय से छूटत बहू दिनि मोबन-बाग बिसारे ।

बदत हुरय-कपादनि निरैय, सोबर उरज स्यारे ॥

इसल-सक्ति, लस-सुमनि बरपति अबर कपोल बिहारै ।
 पूँयद, मुषी मुकुट, टोपा, कबची, कङ्कण मये ग्यारे ॥
 बीती नागरि, हारे मोहन, मुन संकट में घरे ।
 पीन पयोपर, हार निरतक प्रहार दिये बहुतेरे ॥
 प्रलय-कोष बोसी कंतक मपराम किये तैं मेरे ।
 बरम उहार व्यास की स्वामिनि छाँड़ि दिये करि धैरे ॥

(व्यास, ५७८)

बुद्ध बरसों में कृष्ण की विजय का उत्सव किया है तो बुद्ध ने बानों ही की विजय का संकेत किया है । दोनों की इस विजय का भक्ति सफल पूर्व मानन्दराशिनी रति है ।

(ग) सुरतांत

जिस प्रकार संभोग का प्रारंभ संभोग-पूर्व क्रियाओं के द्वारा होता है वही प्रकार संभोग की समाप्ति सुरतांत से होती है । इसका अर्थवत् संभोगवर्षन चिन्तना, मुख और आनन्द की अनुभूति आती है । इन सुरतांत के दो उपांग हैं —

बाह्य अंग—इसके अंतर्गत लफन संभोग की अभिव्यक्ति करनेवाले समस्त रति-विह्वारि भाते हैं ।

आंतरिक अंग—इसमें वपति द्वारा अनुभूत मुख अंतोप एवं प्रेम-भूति का उत्सव होता है ।

भक्त कवियों ने सुरतांत के इन बानों अंगों का उल्लेख किया है ।

बाह्य अंग

सुरतांत के बाह्य अंगों में रति-क्रिया को व्यक्त करनेवाले एवं उसकी लफनता की सूचना देनेवाले सभी संकेत भाते हैं । इनमें से प्रमुख बरसों का मूढित होना श्रुतार का बिलरना, प्रसन्न लस-वत-सतादि रति-व्यंग आदि भाते हैं । इनके द्वारा ही परिजन सकल रति का अनुमान करते हैं । इन्हें देखकर मस्तिष्क का भाग्य की भ्रांति करना करती है, और उसे विद्वान्ती भी है ।

सुरतांत के बरसों में बरसों के मूढित होने का वर्णन कृष्ण-काम्य में बहुत अधिक है । अन्य माहिरय में इसका अभाव है । इन वर्णन में अंधियारा के बरसों के टूटने का भी उल्लेख है । नायक के बरसों में उसकी पाप के लटपाने का ही वर्णन मिलता है । कभी-कभी प्राण-जान की हड़बड़ी में नायक-नायिका के बरस बदल भी जाते हैं । बरसों के बदलने का ऐसा ही एक संकेत भी रामोवर स्वामी की निम्नलिखित पंक्तियों में है —

नवम नास षोडश प्रातः आये ।

घ शनि पर पुत्र द्विये क्षुब्ध छवि मन निजा प्रपुरागे ।

बीस-बीस पद पतये भुवध आलस कुत रस पत्ने ॥ घादि

वर्षों के मूढित होने साथ-साथ कुछ आभूषणों के टूटने का वर्णन भी मुरठांत में होता है । ये आभूषण अधिकतर माता और छत्र बंटिका हैं । माता टूटने का अस्मैस बहुत अधिक है ।

मुरठांत के प्रदर्शक रति-बिह्वो व अंतर्गत आतिगन चूबन मख-ईत-सत और प्रह्वन के बिह्व आदि आते हैं । इनके अतिरिक्त जाबक और पीक बिह्वों द्वारा भी उभाय का संकेत होता है । मुरठांत का एक ऐसा ही उदाहरण निम्न सिद्धि है —

घानु पिय के संग जाभी रात ।

मुरति न चोरी कु अरि किचोरी बीन्हू परस पात ॥

पुनक्ति कंठित पातनि संकित बात कहत तुतरात ।

जाबक बीक मञ्जी रंग रंजित, सारी स्वेत चुचात ॥

छूटी बिहुर बंटिका उरबनि पर लटकति सर-पात ।

मानहुं गिरबर कंचन अमर, मेघ घटा पुरबात ॥

अडित घबर बीक पडनि पर, लीचन जलत बँनात ।

हलत घकोर रीत चित्त चोरत रंग मोर ऐंझात ॥

कहा-कहा रति बरनी बँमच, फूनी रंग न भात ।

वेगि वेचाउ बहुरि बहु कौतिक ध्यात बात प्रकृतात ॥ (ध्याव, ३१५)

रति-बीबिस्य आसस्य और प्रस्वर का भी इसी प्रसंग में वर्णन हुआ है ।

यह वर्णन सभी कवियों ने किया है । आसस्य ने एक ऐसे ही वर्णन में सारी कहती है 'यह कौन सी अनाड़ी जान पड़ी है । जैसे-जैसे रावेरा हाता है वैसे ही जाबर जानते पाठे हा । अब आसस्य तजो । राति बीन पर । महाबापीकार हरिभ्यास देवाचार्य का यह पर निम्नसिद्धि है —

भारत तत्रिये जाउ बनि सभी भुपहरी होन ।

रवों-रवों बीड़त तानि बट तानि परी यह कौन ॥

×

×

×

परी बनि कौन घनोरी तानि ।

रवों-रवो भोर होत है रवों-रवों पीड़त हो बट तानि ॥

भारत तत्रनु अरनई उरई नई निजा रति तानि ।

धी हरि प्रिया प्रानपन बीचन सकल सुखन की तानि ॥

केसि के उपरान्त मायक-भाविका अपना पुन श्रुमार करते हैं। कभी मायक-भाविका का श्रुमार करता है तो कभी भाविका स्वयं ही अपना श्रुमार करती है। कभी-कभी गवियाँ भी रामा का श्रुमार करती हैं। मुरदास ने रामा द्वारा स्वयं का श्रुमार करते हुए बतलाया है कि मुरत-अंगाम में प्रयुक्त अपने विभिन्न अर्थों को वे भक्ति-भक्ति के उपहार देती हैं —

बहुति किरि रामा तबति श्रुमार ।
 मनहुँ वैति बहिराबनि अर्थ, रम जोति मुरत अपार ॥
 कटि तड मुमठहि वैति रसन पड मुब मुबन, उर हार ।
 कर कचन काजर, नकमेसरि, वीमही तिलक तिलार ॥
 बीरा बिहीति वैति अपरनि को ताम्बुळ छहे प्रहार ।
 मुरदास प्रभु के कु बिमुळ भए, बरिबति कापर बार ॥

सांसारिक भव

(सूर, २८०१)

मुरतांत के सांसारिक अर्थों के अंतर्गत रसयान्त्र की मस्ती, मुक और लंतीय तथा प्रेम की प्रयादृष्टा का उल्लेख होता है। इन उल्लेखों में कृष्ण रामा पर रीसते हैं तथा रामा कृष्ण पर रीसती हैं। कृष्ण रामा पर रीसकर समस्त उपवासों को उनके अंशों पर स्योछावर कर डालते हैं। (सूर २७५५)। रामा की कृष्ण ऐसे भिन्न को कृष्ण की भाँति रखती हैं। कभी-कभी मुरतांत में रति-अंतोव से भर कर दोनों एक-दूसरे को अंक में भर कर आनन्दानुभूति करते हैं। सूर का एक पैसा ही यह निम्नलिखित है

हरि हूँति मामिनी उर लाह ।

मुरत अस्तपोपाल रोम, जानि अति मुसदाह ॥

हरवि प्यारी अ क भदि, पिय रही कठ लपाह ।

हाव-भाव, कटावत लोचन कोक-कला मुभाह ॥

वैकि जाला अतिहि कोमल कुल निरति मुमुदाह ।

सूर प्रभु रति-अनि के मायक राबिदा समुदाह ॥ (सूर १३०८)

(घ) शीङ्ग-विभास

समीप-श्रुमार विभिन्न कीड़ा विभास के द्वारा जिय नबीन रूप पारस करता रहता है। मायक और भाविका अपने-अपनी मन्त्रियों के माय निष्ठ नबीन कीड़ाएँ करते रहते हैं। इन कीड़ाका का विस्तार केवल कृष्ण-बाहिर्य में ही हुआ है। ये कीड़ाएँ पुष्पों में दर्पण दिगाने में मुरली की छीना-अपटी में और बीन-मिचोनी में होती हैं। मुरली की छीना-अपटी उद्ये बबाना छीवने का केन

नबल साल बोड प्रातहि जाये ।

घ घनि वर मुख दिपै सुमल छबि नेन निशा घनुरागे ।

नील-नील पद पसटे भूषण धामस सुत रस पागे ॥ घादि

वस्त्रों के नृदित होने साथ-साथ कुछ आभूषणों के टूटने का वर्णन भी सुरदास में होता है । ये आभूषण अधिकतर माता और कुछ बेटिका हैं । माता टूटने का उल्लेख बहुत अधिक है ।

सुरदास के प्रदर्शक रति-विह्वलों के अंतर्गत आतिथन-बुवन नख-बंत-क्षत और प्रह्वन के विह्वल जादि आठे हैं । इनके अतिरिक्त जावक और पीक विह्वलों द्वारा भी समाव का संकेत हाठा है । सुरदास का एक एसा ही उदाहरण निम्न लिखित है —

घामु पिय के संग जामी रात ।

कुरति न बोरी कु अरि कितोरी चौगुँ परस गात ॥

पुसकित बंधित गातनि संछिद्य बात कहुत सुतरात ।

जावक पीक मछी रंग रजित सारी स्थेत चुचात ॥

छूटी चिहुर बंत्रिका जरजनि पर लटकति सर-पात ।

मानहुँ बिरबर कंचन अमर, मेघ घटा घुरबात ॥

बंधित धपर पीक पंडनि वर, लोचन अलस बंजात ।

हुंसत धकीर रेत बित जोरत धय मोर पेंझात ॥

कहा-कहा रति बरनी बंजव फूली संग न जात ।

वेगि बैसाड बहुरि बहु नीतिक घ्यास बात धकुनात ॥ (ध्यास, ३१८)

रति रैपिस्य आसस्य और प्रस्वेद का भी इती प्रमंन में वर्णन हुआ है ।

यह वर्णन सभी कवियों ने किया है । आसस्य के एक ऐसे ही वर्णन में राधा कहती है 'यह कौन मी जनोणी जान पड़ी है । जैसे-जैत सबेरा होगा है बैसे ही बादर ताजते पाठे हा । जब आसस्य तयो । राधि बीत गई । महाबापीकार हरिध्यास देवाचार्य का यह पद निम्नलिखित है —

आरत तजिये जाडँ बलि लगी भुच्छरी होन ।

र्यों-र्यों बोड़त तानि बड जानि परी यह कौन ॥

×

×

×

बरी बलि कौन धनोसी जानि ।

र्यों-र्यों जोर होत है र्यों-र्यों बोड़त हो पड तानि ॥

आरत तजहु अरनई उरई गई निता रति जानि ।

धी हरि प्रिया प्रानचन जीवन सकल मुसल की तानि ॥

कैमि के उपरोक्त नायक-नायिका अपना पुनः श्रु पार करते हैं। कभी नायक नायिका का श्रु पार करता है तो कभी नायिका स्वयं ही अपना श्रु पार करती है। कभी-कभी लक्ष्मी भी राधा का श्रु पार करती है। सुरदास ने राधा द्वारा स्वयं का श्रु पार करते हुए बतलाया है कि सुरत-संग्राम में प्रयुक्त अपने विविध बंधों को वे नाति-नाति क उपहार देती हैं —

शुद्धि किंकि राधा समति श्रु पार ।

मरु हेति पहिरावनि अंग रम नीति सुरत अपार ॥

कति छत सुपहहि हेति रसन वट मुन भूषण, पर हार ।

कर कंकन काजर नखोसति, बीन्ही तिलक भितार ॥

बीरा विहीति हेति अपारनि की समुच्च छड़े प्रहार ।

सुररत्न श्रु के श्रु विभुच भण, बीचति कायर बार ॥

सांसारिक धन

(सूर, १००१)

सुरदास के सांसारिक बंधों के संतर्पित राधासंग की यस्ती कुछ बीर लक्ष्य तथा प्रेम की प्रशंसा का प्रतीक होता है। इन प्रतीकों में कृष्ण राधा पर रीझते हैं तथा राधा कृष्ण पर पीसती है। कृष्ण राधा पर रीझकर समस्त उपधानों को उनके अधीन पर स्वीकार कर सकते हैं। (सूर २७२२)। राधा भी कृष्ण ऐसे प्रिय को कृष्ण की पति रखती है। कभी-कभी सुरदास में रति-संयोग से भर कर दोनों एक-दूसरे को बंध में भर कर नाशवानुभूति करते हैं। सूर का एक देवा ही यह निम्नलिखित है

हरि हीति भासिनी उर साह ।

मुता भक्तबोनाल रीमे, जानि प्रति मुकदाह ॥

हरिनि प्यारी य क हरि, निर रही कंठ सपाह ।

हाक-भाव, कटाक लोचन, कोक-कला मुनाह ॥

हेति बाला प्रतिहि कोमल, मुन निरति मुमुकाह ।

सूर प्रभु रति-वति के नामक, रायिका लपुहाह ॥ (सूर ११०६)

(घ) क्रीड़ा-विस्तार

संयोग-श्रु पार विविध क्रीड़ा-विस्तार के द्वारा निरवर्तन रूप प्राप्त करता रहता है। नामक बीर नायिका अपने-अपनी लक्ष्मी के साथ निरवर्तन क्रीड़ा करते रहते हैं। इन क्रीड़ाओं का विस्तार कबल कृष्ण-नायिका में ही हुआ है। वे क्रीड़ाएँ पूर्वी से एक दिगामे में सुरती की क्षीमा-अपरी में ही आनमिषी में हीनी है। सुरती की क्षीमा-अपरी उसे बतलाती है।

शृंगार का एक पर उदाहरणार्थ नीचे दिया जा रहा है। इसमें
की शीका का भी उल्लेख है —

मुरली लई कर तें छीनि ।

ता समय छबि कही जाति म, चतुर नारि नबीन ॥

कहुति पुनि-पुनि स्याम घामे मोहि बहुत सिखाइ ।

मुरति पर मुल जोरि बोक, भरत-परत बजाइ ॥

हुण्य मुरत नाब छछरत प्यारि रिस्त करि गात ।

बार बारहि अबर परि-परि बजति नहि अकुलात ॥

दिया-भुवन स्याम पहिरत स्याम भुवन नारि ।

सूर प्रभु करि मान बैठे तिय करति मनुहारि ॥

जलश्रीका

(सूर, २०६२)

संभोग-श्रीका-विस्तार में जल-श्रीका अति महत्वपूर्ण है। इस के जीवन में यमुना का अवलंब महत्वपूर्ण स्थान है और ब्रजवासियों की अनेकानेक शिकाएँ यमुना को नग्न मान कर हुई हैं। यमुना-पुमिन पर ही रास की रचना हुई थी और यमुना के जल में ही अनेक बार कृष्ण और मोपियों ने जल-श्रीका की होयी। समय-समय कृष्ण-कवियों ने विविध रूपों में जल-श्रीका का उल्लेख किया है।

जल-श्रीका प्रथम में माधुरीजी ने यमुना के अन्तर ही एक महल की कल्पना कर ली है जिसमें जाकर राधा-कृष्ण केति करते हैं। इसी प्रसंग में उन्होंने लोका-विहार का भी उल्लेख किया है। बलराम रमिक ने यमुना के स्थान पर लरोबर में जल-श्रीका का वर्णन किया है। मूरदास ने यमुना में ही स्वाभाविक जल-श्रीका का उल्लेख किया है जिसमें राधा-कृष्ण और नायिका जल से खेल करती हैं। इनके उल्लेख कृष्ण-आहित्य में सर्वत्र उपलब्ध हैं।

हिडोल-श्रीका

संभोग-शृंगार में दूसरी महत्वपूर्ण शीका हिडोल-श्रीका है। इस शीका में राधा-कृष्ण के मूला मूलने का तथा संभोग का भी वर्णन है।

हिडोल व सामान्य वर्णन में राधा-कृष्ण का मूल पर बैठकर मूलना है। मूरदास ने इसका एक प्रसंग में शिवकवियों द्वारा दिव्य हिडोल के निमग्न का उल्लेख किया है।

हिडोल के शृंगारिक वर्णन में मूला मूलने हुए नायक-नायिका के कामोद्दे-वम होने का उल्लेख होता है। कृष्ण बसिन बिग जाने पर भी श्रुवन-नारिरंभण करते हैं और कंचुकी तथा भीति क बंद गोलने लपटे हैं। हिडोल की यह शीका

बर्षा श्रु और होसी पर होती है। श्रु और व्यास आदि कवियों ने इसका वर्णन किया है।

होसी

होसी का व्याहार भारतीय शोधारों में सबसे रगीत रोचक और कामो-रोचक है। इसमें मर्षाबा के समस्त बभन टूट जाते हैं। उम्मतता का साम्राज्य-सा छप्पा रहता है। कृष्ण अर्द्धों ने भी इस होसी का बड़े उत्साह से वर्णन किया है। बसंत से ही इसकी संघारियां होने लगती हैं। सर्वत्र रंग ही रंग दृष्टिगोचर होता है। घट-मकड़ में हार बस्त्र आदि फट जाते हैं। जानम्व का तायर उमड़ जाता है। सब रस-मग्न हो जाते हैं। कोई बुरा नहीं मानता है। होसी का एक ऐसा ही वर्णन श्रु मतपास द्वारा किया गया है —

होरी की है घोसक जिनि कोऊ रिस मानें ।
 काहु की हार तोरें, काहु की चुरी चोरें,
 काहु की चुनी लें जार्न सब प्रधातक;
 काहु की विचर्याई नेत्रनि ठकि ठारं ॥
 काहु की गकबेसरि परदि काहु की बोली
 काहु की मेली गढ़े सब कंठठरी मरकि धारें ।
 'सुंघनदाध' मनु इहि विधि जातत,
 गिरबर पिय सब रंगु जान (७२)

बसन्त रसिक ने होसी के वर्णन में राधा कृष्ण के श्रु पार का और बीनों के संभोष का वर्णन किया है। मायुरोजी ने राधा की सन्निधी द्वारा कृष्ण के विचरिण श्रु पार का राधा मर्षाबा के पाल उन्हें उनकी बन् बजाकर से जाने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार के हास-परिहास का वर्णन श्रु ने भी किया है।
 धन्य श्रीज्ञाण

इन मसुम कीड़ाओं के अतिरिक्त राम नुरप बलय तुसीया बाग फूल श्रु पार आदि अनेक अलग-अलग कीड़ा-किसास व हैं। ऐसे सभी अक्षरों का राधा-कृष्ण भरपूर उपयोग करते हैं। गमी कृष्ण-अर्द्धों ने इनके वर्णन किए हैं।

(क) समोष का साहित्य-शास्त्रीय स्वरूप

साहित्य-शास्त्रियों ने समोष श्रु पार के भेद-अक्षरों की मचना अर्धमध बन् लाई है। फिर भी विचरिण के विभिन्न कवों का आधार लेकर उनके अन्तर होने वाले संभोषों की पूर्व-राधाभन्तर संभोष मानाभन्तर समोष प्रबामानन्तर समोष

धीरे कृतकविप्रसंगान्तर समीप माना है। इनमें कम से रात्रान्विता बढ़ती जाती है।

गौड़ीय वैष्णव साहित्य-शास्त्रियों ने उपर्युक्त भक्तियों का विभिन्न नामों से स्वीकृत किया है। उन्होंने पूर्वराधान्तर समीप को संक्षिप्त संभोग कहा है। प्रथम मिलन के कारण इसमें मन्त्रा विधेय होती है अतएव इसे संक्षिप्त संभोग की संज्ञा दी गई है। इस मिलन के अवसर और स्वतः रास श्रीकृष्ण यात्री-दोहन गोष्ठ इत्यादि हैं। सामान्यतर समीप का संकीर्ण संभोग कहा जाता है। इसमें मान के कारण उपर्युक्त दुःख की स्मृति घेय रह जाती है। अतः मिलन का आनन्द पूर्ण नहीं होता है। इसके अवसर और स्वतः रास कलक्रीड़ा कुंड वाम बंधी चोरी लोका-विहार आदि हैं। प्रवास के अनन्तर होनेवाले संभोग को समुद्रमान संभोग कहते हैं। यह मिलन स्वप्न या कुदसोत्र में होता है। वैष्णव-साहित्य में कदम विप्रसंगान्तर समीप का रूप प्राप्त नहीं है। कदम स्थिति की स्वीकृति न होने के कारण यह संभोग भी नहीं है। इसके स्थान पर वैष्णव साहित्य-शास्त्रियों ने 'प्रेम-वैशिष्य' की दशा को स्वीकार करके उसके बाद होनेवाले संभोग को सम्पन्न की संज्ञा दी है। इसके अवसर मुद्रात दर्शन डोल होती बसंत घृत-श्रीकृष्ण श्रुतन इत्यादि हैं।

हिन्दी मठ-कवियों ने सामान्यतः गौड़ीय-वैष्णव-साहित्य-शास्त्र का प्राधार नहीं लिया है। उनकी रचनाएँ इस दृष्टि से नहीं की गई हैं। उन्होंने स्वाभाविक रूप से विप्रसंग का वर्णन किया है। इन वर्णनों के बीच-बीच में स्वाभाविक डम से संभावना भी वर्णन आता है। अतएव उपर्युक्त रूप भक्ति-श्रुति में मिल पाएँगे पर इस ओर उनका झुकाव नहीं था।

जानासमी और रामासमी घांटा में श्रुति के इन रूपों का अभाव है। सुफी घांटा में कदम संक्षिप्त और समुद्रमान संभोग ही प्राप्त हैं। मान और प्रेम-वैशिष्य का अभाव के कारण हम घांटा में संकीर्ण और सम्पन्न संभोग का वर्णन नहीं है।

संक्षिप्त संभोग का वर्णन पद्मावत में पद्मावती रत्नसेन भेंट लंड और पद्मकुटु वर्णन में चित्रावती में बीजावती-विवाह गद चित्रावती-विवाह गद और बीजावती नवन गद में तथा मधुमावती में मधुमावती जानी भाव लंड इत्यादि गद और वेमा-इत्यादि गद में है।

समुद्रमान संभोग का वर्णन हम साहित्य में कम है क्योंकि कुछ प्रकाश हम साहित्य में मानवती के संबंध में अपना जग्यत्र नहीं है। इसलिये चित्तौड़ आग मल गद ८ अन्तर्गत नामवती रत्नसेन का मिलन समुद्रमान संभोग का वर्णन है।

इसका अत्यल्प और सांकेतिक वर्णन ही कवि ने किया है। समृद्धिमान संभोग का एक अन्य सबसे बंधन-मोक्ष लक्ष में है। असाठहीन के यहाँ से मुक्त होकर पद्मा-वती-रत्नसेन की क्रीड़ा इसीके अन्तर्गत आएगी। इस संभोग का भी संकेत मात्र है।

कृष्ण-साहित्य इतना विघ्नास है और कृष्ण की भीभाएँ इतनी विविध हैं कि उनमें संभोग के सभी शास्त्रीय रूप मिल सकते हैं। किन्तु इन साहित्य के अन्वेषकों से ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्खों ने संभोग-वर्णन में साहित्य-शास्त्रीय आधार न लेकर काय-शास्त्रीय आधार लिया है।

कृष्ण-साहित्य का अधिकतर समाग-वर्णन मस्तिष्क समाग के अन्तर्गत आया। यथार्थ में मान और प्रेम-वैचित्र्य तथा प्रवास के कुछ पर्वों का छोड़कर दोष सभी पद मस्तिष्क संभोग के ही हैं। प्रथम समागम गाबाहुन गाबड़ी सीता आदि प्रसंग इसीके अन्तर्गत आएँगे। किर्धार-किर्धोरी की निरव-सीमा की यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से इसी भेद के अन्तर्गत स्थान देना होगा किन्तु उस संभोग में जो निश्चिन्तता अभावता एवं तन्मयता है वह उस मस्तिष्क संभोग की पत्नी से ऊपर उठनेवासी है। यथार्थ में राधापस्तन सती आदि सप्रथमों के मित्य संभोग को संभोग के शास्त्रीय भवों से पत्रे ही रत्नता पड़ेगा। वह तो एक 'अलक्ष संभोग' है।

मान की यात्राएँ बस्तन-मन्त्रबाय म ही अधिकतर प्राप्त हैं और इसी कारण संभोग संभोग इस साहित्य में बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। अष्टछाप के कवियों ने राधासीमा रामसीमा मोकाबिहार सोसा जम तथा स्नान श्रीका कुंज-सीता आदि में इसका वर्णन किया है। इस संभोग-वर्णन में मान-मनोबल हाम-परिहास सुख कण्ठ बेरा-परिचयन आदि अनेक क्रीड़ाएँ आती हैं।

समृद्धिमान संभाव मात्रा में प्रथम क्रम है। कृष्ण के प्रथम के बाद कौटिल्यो से मिलने का वर्णन अष्टछापी कवियों में ही है। यह भेंट कृदोष में हुई थी। इस भेंट में शू गारिकना क्रम प्रिय-वर्णन प्रथम विद्वान्ता अधिक है।

समृद्धिमान संभोग का दूसरा रूप स्यपन-मवाग में है। प्रिय की स्मृति के फलस्वरूप नायिका स्वप्न में प्रिय का दर्शन करती है। इसका अरदल उल्लेख हुआ है।

कृष्ण-साहित्य में सम्पन्न संभोग के अनेक रूप हैं पर इसका विद्वान् वर्णन नहीं है। अनुराग में प्रेम वैचित्र्य की स्थिति अल्पकालिक ही हो सकती है। इसीमें इसका विषय विस्तार संभव नहीं है। बगल-सीमा हामी-नोया राम-सीता मूमन निहा वीर पूर्णता आदि के प्रसंग इनके हैं।

सब कुछ होते हुए भी वीसा कि पहले कहा जा चुका है, संभोग का साहिरय-शास्त्रीय रूप महत्त्वपूर्ण नहीं है। जो कुछ भी संभोग-वर्षण हुआ है वह हमसे स्वतन्त्र है। उसमें काम की अबाध धारा बहती है। उसमें राग की संभी रता भावना की तीव्रता और वासना की अविमयता है। संपूर्ण संभोग-वर्षण जति सफल विविध और उत्कृष्ट है।

नवम अध्याय

भक्ति-श्रृ गार में विप्रलम्भ-वर्णन

हिन्दी भक्ति-श्रृ गार में विप्रलम्भ अपनी उत्कृष्टता और विस्तार दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। भक्ति-श्रृ गार के नाम से अधिकतर इसीका हिन्दी जगत में सम्बन्ध हुआ है। यह विप्रलम्भ पूर्वराग मान प्रवास और कश्च विप्रलम्भ इन चार रूपों में व्यक्त हुआ है। प्रस्तुत सम्बन्ध में इस श्रृ गार का इन रंगों के अन्तर्गत विश्लेषणसूत्र सम्बन्ध न कर भक्ति की चार प्रमुख शाखाओं के अन्तर्गत संपूर्ण विप्रलम्भ का सम्बन्ध किया जाएगा। यही मुनिपा जनक और विप्रलम्भ के संक्षिप्त रूप को अधिकव्यक्त करनेवासा होगा।

मानामयी छासा

मानामयी छासा में जगन्नाथ-श्रृ गार में विप्रलम्भ ही महत्वपूर्ण है। इस विप्रलम्भ में भी विरह-वेदना का ही विशेष चित्रण है। कबीरदास ने पूरुषराग, मान और प्रवास का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। इनके संकेत ही यथ-तथ मिल पाते हैं।

पूर्वराग

भक्त का ईश्वर से प्रेम युद्ध-रूपा से होता है। इस रूप में रंगों का पूर्व राग युष्-व्यवस्था द्वारा माना जाएगा। त्रिभ के ये युष्-रक्तन जबका युष् के ये यत्न युष्मिरी तीर की भाँति होते हैं जोकि संत के हृदय में पाव कर बैठे हैं। इस पूर्वराग की पीड़ा की वही जानता है जो कि युष्क मोपी होता है।

संतों के प्रेम का विकास सामान्य पूर्वराग से नहीं होता है। वह तो युष्-रूपा से आत्म-दान के किसी एक रूप में एकाएक प्रकटित हो उठता है। यह सम्बंध एक दम से पति-पत्नी रूप में होता है। प्रिय का आगमन यत्रि रूप में होता है। इसीलिए इन साहित्य में युष् पूर्वराग का अभाव मानना चाहिए।

इस साहित्य में मान का युष् अभाव है।

इस छाना में प्रेम का जो स्वरूप स्वीकृत है उसमें विरह की स्थिति स्वाभाविक है। निगुन ब्रह्म साधना की अरमावस्था में ही प्राप्त हो सकता है। साधना की यह उच्च स्थिति शक्ति ही हो सकती है। अतः इसमें मिथ्या भी शक्ति ही होना और उसके बाद विरह ही विरह रह जाता है। इस विरह की अभिव्यक्ति प्रयोग क अन्तगत की जा सकती है पर वह बहुत समीचीन नहीं है। यह विरह की वेदना बियोगजन्य है बस इतना ही कहा जा सकता है।

कबीर ने विरह की स्थितियों में कही-नही प्रवास का संकेत अवश्य किया है। प्रवास का सुन्दर संकेत निम्नलिखित दोहे में है —

विरहनि कभी पय सिरि पयो बूझै पाइ ।

एक सबर कह पीय का कबब मिलैये पाइ ॥

(कबीर रामावामी विरह की छंद ५)

विरह के अग्य उत्सवों में विरह की तीव्र पीड़ा एवं काम की अनेक दशाओं की अभिव्यक्ति है। निगुन ब्रह्म क प्रति होते हुए भी यह शक्ति स्वाभाविक एवं श्रुतिगार से परिपूर्ण है। इस विरह में कबीर का गारी रूप अत्यन्त सुगरित हुआ है।

विरह की स्थिति में हृदयता बोधता एवं चञ्चलता नष्ट हो गई है। इस स्थिति में न दिन में दिन न रात में सुष विपत्ता है। विरह स्वप्न में भी पीड़ित करना रहता है। नादिका प्रिय से कूती है तुम्हारे मिलने के लिए मन तरंगता है। मैं किन्तु किन्तों से बात जोड़ रही हूँ। तुम्हारे दर्शन के बिना मन को विषाम नहीं है। विरह में गद्य की तीव्र अभिमाया उठती है। वह प्रिय से कहती है 'प्रिय कब तुम आकर मुझमें अंग से अंग समा कर मिलोगे मेरी अभिमाया पूरी कराये।' अपनी पीड़ा की उपमा आत्म की प्यास से देनी हुई वह कहती है 'प्रिय प्रवार आत्म स्थिति नदय क पल का प्यासा होना है जैसे ही मैं भी प्रिय-दरंग की व्याकुल दिन रात उदास रहनी हूँ। विरहियों के शरीर में विरहाग्नि का पत्र प्रकटित रहता है। उनका शरीर शरीर जर्जर हो जाता है। प्रिय का चंच निहारने-निहारत उगरी आँसों में छिड़ी पड़ गई है प्रिय का नाम पुकारने-पुकारते बीच में आना पड़ गया है। उगका शरीर पुन लगे काट का-गा हा गया है। वह न रो पाती है और न हँस पाती है। उसे बग दर्शन या मृत्यु की सामना है। वह पीने पीने गुबगनवामी लकड़ी है। अपनी मृत्यु निर्यात जानकर वह प्रिय से कहती है अब तो मृत्यु निश्चय है। हे प्रिय! अब भी विपत्तों। मरने के बाद मिलने में क्या लाभ होगा।

कबीर के इस विरह-वर्णन में विरहिणी की मानसिक और शारीरिक दशा का ही वर्णन नहीं है, बल्कि प्रेम की यह तीव्र व्याकुलता भी व्यक्त है जिसमें मिलने-पाने अपने सुन्दरतम रूप में अभिव्यक्त होती है।

इस साहित्य में विप्रसन्न का विस्तृत वर्णन नहीं है, पर जो कुछ भी है वह अपनी तीव्रता भावना की सम्मीरता एवं भविष्य में अज्ञेयता है।
 प्रेमाशयी साक्षा

प्रेमाशयी साक्षा में विप्रसन्न की विशेष महत्ता है। इस महत्ता का कारण सूक्ष्मी वर्णन है। निर्वृत्त परमात्मा में इस शरीर का अस्तित्व ही होगा। उसके बाद का माया जीवन तो प्रेम की पीर से भर जाएगा। इसी पीर की श्मशाना स्नान-स्नान पर सूक्ष्मी-साहित्य में हुई है। प्रेम की यह पीर पूर्वराग और प्रवाह-विरह का रूप में मिलती है। और जगत् में भी पूर्वराग-विरह ही इसका मुख्य केन्द्र है। परमावस्था में नायमती का विरह प्रभाव अत्यन्त है और जगत् में भी विरह की अभिव्यक्ति भी है किन्तु फिर भी जायसी का दृष्ट नायमती का विरह इतना नहीं है जितना कि रत्नसेन और परमावती का पूर्वराग। इस साक्षा में अग्य कविता में तो विरह बड़े अंग में कबल पूर्वराग में ही प्राप्त है अत्यन्त नहीं।

पूर्वराग की सीमा

इस साक्षा में प्राप्त अधिकतर विरह पूर्वराग का है इस तत्त्व पर पहुँचने के लिए आवश्यक है कि पूर्वराग की सीमा निर्दिष्ट कर दी जाए। सामान्यतः मिसन के पूर्व तक की स्थिति पूर्वराग का अंतर्गत आती है। पर प्रश्न यह है कि मिसन क्या है? क्या स्वप्न मिसन इन्द्रजास-मिसन कवियों के प्रसन्न से साम्य अधिक मिसन तथा संभोगहीन विवाह यथाप मिसन है? इस साहित्य में नायक-नायिकाओं के मिसन इस प्रकार के भी हुए हैं। यदि ये यथार्थ मिसन हैं तो इनके मातृ ही नायक पूर्वराग की स्थिति समाप्त पात्र लेनी चाहिए। इनके बाद का विरह पूर्वरागान्तर प्रभाव विरह होगा। यदि ये यथार्थ मिसन नहीं हैं तो यह विरह पूर्वराग विरह ही कहलाएगा।

उपरोक्त में स्वप्न-मिसन कोई मिसन नहीं है। इन्द्रजास द्वारा मिसन सत्त्वा तथा संभोग-युक्त होता है किन्तु अनुभव में स्वप्नवत् होने के कारण इसमें प्रेम का भीकारोपण मात्र ही होता है। यह पूर्वराग की समाप्ति या मिसन न होकर उनके प्रारम्भ का मिसन होता है। कवियों के प्रसन्न से साम्य मिसन भी यथाप मिसन नहीं है। यह मिसन तो पूर्वराग को वर्धन द्वारा बुद्ध करके जाता है। इस मिसन के मातृ भी पूर्वराग की समाप्ति नहीं होती है वह और अधिक दृढ़ ही होगा है। अंतिम संभोग-हीन विवाह का प्रश्न अधिक उचित

मोहित हो जाती है। इस प्रकार से इन्द्रजाम व अन्तर बिच-वर्धन द्वारा दोनों में पूबरागोदय होता है।

(२) प्रत्यक्ष-वर्धन

इन्द्रजाम व अन्तगत प्रत्यक्ष-वर्धन द्वारा पूबरागोदय मकन से मधुमामती में विद्यमाया है। उसकी कथा इस प्रकार से है —

बनेसर नगर के राजा मूरजाम के पुत्र मनोहर का एक बार अप्पराएँ लोते में उठ से गई और महाराम नगर की राजकुमारी मधुमामती की बिजगारी में रग गई। वहाँ जायने पर दोनों की भेंट हुानी है और व परस्पर मोहित हो जाते हैं। दोनों व मो जाने पर अप्पराओं से पुन मनोहर का उणके यहाँ पहुँचा दिया। प्रात जायने पर दोनों का रात्रि की बटना स्वप्नबठ मकी पर अब उम्हाने एक-दूसरे को ही गई सहबानियाँ देखी तो उम्हे बटना की मरयता पर बिचराम हुआ। दोनों व हृदय में एक-दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ।

मूडी-माहित्य में इस प्रकार पूबराग की उत्पत्ति यषेष्ट बिबिध रूप में हुई है। भक्ति माहित्य में इतनी बिबिधता अम्यब मही है।

पूबराग में प्रथम वधन का प्रभाव

पूबराग व प्रथम-वर्धन का प्रभाव इस माहित्य में बड़े बिभरधन रूप में व्यक्त किया गया है। नायक के पल में इनमें बड़ी एकरुगता है। नायक-नायिका को देणते ही मूर्च्छन हो जाता है। उनमें काम की प्वाला रहक उठनी है। काम की बनेबानेक व्छाएँ उसमें प्रकट हो जाती है। इनके बिपरीत नायिकाएँ प्रथम वधन से प्रभावित तो होनी है पर उनमें अधिक पैर्य और बुडना है। पैर्य और बुडता का यह प्रवर्धन मधुमामती में सबसे अधिक है। मधुमामती नायक मनोहर को रैगवर मुग्ध होकर मुप-बुब मही गँवा बैठनी है। वह उगमे बनेबानेक प्रसन्न कर अपनी बिजाया की गति करनी है। इनमे पता चलता है कि दग माहित्य में नायक अधिक संवेदनशील है।

पूबराग का विकास

मूडी-माहित्य में पूबराग का बिबाम ही सबसे महत्त्वपूब है। मायना की दृष्टि से भी इनीमें मूडी वर्ध का वार्षिकिक रूप प्रकट हुाना है और बिप्रसन्न की दृष्टि से भी इनीमें प्रेम की पीर की व्यंजना है। कथा की दृष्टि से भी मही बंध सबसे अधिक बिबिधता और राचर है। पद्यायन को छोड़कर छाप कथाएँ तो इगकी बिबिधता के साथ समाप्त ही जाती है।

सूची पूर्वराग के विकास को कई धरमियों में बाँटा जा सकता है जैसे —

(क) प्रयत्न

प्रथम आकषण होते ही नायक-नायिका एक-दूसरे के लिए प्रयत्नशील होजाते हैं। नायक हमने लिए सर्वस्व त्यागकर योगी ही जाता है। सत्कार का मोह तथा अहंकार का त्याग कर वह प्रेमिका के पद का अधिक हो जाता है। कोई भी भावा उसे हम मार्ग के विरत नहीं कर पाती। इन प्रयत्न का प्रथम विग्राम नायक नायिका के प्रथम वर्धन में होता है।

अन्यथा नायक अपने अहंकार में बुर पाक्षिक शक्ति द्वारा प्रिया तक पहुँचना चाहते हैं जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिलती है।

प्रेम-यम में प्रयत्न केवल नायक ही नहीं नायिका भी करती है। नायिका के लिए योगिनी बनकर निरुत्सना धरम नहीं है पर वह निश्चेष्ट नहीं बँठी रहती। वह संदेशवाहकों द्वारा प्रिय का पता लगवाती है जैसा कि चित्रावती ने किया था। कभी-कभी वह अतुरता के कारण छम-बम का भी महारा भेती है। छलों में सबसे प्रचलित छम प्रिय की खोरी के अपराध में पकड़वा लेता है। नायिका नायक को किसी बहाने से भोजनार्थ के लिए आमन्त्रित करती है। भोजन के समय वह अपना कोई आभूषण नायक के भोजन या बर्तों में छिपवाकर—उसे चोर बननाकर बन्धी करा लेती है। कौताबती ने मुजान पर यही छम किया था। नायिका इस प्रकार से नायक को पकड़ने में तो अचरम सफल हो जाती है। पर उसके प्रेम को प्राप्त करने में कभी भी सफल नहीं होती है।

नायिका का दूसरा प्रयत्न प्रेम-निवेदन है। वह अपनी किसी बातों द्वारा या स्वयं ही नायक से अपने प्रेम का निवेदन करती है। इसमें भी उसे सफलता नहीं मिलती है।

नायिका या तीसरा प्रयत्न संदेश तथा पत्र भेजना है। रत्नसेन के पास संदेश द्वारा पद्मावती तथा मुजान के पास पाती द्वारा चित्रावती अपने प्रेम का निवेदन करती है।

व्यार्थ में सूची-नाश्रिय में नायक-नायिका दोनों ही वरा प्रयत्नशील रहते हैं।

(ख) प्रथम वर्धन

नायक-नायिका के प्रयत्नों के फलस्वरूप दोनों का प्रथम-वर्धन होता है। यह वर्धन दोनों का प्रेम का वर्दीपन कर उन्हें अन्तिम त्याग का प्रयत्न के लिए

रिक्त करता है। प्रथम दर्शन के प्रभाव से अक्षर नामक मूर्च्छित हो जाता है। यह उसकी अपरिपक्वताका कारण है। नायक-नायिका का यह मिलन दार्ढ्य होता है, इसीलिए पूर्वराय की स्थिति यहाँ समाप्त नहीं होती है। यथार्थ मिलन के लिए अभी और प्रयत्न एवं साधनाएँ आवश्यक हैं।

(ग) बाधाएँ

नायक के मार्ग में कई प्रकार की बाधाएँ आ सकती हैं। प्रथम प्रकार की बाधा सुखादि की है। पद्मावती में रनसेन को पड़ पर चढ़ाई करनी पड़ी और शूनी पर चढ़ने के लिए तैयार होना पड़ा।

दूसरे प्रकार की बाधा नुटीचरों द्वारा उत्पन्न होती है। जिजावली में इन्द्रजाल द्वारा नुटीचर नायक सुखान को अग्रा कर एक पर्वत की गुफा में बन्द रखा है। वहाँ एक अक्षर उसे भीस भेता है। उसकी विरह-ज्वाला से पकड़ाकर उसे चमत् करता है। एक वनमानुष द्वारा उस दृष्टि-साम होता है, पर उसकी मुनीवतों का यही अन्त नहीं होता है। एक हाथी उसे पकड़ भेता है। एक पक्षी उसकी रक्षा करता है। फिर अन्त में जिजावली का पिता उसे शूनी हाथी से तथा सेना द्वारा मारना चाहता है। अन्त में समस्त बाधाओं की पार कर सुखान मफल होता है।

मधुमासती में बाधा का रूप सबसे विचित्र है। मधुमासती की माँ ने उसे पक्षी होने का घाप दे दिया था। पक्षी रूप में मधुमासती ने ममोहर की सोजने का बहुत प्रयत्न किया पर मफल न हो सकी। ताराचन्द्र के प्रयत्न से वह घापमुक्त होकर प्रिय को प्राप्त करती है।

सूजी कवियों ने अपने-अपने प्रकार से नायक के मार्ग में बड़ी-से-बड़ी कठिनाई प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता हुआ नायक नायिका को प्राप्त करता है।

(घ) विरह

पूर्वराय की स्थिति में कवियों ने नायक-नायिका के विरह का विस्तृत वर्णन किया है। इस विरह में प्रेम की तीव्रता तथा काम की अनेक दशाओं का वर्णन है। यह विरह अधिकतर बारहमासा पञ्चति पर कहा गया है। कहीं-कहीं षट्शतु के रूप में भी इसका वर्णन है। यह विरह-वर्णन गद्यावधि रखा है।

षट्शतु और बारहमासा

संयोग और वियोग दोनों ही में प्रकृति सहीपनकारी है। इसके माध्यम से कवियों ने संयोग-शुग और वियोग के शुग का वर्णन किया है। षट्शतु का

प्रयोग सामान्यतः संयोग-सुख की अभिव्यक्त करने में होता है। इसका अपवाद विभावरी का विरह है जो कि पठ-शत्रु पद्धति में हुआ है। इस विरह में विभावरी की भूख और मीठ समाप्त हो गई है। वह अपने विरह को हृदय में ही छिपाए रखती है जिससे उसका शरीर भीतर ही भीतर मल्ट हो रहा है। भस्म उसे भार सपते हैं। बामुपनों में उसे शक्ति नहीं रह गई है। विरह असह्य हो रहा है। शत्रु पर शत्रुएँ भीतरती जा रही हैं पर बूठ लौटकर आए नहीं। प्रत्येक शत्रु उसकी पीड़ा को उग्रतर कर देती है। विरह-समुद्र में वह डूबती जा रही है। भस्म में उसके हृदय में अभिताया होती है कि होसी में अपने शरीर को राख कर दे और पवन के साथ उड़कर आरी दिशाओं में अपने प्रिय को खोजे —

धन तन होरी लाइ की, होइ यहीं अर छार ।

बहु दिस मास्त स य होइ, ईंहीं प्राप्त भयार ॥

(विभावरी, २४६)

ऐसी तीव्र उसकी वैरणा है और इतनी तीव्र उसकी अभिताया है।

पूर्वराय में बारहमासे का प्रयोग उद्यमान और पंचम दोनों में किया है। यह विरह-वर्धन पत्र द्वारा किया गया है। विभावरी का बारहमासा रीत से प्रारंभ होकर फरसुन में समाप्त होता है तथा मधुमासनी का बारहमासा साधन से प्रारंभ होकर आषाढ़ में समाप्त होता है। दोनों ही विरहियों का विरह प्रति मास अपिकर्षिक बढ़ता जाता है। प्रत्येक मास का प्रारंभ प्रिय आगमन की जिस आशा से होता वह उसके समाप्त होते-होते मिराया में बरस जाता। दोनों ही बारहमासों में सरस सरस तथा हृदयद्रावक रूप में प्रेम की पीड़ा की व्यंजना है। इनमें सर्वत्र प्रिय-मिलन की उत्कट कामना तथा प्रिय के लिए सर्वस्व समर्पण की उत्कृष्ट भावना है।

मान

सूत्री-साहित्य में मान के विषय का बहुत अधिक अवकाश था पर कवियों ने इसकी पूर्णतः उपेक्षा की है। इस साहित्य में न तो प्रलय-मान और न ही ईर्ष्या-मान के प्रसंग हैं।

प्रवास

सूत्री-साहित्य में पूर्वराय के ही अंतर्गत प्रवास की भी योजना है। पूर्व मितन के पूर्व ही नायक-नायिका एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। नायक अनेक संकटों में पड़कर उन पर संकलता प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार प्रवास होता है। इस प्रवास को पूर्वराय के अंतर्गत ही रखना चाहिए। विभावरी

और मधुमासती में प्रवास इमी प्रकार का है। पद्मावत में कुछ प्रवास है जब कि रत्नसेन नाममती को छोड़कर मिहसहीप के लिए जल देता है।

बिजावती में पूर्वरायान्तर्गत प्रवास का प्रारम्भ उस समय से होता है जब योवी रूप में मुजत शिव-मंदिर में बिजावती से मिल चुकता है और भुटीवर द्वारा बंधा होकर भटकता है। मधुमासती में यह प्रवास उस स्थान से माना जाएगा जहाँ मधुमासती की माता उसे पत्नी हीम का पाप देती है।

पूर्वरायान्तर्गत प्रवास-विरह के स्वरूप का उत्तम पूर्वराय क प्रत्यय में पीछे किया जा चुका है।

कुछ प्रवास के वर्धन कंबल पद्मावत में प्राप्त है। इसके दो स्वन हैं —

(१) नाममती का विरह-वर्धन

(२) विहसपद से विदा के बाद समुद्र में रत्नसेन-पद्मावती क विभोव के अवसर का विरह।

नाममती का विरह-वर्धन हिन्दी साहित्य की अमूर्तम त्रिपि है। अपनी सरसता वाहस्विकता और बेचना की व्यंग्यता से यह अमूर्तम है। उस पर बहुत कुछ मिला जा चुका है जत और अधिक मिरने की आवश्यकता नहीं है।

पद्मावती रत्नसेन का उपरुक्त विभोव भिन्न प्रकार का है। रासत द्वारा जहाज टूटने से दोनों अलग-अलग ही गए। इसलिए इन प्रवास माना जाएगा। पद्मावती का मरती ने बंधा दिया। मरती वह विरहाग्नि में दग्ध होने लगी। प्रिय विद्या में वह रोनी है और बार-बार मूर्च्छित हो जाती है। उग पर पामसपन का घाने लपका है और वह मरने का तैयार हो जाती है किन्तु उस कार्य मरने भी नहीं देता है। मृग-श्याम और नीर त्यागकर वह अथाक तिर्यक नीच बेठी सीठा भी हो गई है। दगी समय मरती की कथा स जगदी भेंट प्रिय से होगी है।

उपर इमरी और पद्यावती को गोर रत्नसेन भी व्याकुल था। मिमक के लिए व्याकुल वह बराबर रागा था। पद्यावती को प्राप्त करने के लिए वह मभी प्रचार क कष्टों को महम का तैयार था पर उस बंधारे को अपनी प्रिया का कोई जग पना ही नहीं मिया गता था। बरे तो वह बंधारा गया कर। वह अकहाय गा अनभव कर रहा था। नग ईश्वर को पार करना है और पद्यावती का नाम लेकर मरका चाहता है। उनी समय मरती उम पद्यावती का पना बना कर उससे बिलानी है।

दानों की वा विरह हरयदायत और नाम की अनेक बधाओं ग परिपूर्ण

रामायणी शाखा

रामायणी शाखा का अधिकतर साहित्य प्रबंधात्मक है। और उसमें वियोग वर्धन के विस्तार का विशेष बरकास है। किन्तु फिर भी इस शाखा के साहित्य में विरह का विशेष विस्तार नहीं है।

विरह का स्वरूप

इस शाखा के साहित्य में पूर्वराग और प्रवास के विरह का ही स्वल्प विधान है। प्रवास भी नहीं प्रिय का न होकर प्रिया का है। सीता को रावण हर ले गया है। अतएव इस कुछ प्रवास कहना भी ठीक नहीं है। एक प्रकार से यह विप्रोह का विरह है। इस विरह का भी विस्तार नहीं और विविधता नहीं है।

पूर्वराग के प्रसंग

रामकथा में पूर्वराग के निम्नलिखित प्रसंग माने जा सकते हैं —

- (क) शम्भु-पार्वती प्रसंग।
- (ख) नारद-धीमनिधि-कन्या प्रसंग
- (ग) राम-सीता-प्रसंग।
- (घ) राम-सकल-सूर्यवला-प्रसंग।

इनमें सबसे रूप से पूर्वराग के प्रसंग शम्भु-पार्वती तथा राम-सीता के पूर्वराग के ही हैं। नारद और धीमनिधि-कन्या में नारद का पूर्वराग इन्द्रवास-मव। शम्भु की माता के दृष्टे ही प्रेम की स्थिति ही नहीं रह गई। राम सकल के प्रति सूर्यवला का आकर्षण रूप के कारण प्रत्यक्ष वर्धन द्वारा हुआ था। इसका आधार काम का विमर्ष प्रेम का अभाव था। सीता के प्रति रावण का आकर्षण प्रतिरोध की भावना से उत्पन्न हुआ था। विमर्ष बाद में रूपाकर्षण का पुन भी विमर्ष पर वह भी विशेष स्पष्ट नहीं है। रावण ने कभी भी अपने प्रेम का निवेदन नहीं किया है। उसने मत्वा अपनी शक्ति और बल का ही प्रदर्शन किया है।

पूर्वरागोदय

रामायण में पूर्वराग का उदय निम्नलिखित प्रकार से हुआ है —

- (क) प्रत्यक्ष-वर्धन द्वारा

राम और सीता के पूर्वराग का उदय गुण-वाटिका-वर्धन में परस्पर प्रत्यक्ष वर्धन द्वारा हुआ है।

- (ख) गुण-वर्धन द्वारा

गुण-वर्धन द्वारा प्रेम की उत्पत्ति पावती ने हृदय में हुई थी। नारद के

कर्म से उसके अन्दर की अन्त-अन्तार की सुप्त प्रीति बाधित हो उठी थी। इस सम्बन्ध में वह द्रष्टव्य है कि नारद के शिष्य के पुत्रों का विशेष वर्णन नहीं किया जा। उन्होंने पार्वती के भावी पति के स्वरूप का संकेत किया जा जिसे पार्वती ने सत्य जाना और उसके फल-स्वरूप उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ —

बुद्धि मुनि गिरा सत्य जिये जाती ; बुद्ध बंधतिहि जमा हरबारी ॥

×

×

×

होइ न मूया वैभरिदि भाया ; जमा सो बचनु हृदये परि राजा ॥

अपदेइ तिव दरकमत नमैहु ; मिलन कठिन मन भा समैहु ॥

जानि कुमबलव भोति बुधई ; सखी उरंग बैठि पुनि जाई ॥

(मानस भा०, पृ० १४)

कुस-कुस इसी प्रकार की प्रीति सीता के हृदय में भी नारद-कर्म के फल स्वरूप उत्पन्न हुई थी जो कि बाद में राम के वर्णन से पुष्ट हुई थी।

पूर्वराग की सीमा

संभु-पार्वती और राम-सीता दोनों ही के पूर्वराग विवाह के द्वारा समाप्त होते हैं। विवाह उनकी सीमा है।

पूर्वराग में प्रिय प्राप्ति के प्रयास

संभु को प्राप्त करने के लिए पार्वती प्रयत्नशीला है। यत्नशीली शिव की उपस्था द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और इसके लिए उन्होंने बिकट उपस्था भी की। इन प्रयत्न में जो बाधाएँ आईं उनकी उन्होंने नरबाह नहीं की। यत्न में उन्हें सफलता मिलती है।

राम-सीता में सीता ही प्रयत्नशील नहीं है। सीता अपने पिता की प्रतिज्ञा से बंधी है। उनका एक मात्र अवसर्ग देव-रुपा है। दूसरी ओर राम भी मयीरा के बंधन से बद्ध है। सब राजाओं के अस्तित्व होने पर और बुद्ध-बाबा से ही वे अनुभवे के लिए पड़ते हैं।

पूर्वराग में विरह

पूर्वराग में विरह का अभाव है। ही अमिताया पिता स्मृति बुद्ध-कर्मन बढ़ता जाति नाम की बुद्ध बघाए। इन प्रयोग में अवश्य उपलब्ध है।

भाव

इन माहिस्य से मान का पूर्व अभाव है।

विरह

है, जो विरह में उसे विद्रोह-जग्य कहना चाहिए। सीता-हरण पर कुटी को सूना पाकर सीता के लिए क्रिया गया विलाप तथा जनकी प्राप्ति तक की स्थिति तक राम का विरह है। हरण के समय से लेकर रावण-जय तथा राम विगत तक सीता का विरह है। यह विरह निम्नलिखित रूपों में व्यक्त हुआ है —

- (क) हरण होने पर सीता का विलाप।
- (ख) बाधम को सूना देखकर राम का विलाप।
- (ग) राम का वन में विलाप।
- (घ) सीता से हनुमान का राम-विरह-कथन।
- (च) सीता का विरह-स्वरूप।
- (ज) राम से हनुमान का सीता-विरह-कथन।

(क) हरण होने पर सीता का विलाप

सीता का यह विलाप अत्यन्त संक्षिप्त है। इनमें विरह का स्वान पर आर्त-सुकार है। यह एक परकसा मन्त्रा की वीज सुकार है।

(ख) बाधम को सूना देख कर राम का विलाप

सकलम द्वारा सीता को अकेल छोड़े जाने से राम वैसे ही आघातित हो उठे थे। अपनी कुटी को सूना देखकर वे धीरे धीरे बैठे हैं और रोने लगते हैं। सीता के प्रत्येक कार्य उन्हें याद आने लगते हैं और वह स्मृति जनकी पीड़ा को और तीव्र कर देती है। इस विरह में वे विचिन्त-स हो जाते हैं और सीता को लोचने निकलते हैं। सीता की खोज में ही उनके विरह का अर्थार्थ रूप प्रकट होता है। उन्हें पड़ बेतन की पहचान भूम गई है और वे लग मूम मधुकर अंजन, धुक पिक कपोत आदि सभी से सीता का पता पूछते हैं। वे बार-बार सीता को पुकारते हैं। जनका विलाप एक कापी की मूर्ति का है। इसमें काम की अनेक बघाएँ मिलती हैं।

(ग) राम का वन में विलाप

यह विलाप कुछ अधिक विस्तृत है। इसकी योजना प्रकृति की वृष्टि-मूर्ति म हुई है। इन विरह में प्रकृति बु लक्ष्मी है। अर्थात् प्रकृति अपने गुण में निमग्न है। सभी जोष अपने आड़े २ गाव है। उन २ एम का वा दणकर राम २ वृष्य में बार-बार यह बात उठती है कि प्रक में ही नारी विहीन है। उन्हें सारी प्रकृति कामाग्रव में मान प्रतात होनी है। ऐसा मान्य पदना है पाना कामरव चतुरंगिणी सेना लेकर समस्त विरर की कुनीनी दे रहा है। ऐम समय में कीन जेप पारम कर सकना है। इन विषय स्थिति में नारी य ही वषाव हा सकना ह और यह निवा नहीं बहान दूर है। वन उपवन, दिन-राग बाधम आदि सभी मयात्रक एवं

कथन से उनके चरित्र की जन्म-व्यथाओं की पुष्ट प्रतीति काव्यत हो उठी थी। इस सम्बन्ध में वह इष्टव्य है कि नारद ने शिव के दुर्गों का विशेष वर्णन नहीं किया था। उन्होंने पार्वती के मायी पति के स्वरूप का संकेत किया था जिसे पार्वती ने तत्पश्चात् श्रीराम के फल-स्वरूप उनके हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ —

सुनि सुनि गिरा मय त्रिपदी ज्ञानी । कुछ संपत्तिहि उमा हरपत्नी ॥

×

×

×

हीन न मुखा वैशरिणि भावा । उमा सो बभूवु हृदयं परि राजा ॥

उपमैव तिव परकथन सदैव । जितन कठिन मन भा सग्रेव ॥

आनि कुम्भसद प्रीति कुराई । सखी उमा बँधि सुनि आई ॥

(भागवत भा० पू० १८)

कुम्भ-कुम्भ इती प्रकार की प्रीति सीता के हृदय में भी नारद-कथन के फल-स्वरूप उत्पन्न हुई थी जो कि बाद में राम के वर्णन से पुष्ट हुई थी :

पूर्वराज की सीमा

संभु-पार्वती और राम-सीता दोनों ही के पूर्वराज विवाह के द्वारा उभाप्य होते हैं। विवाह उनकी सीमा है।

पूर्वराज में शिव प्राप्ति के अभाव

संभु को प्राप्त करने के लिए पार्वती प्रयत्नशीला है। मलयगोत्री शिव की उपस्था द्वारा ही प्राप्ति किया जा सकता है और इसके लिए उन्होंने बिकट उपस्था भी की। इस प्रयत्न में जो सामर्थ्य आई उनकी उन्होंने परवाह नहीं की। अन्त में उन्हें सङ्गठता मिलती है।

राम-सीता में दोनों ही प्रयत्नशील नहीं हैं। सीता अपने पिता की प्रतिज्ञा के बंधी है। उनका एक मात्र अवलंब ईश-रूपा है। दूसरी ओर राम भी मर्यादा के बंधन के बद्ध हैं। सब राजाओं के असफल होने पर और कुछ-काल से ही वे अनुभव के लिए पड़ते हैं।

पूर्वराज में विरह

पूर्वराज में विरह का अभाव है। ही अभिजाता पिता स्मृति कुम्भ-कथन अज्ञता आदि बात की कुछ बचाएँ हम प्रसंग में अवरुध उपलब्ध हैं।

मान

हम साहित्य में मान का पूर्ण अभाव है।

विरह

जैसा कि शीघ्र कहा जा चुका है हम साहित्य में अभाव विरह का अभाव

है, जो विरह में उसे बिछाह-व्यथ कहना चाहिए। सीता हरण पर कुटी को सूना पाकर सीता के लिए किया गया बिसाप तथा उनकी प्राप्ति तक की स्थिति तक राम का विरह है। हरण के समय से लेकर रावण-वध तथा राम मिलन तक सीता का विरह है। यह विरह निम्नलिखित रूपों में व्यक्त हुआ है —

- (क) हरण होने पर सीता का बिसाप।
- (ख) आश्रम को सूना देखकर राम का बिसाप।
- (ग) राम का वन में बिसाप।
- (घ) सीता से हनुमान का राम-विरह-कथन।
- (ङ) सीता का विरह-स्वरूप।
- (च) राम से हनुमान का सीता-विरह-कथन।

(क) हरण होने पर सीता का बिसाप

सीता का यह बिसाप अत्यन्त संक्षिप्त है। इनमें विरह के स्थाय पर मात्र-सुकार है। यह एक परवसा अबला की शीन पुकार है।

(ख) आश्रम को सूना देख कर राम का बिसाप

सदमक द्वारा सीता का अकेले छोड़े जान से राम वैश ही बाधकित हो उठे थे। अपनी कुटी को सूना देखकर वे भीरे लो बैठे हैं और रोते लगते हैं। सीता के प्रत्येक कार्य उन्हें बाद आने लगते हैं और यह स्मृति उनकी पीड़ा को और तीव्र कर देती है। इस विरह में वे बिछिन्न-स हा जात हैं और सीता को खोजने निकलते हैं। सीता की खोज में ही उनका विरह का प्रबन्ध रूप प्रकट होता है। उन्हें पड़-पड़न की पहचान भूल गई है और वे लय मृग मधुकर खंजन, मुक, पिक रूपोत आदि सभी से सीता का पता पूछते हैं। वे बार-बार सीता का पुकार-रते हैं। उनका बिसाप एक कामी की मति का है। इनमें वाम की अनेक दशाएँ मिलती हैं।

(ग) राम का वन में बिसाप

यह बिसाप कुछ अधिक विस्तृत है। इसकी बाधना प्रकृति की पृष्ठ-भूमि में हुई है। इस विरह में प्रकृति दुःखी है। अपूर्ण प्रकृति अपने मूल में निमग्न है। सभी जाध अपने जाड़े में मान हैं। उस लन रूप की दग्धकर राम का हृदय से बार-बार यह बात उठती है कि एक में ही जागी विहीन हूँ। उन्हें मारी प्रकृति कामाग्र में मान प्रतीत हुआ है। ऐसा मान्य गढ़ना है माना कामाग्र अनुरदिधी मना लेकर समस्त विद्या का कुनीती से रहा है। उस समय में कोन भीय मारध कर सकता है। इस स्थिति में मारी में ही बचान हा सकता है और वह प्रिया नहीं बटन पूर है। उन उपवन, दिन रात बादम आदि सभी नमानक एवं

मयनीत करवाते हैं। यह प्रकृति केवल दुःखदायिनी ही नहीं है बल्कि व्यंग्य करती-सी भी प्रतीत होती है। जब मृत्यु-मूनी बन में भाम नहीं जाते क्योंकि वे राम तो कंचन मृग को लालनेवासे हैं। ऐसा सोचकर उनकी पीड़ा विगुणित हो जाती है।

यह प्रकृति कभी-कभी सुखदायक और सहायक भी हो जाती है। राम कम होंग कमनिधि संजल कंच आदि को देखकर जीवन धारण करने में समर्थ हैं बल्कि वे सीता के मुक्त भवन जब आदि न समान हैं।

इसी समय राम को सीता के पट-नूपुर आदि के दर्शन होते हैं। वे उनके विरह को पुनः उद्दीप्त कर देते हैं। उन्हें हृदय से बचाकर ही कुछ मातृवत् प्रियता है। राम का मन का संपूर्ण विनाश अत्यन्त करण है।

(घ) हनुमान का सीता से राम-विरह-कथन

अधोक्त नाटिका में सीता से राम के विरह का स्वल्प वर्णन हनुमान ने किया है। हनुमान कहते हैं— राम का प्रेम आपके प्रेम से बूना है। उनके विरह को व्यक्त करना कठिन है। उनके लिए सभी कुछ विपरीत हो गया है। सभी सुख दायक वस्तुएँ दुःख देने लगी हैं। जब तक किसिम सूर्य जगद कमल बन सभी समान रूप से पुस्तकामी हैं। बर्षा का पल तो ऐसा प्रतीत होता है मानो लोभवा हुआ तेल हो। विरह से व्याकुल होकर वे सिंह की तरह कुण्डलों में चलने लगे हैं। केसर को बपारियाँ देकर उन्हें धस होता है। मयूर-शब्द सुनकर सर्पों की भाँति कंचरा में घुस जाते हैं। भ्रमर की मीठी बचन बिलत होकर वे बनों में घूमते हैं और रात्रि में बोगियों की तरह जागते हैं और चारों की तरह भाषका नाम रटते हैं। उनकी पीड़ा को उनसे विषयम और कोई कह नहीं सकता है। उनका यह विरह-वर्णन विमोक्ष की तीव्रता को व्यक्त करने में पूर्णतः सफल है।

(ङ) सीता का विरह-स्वरूप

अधोक्त नाटिका में दिन में राशतियों में पिरी और रात में जबसी विरहिणी गीता का स्वरूप अत्यन्त हृदयदायक है। अत्यन्त ही मन्त्रि-वसना श्रुतिार विनीता जगता कर है। उनसे प्रेम से निरन्तर मय प्रवाहित होता रहता है और जबकी शिवा न राम-नाम की गत कभी टूटनी नहीं है। विरह की व्यापक और अत्यन्त क मायावादी न परिधि गीता मृत्यु की आकांक्षा करती है। उनका वृत्त का भाव करण है।

राम की मुक्ति का अन्तर के विधिना की मीठी उससे बात करण लक्ष्मी है। अत्यन्त न दिना न उन्हें बाधन मिलता है। वे वृत्तों हैं कि कोमल बिलत

राम ने यह निष्ठुरता क्यों बरत कर ली है। उनका बचनों का उत्सर्जन करने का उन्हें अत्यन्त पदचालाप है और वे मूर्खिन हो जाती हैं।

सीता का संवेद्य बलि संक्षिप्त पर अत्यंत कष्ट और इतित करनेवाला है। अपना प्रथम अपनी विपत्ति हरने की प्रार्थना राम के पराक्रम की स्मृति और अपने जीवन की एक मास की अवधि यही उनका संक्षिप्त संदेश है। अतुर हूत हनुमान के लिए यही संकेत था।

(क) हनुमान द्वारा सीता-विरह-वर्षन

सीता के विरह का वर्षन हनुमान ने अत्यंत दुःखतना सं किया है। राम सीता का वृत्तांत जानने के लिए व्याकुल है। हनुमान कहते हैं 'आपके विरह में सीता के प्राण तो कभी के निकल चुके हाथ पर आपका नाम वे जो दिन रात रटती रहती हैं वह पहरेदार की भांति है आपका निरन्तर ध्यान ही किवाड़ संयुक्त है तथा वेनों को अपने बरनों में सजाकर उन्होंने इन किवाड़ों में ताम्बा दाल दिया है। इस प्रकार प्राण निकलने का समस्त मार्ग अवरोध हो गए हैं फिर वे फिर से जाएं।' सीता का संदेश कहते हुए हनुमान कहते हैं 'उस दुःख को आपका बचन अंतमय है। उस 'दुःख' की सुनकर एक चैतन्य गयी दुःखी हो आई। इसका कहने ५ राह हनुमान सीता के कष्ट स्वरूप का उक्त राम के नाम से निरन्तर आपका, उनकी विभिन्नवस्था का उनकी भिन्न की तीव्र अतिताया का और उनकी मृत्यु की अभिलाषा का ऐसा कष्ट वर्षन करते हैं कि सभी का हृदय इतित हो जाता है। राम रामे लयते हैं। उनके मुक्त सं शब्द नहीं निकलते हैं पर सीमा ही उन्हें अपने कर्नम्ब का भाव हो जाता है, और वे सीता उदार के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। सीता का 'व विरह' में नाम की मगमग सभी बसाए' आई है।

संपूर्ण रूप में इस शांता का विरह-वर्षन माना में स्वल्प हाठे हुए भी प्रमादोत्पादक और प्रेम की पीड़ा में अरपूर है। साप-ही-साप बर नायक का कर्तव्य की ओर प्रेरित करनेवाला भी है। वह संक्षिप्त विरह-वर्षन संकष्ट है।

हृत्सापधी शांता

हृत्सापधी शांता में विप्रलम्भ की दृष्टि में कल्पम-प्रदाय सबसे महत्त्व पूज्य है। इसीमें दुःख पूर्वराय मान और प्रदाय-रिण्ट विपत्ता है। इसका अति गिनत साधारणमभ संप्रदाय और गयी मप्रदाय अपनी विरह की विषयण स्वरुपा दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है। सामान्य रूप में विरह को धन्वीकार करते हुए भी उन्होंने विरह का स्वीकार किया है। सीता का विरह साम्प्रदायिक बचनों में प्रथम और

स्वरूप है। अतएव इस शास्त्र में प्राप्त विरह का अध्ययन मगधवासानुसार करना ही समीचीन होगा।

ब्रह्मसंभार

हिन्दी साहित्य में ब्रह्मसंभार का ही सबसे अधिक अध्ययन हुआ है और इसमें भी इसके विरह-पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। परंतु इस संभार में प्राप्त विप्रसंग के स्वरूप का अध्ययन संक्षेप में ही किया जा रहा है।

विरह की स्वीकृति

इस संभार के कृष्ण का संपूर्ण जीवन स्वीकार किया गया है। उनकी व्रत मधुरा और द्वारका-जीनों ही सीमाएँ मान्य हैं। इन प्रकृत सीमाओं के अतिरिक्त इनकी अप्राकृत नित्य-सोसा भी कुम्हारन भाम में सदा चलती रहती है। इस प्रकार यद्यपि अप्राकृत कृष्ण-गोपियों का कभी भी वियोग नहीं होता है फिर भी प्रकृत जगत में वह परिलक्षित होता है। इसी प्रकृत विरह का वर्णन सभी कवियों ने किया है। इस सम्बन्ध में ध्यान नहीं रखना है कि कृष्ण की मधुरा एवं द्वारका सीमाएँ स्वीकृत तो अवश्य हैं किन्तु उनका विस्तार से वर्णन अष्टछाप के कवियों ने नहीं किया है।

विरह का स्वरूप

ब्रह्मसंभार में विरह अनेक रूपों में प्राप्त है। विरह-वर्णन में अतिनी विविधता इस साहित्य में है उनकी और किसी साहित्य में नहीं है। कल्प-विप्रसंग को छोड़कर त्रिगुण लिए अहित-काव्य में कोई स्थान नहीं है। ये सभी विप्रसंग-स्वरूप इसमें उपलब्ध हैं।

पूर्वराग

अष्टछाप के कवियों ने पूर्वराग का अव्यक्त उरगाह से वर्णन किया है। यह पूर्वराग सामान्यतः गोपियों का कृष्ण के प्रति है। राधा के सम्बन्ध में यह पारलौकिक है। राधा-नामी और कृष्ण के बीच में इस पूर्वराग का प्रारम्भ प्रत्यक्ष वर्णन भुव-भरण बाल-मनह आदि अनेक रूपों में हुआ है। इनकी मधुरा वियोग का निम्नलिखित है—

प्रत्यक्ष-वचन

वचन में ही कृष्ण के रूप की ठपठपी गार व्रत में मगी थी। गापियाँ उनको अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण-विताम करत देलनी थी। उनको श्रीकृष्ण भी ऐसी थी या कि सभी तर-नारियों का मन मोहनेवाली थी। बड़े होने पर उनका इन

रूप के प्रभाव से कोई न बच सका। किधोर कृष्ण का अचानक वही दर्शन हुआ वही ही प्रेम की धरिता फूट पड़ी। अपनी मनोहर मुस्कान से कृष्ण ने जिने देखा उमीका मन हर लिया। छीत स्वामीका एक ऐसा ही पद निम्नलिखित है —

भई भेंड प्रबानक माई ।

होँ अपने पूह तें चली बभुना उतने जने चारन पाई ॥

विरक्त रूप टयोरी लायो, उमको डम मरि चस्यो न जाई ।

छीत स्वामी विरपरन कृपा करि भोतन चितए मुरि मुत्तिकाई ॥

पुष्प-श्रवण

कृष्ण की केसि उनका गोपी प्रेम जादि सुगों को सुन कर प्रेम उत्पन्न होना स्वामाधिक है, यद्यपि बच के सम्मुख बानावरण में पुष्प-श्रवण से प्रत्यक्ष-दमन ही अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव इन बिनि से पूर्वराशोत्पन्न क वर्धन प्राप्त नहीं है। नंददास की पदावली में ही इसका संकेत है —

कृष्ण भाव जब तें धवन सुन्वी री प्रासी ।

धूली री मदन हों तो बावरी भई री ॥

(नवरास संपावली—सुवन पृ० १४१)

वैशु-श्रवण

पुष्प-श्रवण से कहीं अधिक प्रभावशाली उनकी वैशु-श्रवण है। उनका मादक मदीय गोपियों का मन बरबस हरनेवाला है। इस वैशु का आरक्षण अजीब है जिससे कोई भी गोपी न बच सकी। गोपियों के पूरवाम में वैशु का महत्वपूर्ण स्थान है। इन वैशु के संगीत का और उसके प्रभाव के अनेकानेक बचन मिलते हैं। उनके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है।

बाल-स्नेह

बाल-स्नेह का किशोरावस्था में पूर्वराग में बदल जाता स्वामाधिक ही है। जिन गोपियों के माथ कृष्ण बचपन में रोने से किधोरी जाने पर उनका कृष्ण के प्रति प्रेम होना स्वामाधिक है। मुरदाग में राधा कृष्ण के प्रेम का विकास पूरा रूप में दिगाया है। जहाँ मेंकरा गेसते समय बालापन की जो दिव्य शक्ति थी किशोरावस्था में अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम के रूप में बल गई।

मोद-व्यथान रूप

कृष्ण का मोदव्यथाकारी रूप भी उनके प्रति स्नेह उत्पन्न करनेवाला रहा होगा। एक मोद बनेज रीती-विपत्तियों से तो उन्नि हर ही मोद कर रहा ही ही ही की दूसरी और अचमर-भूमवगर, पदपर और रम्य रूप पर दे

मंजरी-प्रसन्न भावितों की सहायता करते रहे होंगे। यह सहायता नोपियो के हृदय में प्रेम उत्पन्न करनेवाली रही होगी। कामिन्वी की रपटीली राह पर एक घोड़ी की ऐसी सहायता में ही उसके प्रति उद्ये हृदय में प्रेम का संकुरण करा दिया था। परमानन्द का एक ऐसा ही वह निम्नलिखित है —

मम सास डेकी मेरी महिमा ।

प्रोचट घाट बड़यो नहिं बाईं रबटत हौं कामिन्वी महिमा ॥

मुन्दर स्याम कमल बस भोजन देखि स्वल्प गुबाल धरम्यानी ।

उपयो प्रीति काम उर छंतर तब नापर नापरि पृथुपानी ॥

होति ब्रजनाथ गहूँ कर पल्लव जाती गमरी गिरन न पाई ।

'परमानन्द' खालिन सयानी कममनयन कर परस्योहि भाई ॥

(परमानन्द सागर, ७२६)

प्रतिभा और स्वप्न-दर्शन

स्व-मंजरी के प्रसंग में मंदराज ने प्रतिभा-दर्शन-विधि का उल्लेख किया है। स्व-मंजरी की छगी दण्डुमती शोबर्तन पर हृष्य प्रतिभा के दर्शन करा कर स्व-मंजरी के हृदय में प्रेम उत्पन्न कराने का प्रयत्न करती है। यह प्रेम उद्ये समक बुद्ध होगा है जब नायिका स्वप्न में अपने अनुस्य नायक रूप का दर्शन करती है। यह पूर्वराग हृष्य की प्रकट लीला से सम्बन्धित न हाकर मत्त (स्व-मंजरी) के जीवन में सम्पन्न उद्ये भाव उद्ये का है।

पूर्वराग की मरुत्पा में विरह-वैरता रहनी है त्रिगुण अगदर मित्त की उद्ये बामना होनी है। यह वैरता एक मरुत्त उद्ये उद्ये और मिठापमयी होनी है। इनमें नाम की जनेक बहाए प्रकट हो जाती है। प्रिय की स्मृति मित्त की विना दुसबादि वा स्याम निरोधेदर जादि बरस्यार् नामिक की उद्ये वा वीक्षित किए रहती है। परमानन्द ने एक पद्य में ऐसी ही स्थिति का मुन्दर दर्शन दिया है। दिग्गुण नायिका अपना कष्ट पूर्ण कामक के समान गहती है —

जब तैं प्रीति स्याम तैं कीनी ।

ता दिन तैं मेरे इन नवनि नेंकडु भीर न लीनी ।

तब रहति बित जाक बड़यो तो घोर न करु मुहाय ॥

नन में बरत उपाय मित्त की इहै बिचारत जाय ॥

परमानन्द प्रमु भीर प्रय की बाहू तैं नहिं कहिए ।

जैंने दरवा मुट बालक की मपने तन नन सहिए ॥

(परमानन्द सागर, ४४६)

पूर्वराग की विरहाग्नि वा दरा ही मुन्दर दर्शन मंदराज के स्व-मंजरी में

किन्ना है। बिना प्रकार जानसी घौमे द्वारा सूर्य का प्रकाश पड़ने पर कई प्रखलित हो चठनी है। उमी प्रकार रूप-मंजरी के कई रूपी छरीर पर हृदय-वर्धन हाउ रवि रूपी प्रिय का प्रेम-प्रकाश पड़ते ही उसका तन विरहाग्नि से प्रखलित हो उठा -

तिय-द्विय बरपन तन कई रघो हुती पुढ पाणि ।

प्रोतम तरनि छिरनि परसि जायि परी तन भायि ॥

(मरवात प्रयावली प० १४)

मान

वस्त्र-वैश्रवाम में मान का विशेष उल्लेख है। यह मान प्रलय और ईर्ष्या-व्यय दोनों ही प्रकार का है। मूरसागर में ही यह व्यवस्थिति रूप से प्राप्त है। यह चार प्रकार का है -

(१) साधारण प्रलय मान

प्रलय के कारण राधा मान करती है। हृदय मगाने जाते हैं और राधा क न मानने पर पीट जाते हैं। तब राधा का मान कपूर की मति उड़ जाता है। यह विरहागुण हो जाती है। सतिता हुती बतकर हृदय को मगाने जाती है; राधा की प्रमत्ता करती है, तब हृदय भाकर उसे हृदय से मगात है और उसका विरह-दाप घात होता है।

(२) विप्रलम्ब मान

हृदय के हृदय में लगी का प्रतिबिम्ब देखकर राधा मान करती है। हृदय की सभी मनुहारें बसकन होती हैं। हृदय हुती नेजते हैं जा राधों की एकता बत जाती है जिससे मान बंग होता है।

(३) ईर्ष्या मान

हृदय तन पर अग्रज की हुई रति के चित्तों को देखकर राधा क हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। परिहाउ और कगात होते होते दण्ट हाकर अन्त में क मान कर बैठनी है। मान-मोचन क सभी प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं। अंत में परस्पर के पुण्य बरिच से गंदेन हाउ के पनीजनी है और मान नम हाता है।

(४) बड़ी मान-सीता

यह मान भी ईर्ष्याव्यय है। इस चार राधा ने हृदय को पर गृह से निक-सते स्वयं देग दिया। राधा ने दण्ट होकर ज्यकर मान किया। मान-मोच के सभी उपाय अपकप हूण। राधा क ता अपनी प्रमत्ता क प्रयत्न हुई और न हृदय की रीन दया देकर बनीना। हृदय स्वयं हुती भी बतते हैं पर तब व्यय

अंत में कृष्ण को एक उपाय सूझता है। वे राधा के सम्मुख स्वयं खड़ा होकर पीछे पड़े हुए गए। स्वयं में दोनों के नेत्र परस्पर मिलाते हैं। राधा का चेहरा खिस उठा। उसे निश्चय हो गया कि कृष्ण की प्रेमसी बही है। मान भंग हुआ।

मान का एक अर्थ विस्तृत वर्णन मंदराम की मान-संजरी नाममाता' में है। इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार से है —

कृष्ण-हृदय में अपनी परछाई देल कर राधा मान करती है। कृष्ण की मातुरता देखकर दूनी राधा को मनाते जाती है। वह राधा के निकट बहुरूप अंजन मगा कर पहुँचती है।

दूनी अनेक प्रकार से राधा-मान भंग करने का प्रयत्न करती है। वह कभी कृष्ण के प्रेम की ओर कभी राधा के प्रेम की बात कहती है। राधा इस पर भी न मानकर दूनी को डाँटती है। अंत में दूनी राधा को भस्मना करती हुई कहती है, मेरी विज्ञा तबे पर की बूँद हो रही है। अब तुम्हारी क्या छात्रा है ? मैं लौट पाऊँ।

यह सुनकर राधा का मान भंग होता है। वह हँसकर कहती है कि अब बड़-राशि ही गई है। मात-बनूगी। पर बहुत दूनी कोई उत्तर न देकर चतकी बुनियाँ से जाती है। राधा उसके गान बसो जाती है और दोनों का विसाप होता है।

मान-मोचन

मान मोचन के लिए राम भेद और नति पद्धतियों का उपयोग किया गया है। एक-आप स्वयं पर 'उपेक्षा' का भी प्रयोग हुआ है। मुख्यतः भेद-पद्धति अपनाई गई है।

मान-विषय में कृष्ण या अपनी दूनी राधा को मनाती है। इनमें कृष्ण के प्रेम का तथा राधा विषय में कृष्ण की विरहाग्नि का वर्णन कर राधा से मान छोड़ने की प्रार्थना की जाती है। कृष्ण अथवा दूनी के प्रेम-वचनों को सुनकर राधा का मान भंग होता है। यदि स्वामी का एक ऐसा ही वह निम्न निम्न है —

प्रपत्तो यथावत् कृ बहिरारी ।

बुधा भोग रिता करति नमित नृप संकृ पितं इत प्यारी ॥

तव नृप अर बहोर संकृ मेरे प्याह मुपा बहिरारी ।

रही हरी नम दाह बिरह तप नक बोति असे होई

अंत अंजना पत्रियारी ॥

जो प्रति प्रकट करो भुज बंधन मज सों हूँ बिदारी ।

योबिह प्रभु के प्रेम बचन सुनि छवि मान हूँ सागि मुसुम मुहुमारी ॥

(४०६)

राधा का मान अंग करने के लिए अनेक प्रकार से भेद नीति का उपयोग हुआ है। कहीं दूती राधा को कुछ बेर मनाने के वात्त मनावा छोड़ देनी है और कहती है 'और मनाई मान करो कोटि करो छिर नो तुम और मोहन एक होनी ही ।' मोहन का नाम सुनते ही राधा का मान अंग होता है। कहीं-कहीं दूती राधा को लक्षिक यौवन का अंगके रहित उपयोग करने का सत्परामर्श देती है —

हरि सों कसो मान छबीली ।

इह यौवन धन बिबस बारि कौ काहे को बुधा करत हो मबीली ॥

(गोविंददास, ४८६)

इन दो उपार्यों के अतिरिक्त कृष्ण स्वयं दूती बनते हैं कभी पाती भिजग है और कभी भुज-बीरी के पास संदेश भेजते हैं। कभी दूती राधा की भरणवा करती है और कभी अतुरता से उनके द्वार पर कृष्ण के लड़े होने का कथन करती है जिससे राधा का मान अंग होता है।

गति के अर्पण कृष्ण राधा के चरणों में फिर रग कर मान अंग की प्रायना करते हैं यथा—

राधिका लजि मान मया कब ।

तेरे चरण-सरण विभुवन-गति भेदि कल्प तू ह्योहि कल्पन ॥

(५१, ५१३७)

एक स्थान पर कृष्ण जब राधा की उपेता कर उठ के कब हूँ तू मय मय चरणों से लपट पाती है यथा—

कमलनयन राधिका मनावत ।

उठि जब जने चरण लपटानी भोत भये मुज ह्यो मय मय ॥

द्वार कषाट द्विपौ गाडे करि, कर घापने बनाइ ।
 ननु नहीं कहुँ संधि बजाई वीड़ि रही तब जाइ ॥
 इहि अंतर हरि अंतरजासी—जी ननु करै सु होइ ।
 नहीं नारि मुख मूँडि वीड़ि रही तहाँ संघ रहे सोइ ॥
 जो देखै ह्यौ संघ बिरानत घसी तिषा भइराइ ।
 एक स्याम घाँपस ही देखे इक प्रहू रहे समाइ ॥
 जत की बं प्रति विनय करत हैं इत अंकन भरि सीगही ।
 नूर स्याम मनहरनि कभा यहू गन हरि के बस कोगही ॥

(सूर ३१४४)

नाम के प्रसंगों में ही स्वल्प बिरह का भी उल्लेख है। इसमें बिरहजनित पीड़ा मायक की छत्कटा आदि का वर्णन रहता है।

बिरह

बल्कल संप्रदाय में बिरह-वर्णन की बहुताया है किंतु इसमें उग प्रकार के सूक्ष्म बिरह का जमाव है जैसा कि राधाभक्तन या गौरी संप्रदाय में है। सूक्ष्म बिरह का जो स्वल्प वर्णन इन संप्रदाय में माना जा सकता है वह वैद्यत संवदाग और नूर में ही अत्यल्प मात्रा उपलब्ध है। संवदाग में उसे प्रत्यक्ष और पसकान्त बिरह कहा है। प्रत्यक्ष बिरह संभ्रमजन्य होता है। संभ्रम की स्थिति में भी यहाँ विषोय होता है। पसकान्त बिरह भी संभ्रम के ही अंतर्गत होता है। पसक संभ्रम में जो वर्णन-बाधा होती है वही इसी बिरह को उत्पन्न करती है। यह यथार्थ बिरह न होकर उरकट संभ्रम की अभिलाषा ही है।

बल्कल-साहित्य में सूक्ष्मता स्पष्ट बिरह की है त्रिपते प्रिय का विषोय होता है। संवदाग में बिरह संभ्रम में इनके को भेद बनाए है। प्रथम बनाउतर बिरह है जो कि कृष्ण की गाथात्म गाथा एवं रात्रि-विभ्रामत्रिभि है। द्वितीय देवांतर या प्रथम विप्रबंध है त्रिपते कृष्ण का मनुष्य-आस्था पमन है। त्रिपते बिरह ही प्रथम है।

बनाउतर बिरह के अंतर्गत ही राग के अन्तर्गत कर गोपी एवं राधा-बिरह आते हैं। गोपियों को कृष्ण अंगपरि होने पर आश्चर्य और आनृतता है। इन प्रकार छोड़ जाने के कारण वे आपस बिरहातुल हैं उन्हें गोत्रनी है तथा उनका गुण-मान और ताना अभिनय करती है। राधा का बिरह और प्रथम है। कृष्ण ने उसे अत्यंत गोपियों में अधिक मात्रा दिया इसलिए उसमें गन का हाना स्वाभाविक ही है। त्रिपते ममद गथा प्रथम-वर्ष के विरह पर भी उनी ममद कृष्ण परी छोड़ जाने है। वह उन नामोदीयनवागी रात्रि में अपने मुख के विनय

वर्णनी कर्त्तनी-नी रह जाती है। उसकी निम्नलिखित जस से निकालती गई मीन-वी हो गई है। उससे एक पय भी जाये वका नहीं जाता है। वह बन की शुभ-मता से अपने प्रिय का पता पूछती है और सोचती है कि विरह में उसके प्राय नहीं वर्णने —

सुष्ठु है अथ मयं शुभ वेत्सी ।

हमें तसि वये री गीषात्त अयेत्सी ॥

प्रहो चपक मासतो समासा ।

तुम्हें परसि वये नदमासा ॥

क्यों यदराज बिना गज करवी ।

कृत्तु सार विन व्याकुल हरिनी ॥

परमावह प्रभु मिसहु न पाई ।

तुम बरसन बिन हंस उड़ाई ॥ (परमानंद सामर, २३६)

रास के प्रसंग में विरह-वर्णन सूर, तदबास और परमानन्ददास ने ही किया है, अन्य अष्टाश्रयी कवियों के उसके अस्मास और भीड़ा-पद्य को ही लिया है।

प्रवास बनवा रेवागुदर विरह का ही इस साहित्य में सबसे अधिक विस्तार मिलता है। इन विरह क सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जा सकता था वह उन कुछ सुरदास ने कह दिया है। वह विरह कला क मन्वु-ममन से प्रारम्भ होता है और मिसन की भाषा द्वारा ही कथन होने से बच जाता है।

इस साहित्य में प्रजाप-विप्रलम्ब दो कर्णों में व्यक्त हुआ है। एक तो माचारण विरह तथा दूसरा प्रमद-मीन। माचारण विरह क अन्तर्गत प्रमद-मीन विरह-वर्णन आयेके। इसमें भी दो उपभेद किए जा सकते हैं। प्रथम गोविन्दों का विरह और द्वितीय राधा का विरह। इस विरह के अन्तर्गत गोविन्दों के विरह का ही विशेष वर्णन है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राधा को विरह-व्यथा नहीं थी। एक तो गोविन्दों के विरह में ही राधा के विरह की अभिव्यक्ति ही गई और दूसरे बनकी बेरवा इतनी संभार और मन्वु-वृत्ती थी कि उस पीड़ा का वर्णन करना उनके लिए असम्भव था। उसे न कोई सिद्धवा था न सिद्धायत। तद्विषय अज्ञान ही वह मीन हो गई थी। पर गोविन्दों की प्रत्येक उचित के पीछे से उठका विरह रूप मीकता रहता है। यथार्थ में अतीव मन्वीर प्रेम की एक शक्त है जो गोविन्दों के विरह में विसती है। गोविन्दों का विरह अधिक सुन्दर और विविध है। प्रेम की पीठ अत्यन्त मर्मरपती रूप में व्यक्त हुई है। उनकी पीड़ा अवर्णनीय है। काम की गमल बघाए उनके विरह में प्राप्त है।

गोविन्दों का विरह अपने सर्वोत्तम रूप में प्रमद-मीन में प्रकट हुआ है। प्रमद पीठ की बरचरवा हिन्दी-साहित्य से पूर्व की है और उसका आशय सुन्दर

व्य में इन संशयों में विकसित हुआ है। इनके माध्यम से योग और ज्ञान पर ऐसी छीटे कसे गए हैं जो अपनी प्रभावशीलता से अद्वितीय हैं तथा जिनका रस अगिर्वर्जनीय है। हिन्दी में अमर-गीत पर स्तनन रूप से सम्बन्ध ही बना है। इनमें स्वयं विरह के सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टक्य है —

प्रमत्त गीत में भी राधा के विरह का प्रत्यक्ष-वर्णन अल्प उसकी व्यथा ही अधिक है। कृष्ण भी गमन-सोपियों को मदिष्ट प्रेरिते हैं, पर राधा के सम्बन्ध में भी है। राधा ने भी उद्यम से न तो एक शब्द कहा और न ही कृष्ण की कोई नृशित मेना। इनका रस होते हुए भी उगका विरह सारे वातावरण पर धाया रहता है। सोपियों की प्रत्येक उक्ति में राधा के ही हृदय की घड़कन सुनाई पड़ती है। यही कारण है कि उद्यम में भी सभी सोपियों को छोड़कर राधा की ही विरह-वेदना का उल्लेख भी कृष्ण ने निम्नलिखित हृदय-शावक रूप में किया है —

बिलत है सुनी स्याम प्रबोध ।

हरि सुन्दार विरह राधा में नु देखी छीन ॥

तज्यी तेज तमोल भूयन अग बचन मनीन ।

कंठना कर चहुत नाहीं बाड़ पुत्र यहि नीन ॥

अब सबिती कहन सुन्दरि गवन मो तन कीन ।

पुटी पुत्रावलि बरन मकमो गिरी बलहीन ॥

कंठ बचन न बोलि धारं हृदय बरिहत भीन ।

मन अत भरि रोइ बीनी प्रतित मरर बीन ॥

उठी बहुरि संनारि नरु श्यों परम लाहत कीन ।

नुर हरि के बरत कारण रही घासा नीन ॥

(सूट० ४७२२)

वृद्धोप में भी राधा का स्वरूप अत्यन्त प्रेमनिष्ठ है। उसकी विरह की दारुण व्याधा की मयासे में दविपण ही मर्म है। उनका यह रूप अत्यन्त दयनीय है।

राधा-सोपियों के इस विरह-स्वरूप में काम की गभी दशाएँ उपलब्ध हैं। उनमें से राधा के अगोचर तथा शिव-वस्तु के प्रति नीच आकर्षण का एक उदाहरण भीने दिया जा रहा है —

अति मलीन कुचमातु-कुमारी ।

हरि लस-अन भीग्यी उर-अचल विधि मालव न पुत्रावलि जापी ।

धरु नुच चहुत घनत महि बिबरति श्यों गव हारे बरित कुवारी ।

एटी बिपुर बरन कुण्डिलाने ग्यों मलिनी हिमकर की भारी ॥

हरि खरिय सुनि सहज सुतक भद्र इक बिरहीनि, हुने प्रति जारी ।
सुरदास कैंते करि जीवै यत्र बलिता बिन स्याम दुखारी ॥

(सूर० ४६५१)

बैसा कि वीसे भी कहा जा चुका है इस संप्रदाय में उपलम्ब विप्रलम्ब अपनी विविधता में अपनी मन्त्रीरता में अपनी प्रभावशीलता और कृष्णा भी मंडितीय है ।

राधावल्लभ संप्रदाय

राधा-वसन्त संप्रदाय में स्मृत विरह का अभाव है । राधा-कृष्ण के निरस्य-संयोग तथा दोनों के एक पक्ष के लिए भी न विसृष्टने के कारण ऐसा है । यथार्थ में इस संप्रदाय में कृष्ण की मधुरा एवं डारका सीमा प्राप्य नहीं है । ब्रज सीमा में भी कृष्ण निकुञ्ज में प्रिया के साथ सदा कसि रत रहते हैं । वे तो राधा के रूप का निरंतर पान करते रहते हैं । अर्जुन विरह का प्रसन्न नहीं उठता । प्रबुद्धास ने इसी तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है 'ऐसे अर्जुन प्रेम में और प्रति को विरह न मंभई । जो फूमति की मासा बेहे कृन्दिहाइ ताको बसिबर को बिरहाइसो अभीत । या प्रेम में न स्मूम प्रेम की समाई । न स्मूल विरह की समाई । न मान की ।' एक रस यह प्रेम ही विरह रूप है । इसीलिए इस संप्रदाय में स्मृत विरह के स्थान पर सूक्ष्म विरह की कल्पना है ।

राधावल्लभ संप्रदाय में विरह की अस्वीकार करके भी उसे सूक्ष्म विरह कहकर स्वीकार किया गया है । ऐसा क्यों है ? ऐसा अनुमान है कि जिस समय श्री हितहरिबंधारी ने राधा-कृष्ण के निरस्य-संयोग को अपने संप्रदाय का आधार बनाया होगा उसी समय उनके मन में तत्कालीन उपलम्ब साहित्य में प्राप्त राधा कृष्ण के विरह-स्वरूप और उसकी उत्कृष्टता तथा भावप्रवणता का ध्यान आया होगा । वे जानते थे कि विरह-बिहीन प्रेम में वह बरसाह और उत्कर्ष नहीं जा सकता है । या कि विरह के पुट से उत्पन्न होता है । इसलिए उन्हें विरह की अस्वीकार करके भी स्वीकार करना पड़ा । यह काम उन्होंने विरह की एक महीन, सूक्ष्म और विलक्षण कल्पना द्वारा किया है । इस कल्पना द्वारा उन्होंने विरह को स्वीकार करके भी अस्वीकार कर दिया है । इस विधि में जहाँ एक ओर उन्होंने शीघ्रों पर आरोपों का समाधान किया वहीं दूसरी ओर अन्य संप्रदायों में बनिन प्रेम से अपने प्रेम के स्वरूप की धृष्टता भी प्रभावित की है । राधा-वसन्त संप्रदाय की यह कल्पना मधुसूक्त ही अपने में बनी है ।

सूक्ष्म विरह का स्वरूप

श्री० स्नातक न भवन राधा-वसन्त राधावल्लभ संप्रदाय में इन सूक्ष्म विरह

का स्वरूप निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है। सूक्ष्म विरह वह है जहाँ प्रिया-प्रियतम एक ही पर्यंक पर ममासीन होते हुए भी अपने तम और मन के पार्वक को अग्रह मानकर तादात्म्य की बसवती उल्टा से प्रेम-विह्वल होकर एक दूसरे में सीम हो जाता चाहते हैं। तम मन का पार्वक उन्हें विरह-अव्य वेदना का-मा प्रतीत होता है। निरंतर एक-दूसरे के रूप-सौंदर्य का पात्र करत हुए भी मन में एक प्रकार की अव्यक्त अनुपि बनी रहती है और उसके कारण वे सूक्ष्म विरह का अनुभव करते हैं। इस विरह में एक नियम का अन्तर मुख माइकर सगी से बात करने का अन्तर भी अग्रह विरह को उत्पन्न करनेवाला है। इस विरह की चाल अटपटी है। प्यास जब न पीकर जब ही प्यास का पी जाता है। प्यास ही जब हो जाती है —

घटपटी पीति को विरह सुनि सुनि रह्यो सब कोइ ।

जब पीवत है प्यास को प्यास पयो जब सोइ ॥

(भ्रूवदास पृ० १७७)

इच्छा-क्रोध में विराहमान राधा भी गहना विरह से पीड़ित हो जाती है। ऐसा अनुभूत यह विरह है। इस विरह को भी हितहरिबंध की दो बंधनियों द्वारा व्यक्त किया गया है। इसमें मारस और चकई दोनों के प्रेम की म्युनताओं को विरहाकर राधा-कृष्ण के प्रेम-विरह का व्यक्त किया गया है। मारस-मुनल तथा मंदीय रस का मानस भेदा है। विरह-अव्य दुःख की उस अनुभूति नहीं होती है। चकई-चकरी अमल संयोग-मुन और विरह-मुन का अनुभव करते हैं, पर उनका यह मुन या दुःख एक समय में एक ही होता है। इनमें मारस और चकई दोनों का प्रेम पूर्ण रसभय नहीं होता है। राधा-कृष्ण का संयोग मुन मारस मुन के संयोग मुन के चणकोटि मुनिद अपिठ मानसभावक होते हुए भी चकई-मुन के विरह-मुन के चणकोटि मुनिद अनुपि का दुःख उनका प्रेम-रस को विरहाव बना होता है। यही तृप्ति में ऐसी अनुपि है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता बहो संयोग में भी ऐसा विरह है जिस संयोग और विरह के पुरे की भिन्नता का बड़ा ग गहना है। यही तृप्ति में अनुपिभय संयोग में विरहभय रस विरह का रूप है।

गयावत्प्रम मप्रदाय का यह पुरुष विरह-मिलन की स्थिति का है। यह प्रेम विरह या गणवागदर विरह बड़ा ग गहना है। इसीसे प्रमदाय में विरह विरहाव रूप में व्युत्पन्न किया है। एक गत्र गत्र रूप उमल चन्द चकार कपो वैवाचन कीट मने महा कठिन बया द्वाद अर देह ह अपनी ग्याती नाही मदि

कति यह हूँ विरह मानत है ।' (पृ० २०) इस विरह का एक उदाहरण निम्न लिखित है —

क्या यहाँ इन मैननि की बात ।
 ये मलि प्रिया वरन धम्बुज रस भइये अनत न बात ।
 जब जब एकत पसक संपुठ सठ मति प्रातुर अकुलात ।
 सम्पट लप निमेष भन्तर ते मलय कलय सत सात ॥
 मुति पर कंठ, दुर्गजन कृष्ण बिज मुय नर हूँ न समात ।
 अँ भी हितहरिबंध नाभि सर जसकर नाकत सीबत गात ॥

(हितचौरासी, १०)

पीछे कहा जा चुका है कि इस संप्रदाय में स्पृग विरह स्वीकृत नहीं है। सूक्ष्म विरह मितल की स्थिति में ही होता है फिर भी हितहरिबंध के इस पद में स्पृग विरह का समास मिलता है। इस अपवाद माना जा सकता है —

कमि चलहि उठि गहर करत कत निबुंध बुलावत लाल ॥
 हा रापर रायिका पुकारत निरख पवन नख डाल ॥
 करत सहाय सरर मति भावत फूटि मिसी उर मान ।
 दुर्गन तकत समर मति कातर, करहि न प्रिय प्रतिपाल ॥
 अँ भी हित हरिबंध जली मति प्रातुर मवन मुरत तैहि काम ।
 तै रावे पिरि कृष्ण बिज मुम्बर मुरत पूर जज बाल ॥ (१६)

मान

विरह के समान ही मित्रांत रूप में इन माहिरय में स्पृग मान का भी समास है। प्रथम में मान की स्थिति का संज्ञक इन सव्यों में किया है —

तहाँ मान जेठे बने बहनुत अई यह मंत्र ।

भीज बीज आसक रस कह समाप बिज नैम ॥ (पृ० १९४)

स्पृग मान की इस अस्वीकृति के साथ ही इन संप्रदाय में सूक्ष्म मान की स्वीकारणा की गई है। यह मान्य सामान्यतः संभ्रम द्वारा उत्पन्न होता है। कभी-कभी प्रेमा कारण ही यह प्रणय मान गद्य उत्पन्न हो जाता है। यह मान सजिक होता है पर इसकी विरहानुभूति आरयन भीज होती है। संभ्रम मान में हृष्य के वस्तु मुकुट में अपना प्रतिबिम्ब देकर राधा मान करती है —

हरि उर मुकुट बिभोकि प्रपनुषो बिभ्रम बिगत मान अत मोरी ।

बिबुट मुषाव प्रयोग प्रबोवित प्रिय प्रतिबिम्ब जनाप निहोरी ॥

नेति नैति बचनानुत् मुनि-मुनि सतितादिन बेपति दुरि घोरी ।

अँ भी हितहरिबंध करत कर प्रमन प्रणय-शेष मासावनि तोरी ॥

(हितचौरासी १)

का स्वल्प निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है। सुख विरह बहु है जहाँ प्रिया प्रियतम एक ही पर्वक पर ममासीन होते हुए भी अपने तन और मन के पार्षक को असह्य मानकर तादात्म्य की बलवती उरकंठा से प्रेम विह्वल हाकर एक-दूसरे में लीन हो जाना चाहते हैं। तन मन का पार्षक उन्हें विरह-जस्य वैश्या का-या प्रतीत हुआ है। निरतर एक दूसरे के रूप-सौंदर्य का पाम करते हुए भी मन में एक प्रकार की अभ्यक्त अगुप्ति बनी रहती है और उभय कारण से सुख विरह का अनुभव करते हैं। इस विरह में एक निमेष का अन्तर मुक्त सोइकर मन्त्री से बात करने का अन्तर भी असह्य विरह को उत्पन्न करमेवाता है। इस विरह की बात सटपटी है। प्यास जल न पीकर जम ही प्यास का पी जाता है। प्यास ही जल हो जाती है —

प्रदखी भक्ति को विरह सुनि भूति रहती तब कोइ ।

जल पीवत है प्यास की प्यास भयी जल सोइ ॥

(द्रुवदास पृ० १७७)

रूप-कोइ में विरहसमान राधा भी गहना विरह से पीड़ित हो जाती है। ऐसा बहुभुत यह विरह है। इस विरह को श्री हितहरिचंद्र की वा कुंडलिया द्वारा व्यक्त किया गया है। इसमें मारन और बर्क, दोनों के प्रेम की म्युनताओं को विरहाकर राधा-कुल के प्रेम-विरह को व्यक्त किया गया है। मारन-मुगल राधा मयाग रन का आनन्द है। विरह जस्य दुःख की जसे अनुभूति नहीं होती है। बर्क-बर्कनी कमल संयोग-मुग और विरह-दुःख का अनुभव करते हैं वर उनका यह मुग या दुःख एक समय में एक ही होगा है। इसनिप मारन और बर्क राधा का प्रेम पूर्व रणभय नहीं होगा है। राधा-कुल का संयोग मुग मारन-मुग के संयोग मुग से अतकटि सुनिज अपिक आनन्ददायक होते हुए भी बर्क-मुग के विरह-दुःख में राग कोटि सुनिज अगुप्ति का दुःख उभय प्रेम रन को विलक्षण बना देता है। नहीं सुनि में ऐगी अगुप्ति है जिनका समंन नहीं किया जा सकता वहाँ संयोग में भी ऐगा विरह है जिन संयोग और विरह से वरे की स्थिति का क्या जा सकता है। यही सुनि में अगुप्तिमय संयोग के विरहजस्य रन विरह का रूप है।

राधा-कुल मप्रदाय का यह सुख विरह-मिलन की स्थिति का है। यह जम विरह या मप्रदाय विरह कहा जा सकता है। इसको प्रस्ताव में निम्न स्थिति का दे लक्ष्य किया है। एक मप्र पर रूप रणन जस्य बर्क रयी वैश्याज की जसे महा कठिन रागा राइ जस देइ इ अर्गी ग्यापी माइ मदि

कृति यह हूँ निरह मानत है । (पृ० २०) इस निरह का एक उदाहरण निम्न लिखित है —

कहा कहीं इन नमनि की बात ।

ये प्रसि प्रिया बदन सम्मुख रस भयके समत न बात ।

जब जब शून्य पलक संपुट तब प्रति धातुर मकुमात ।

कम्पत कप निवेप अन्तर से अक्षय कसप छत सात ॥

भूति पर कंच, दुर्गन्ध कृष बिच मृग मर हूँ न समात ।

जै की हितहरिबंध नामि सर बलचर बाकत धर्मिल यात ॥

(हितबीरसी ६०)

बीछे कहा जा चुका है कि इस संप्रदाय में स्थूल निरह स्वीकृत नहीं है । सूक्ष्म निरह भिन्न की स्थिति में ही होता है; फिर भी हितहरिबंध के इस पद में स्थूल निरह का आभास मिलता है, इस अपवाद माना जा सकता है —

बसि बलहि उठि महुर करत कत निबुंध बुसाबत सात ॥

हू राया रायिका बुकारत निरख मदन यज बात ॥

करत लहाम धरव धमि मास्त, कृति मिली डर मान ।

दुर्वम ठकत सगर मति कातर, करहि न प्रिय प्रतिपाल ॥

जै पी हित हरिबंध बली प्रति धातुर यजन मुरत तैहि काल ।

जै राबे निरि कृष बिच मुम्बर मुरत पुर ब्रज बात ॥ (६३)

मान

निरह के ममान ही निश्चांत रूप में हम माहिम्ब में स्थूल मान का भी आभास है । प्रबुद्धमान के मान की स्थिति का भंडन इन शब्दों में किया है —

तहाँ मान कते बने प्रबुद्ध मरै यह प्रेम ।

भीजे शीघ्र घातछ रत कह समाप बिच भैम ॥ (पृ० १२३)

स्थूल मान की इस अस्वीकृति के साथ ही हम संप्रदाय में सूक्ष्म मान की कल्पना की गई है । यह मान शायाम्यत संश्रम द्वारा उत्पन्न होता है । कभी-कभी बिना कारण ही यह प्रपय मान उपरुत उत्पन्न हो जाता है । यह मान धार्मिक होता है पर दार्शनिक निरहानुभूति अस्पर्श भीत्र होती है । संश्रम मान में कृष्ण के कस मुकुर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर राधा मान करती है —

हरि उर मुकुट बिसोधि प्रपनुपी विघ्नम विघ्नत मान बुत भोरी ।

बिबुक् मुकाद प्रयोम प्रबोधित प्रिय प्रतिबिम्ब बनाय निहोरी ॥

भैति भैति बचनापुत मुनि-मुनि सतितादिक् देखति कुरि घोरी ।

जै भी हितहरिबंध करत कर पूजन प्रपय-कीच भावाबलि तोरी ॥

(हितबीरसी, ६)

मान के सुख-स्वरूप के प्रतिरिक्त उसके स्पृण रूप भी कही-कही मिल जाते हैं ।

मान-मोक्षण

इस संप्रदाय में मान-मोक्षण ७ छह शास्त्रीय उपाय-साम भेद राम, गति उपेक्षा और रसान्तर माने गए हैं । इनमें साम और भेद ही प्रमुख हैं । राम, उपेक्षा और रसान्तर का इस माहिरय में जमाव है ।

साम-विधि में नायक प्रिय बचनों द्वारा नायिका को मनाता है । इसमें वह अपने बिरह-रूप का वर्णन करते हुए राधा से कृपा की याचना करता है । भेद विधि का इस साहिरय में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है । नायक नायिका की सखी को पिला मिला है । वह गयी से अपने बिरह का निवेदन कर उसकी कृपा की मागमा करता है । सखी नायिका से नायक का बिरह-निवेदन करती है उसे विविध प्रकार की नीग बनी है ऊँच-नीच उपमायी है और कभी-कभी उसकी घर्तना भी करती है । भिम विधि से भी संभव हुआ है वह मान-रंज कर नायक से उसे पिलाती है । राधा की कठोरता के लिए भर्तना करने उसके मान-रंज करने के एक ऐसे ही प्रयत्न का विन इन सब में बड़े ही सुन्दर रूप में दिया गया है —

कबहूँ तै काहूँ को क्यूँ न कियो ।

बुरत बचोडी तै सीटी करि डारी हुठ करि कछु न लियो ॥

नैननि तोहि बुदिलता विचरई बीन न हूत कियो ।

कठिन बुधन को संपति को कत हूँ पयो कठिन कियो ॥

बिनु धरराबहि सायु विपदि तै कबहुँ न खेन कियो ।

तरया हूँ तै छपन धबर मनु, विम न ब्याह कियो ॥

मुगत बली भागुर हूँ चातुरता बिलरी भलियो ।

'भ्यात' रचाबिनो बेटत ही मैरी मोहन भरत कियो ॥

(ध्यात ४२२)

गगी के अतिरिक्त कृष्ण कभी-कभी डूरी का गहारा भी मते हैं और उसके भी नाम न बनना देगकर के मय डूनि का रूप भी पारण करते हैं । कभी-कभी कृष्ण राधा के चरणों में पड़कर आँ बचना हाग उतर मान का रंज करते हैं । मान के प्रसंगों में सबसे नायक का बिरह-रंजन तथा उसकी चातुरता का उल्लेख है ।

प्रसंग बिरह का रम माहिरय में पूर्ण जमाव है । गपूर्य रूप में मात्रा में बच होते हुए भी यह एक महीन भावना के प्रेरित सुन्दर और मोहक है ।

सखी सम्प्रदाय

शास्त्री हरिदास व गगी सम्प्रदाय के इन्द्रव कुञ्जबिहारी कृष्ण और कुंज बिहारीनी राधा हैं । इनका जगम नहीं हुआ है वे मोक्ष में रंज के यहाँ जगम मने

नाम के रूप में भी प्रयुक्त होने वाली शब्दा से मिलता है। इसका अर्थ विद्यालय वर्जनों में अभावित रूप से चलाता रहता है। यह विद्यालय हरिवासी सहकारी के मत पर होता है।

विरह

इस संप्रदाय में भी विरह का अभाव माना गया है। कृष्ण को तो राधा का प्रेमी भी माना नहीं है और वे राधा लन-लन-लन हृदय-से-हृदय और जयन-से-जयन मिलने रहने की प्रार्थना राधाजी से करते रहते हैं। इस प्रकार विरह को अस्वीकार करके इन्होंने भी राधावल्लभ संप्रदाय की भाँति शुद्ध विरह की कल्पना की है। यह कल्पना प्रेम की उत्कृष्टता व्यक्त करने के लिए की गई है। इसमें मिश्रण में ही उस रमणीय वेदना का अंगुल्य होता है जो कि अर्थ को सामान्य विरह में होता है। इस विरह का कारण कृष्ण का अर्थ और आर्षका है। कृष्ण को सदा यह मय रहता है कि कहीं कभी मज्जा कपट या मात के कारण राधाजी न न करे। इसके द्वारा उत्पन्न विरहानुभूति उनके प्रेम को प्रतिपादक प्रयास करती रहती है। इसी राधा को हरिवासी ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है —

प्यारी तू एक बात को मोहि बह धावत है सी ;

मति कहूँ कृपया करि बात ॥

(केनिवाल)

इस संप्रदाय में पूर्णरूप और प्रकाशजग्य विरह का निर्वाह अभाव माना गया है। जो कुछ विरह है वह संयोग में आर्षका और भवजनित है, जिसमें कृष्ण का कृपा-निर्देश और आंतरिक व्याकुलता ही प्रमुख है। इसी मातृजग्य विरह कुछ विकृत है किन्तु वह भी स्तुत न होकर सुख है। विरह की इस सामयिक मातृता के बावजूद इन संप्रदाय के प्रमुख कवि विद्वान्निवेद में स्तुत विरह के तीन पद मिलते हैं। इन पदों में अर्थात् विरह सामयिक विरह से इस बात में भी मिलता है कि यह मातृजी (कृष्ण) का न होकर मातृजी (राधा) का है। ऐसे एक पद में राधा अपनी लक्ष्मी से कहती है कि वे प्रिय रंजीती क्यों कहे बिस्मृत हो सकती हैं। रसमय होकर प्रिय मे उन्हें तर मेरी छविमें पर अपने सुख हारों से कितना बा। जगदीश- बस-बूँद पर प्राप्त टिक हुए हैं किन्तु काम बराबर भाव कर रहा है। इससे तो कहीं अच्छा या कि मुझे बिय बोल कर बिना दिया होता। वे अपने प्रेम का भूल गए हैं। कय मेरे पत्र को पाकर वे फिर राधा राधि की याद कर मेरे दुःख को दूर करेंगे —

रंजीती क्यों बितरे बतियाँ ।

रतिपति रस बस जयें बरस्वर निति सुहस्त छतियाँ ॥

जगही घंऊन प्राण रहत वी करत काम कतिपयौ ।
 सब द्विय घोरि पिबायो होती अनहित कित हतिपयौ ॥
 स्वाम सनैहू बिहारि सज्यो मुनि कागड की पतिपयौ ।
 वी बिहारीबास प्रभु बहुरि मुनिरहै सुखर करर की बतिपयौ ॥

मान

इस संप्रदाय में प्रिय प्रिया सूक्ष्म मान द्वारा मान रस का आनन्द उठते हैं ।
 कठने बीर टूटने में जो आनन्द है उसे प्राप्त करने के लिए प्रिया-सौसा से मान
 करती है किन्तु प्रेमी कृष्ण इसे भी नहीं सह पाते हैं । इसलिये सहजरी इन्हें मनाती
 है बीर ये भी शक भर में प्रसन्न होकर प्रिय को शंकर में भर लेती है । वे प्रिय को
 निरंतर अनंग-रंग से सजाती रहती हैं । कठने बीर फिर प्रसन्न होने में ही उन्हें
 रस भिन्नता है । इस रस के कारण ही उन्हें टूटने से कठना अधिक प्रिय है —

प्रम प्रबीना प्रिया प्रिय आतुर आतुर केति-कसा नुब पावै ।
 बाहि करे सब पाई परै हंस आसस यो मन मोह बकावै ॥
 वी बिहारीबास से प्रम अमंग मुरंग में रंग अनंग सजावै ।
 कठनी टूठनी यो रस बूडनी टूठनेँ तै अति कठनी भावै ॥

मान-मोचन

राधाजी का मान श्रीकारमक होता है पर प्रिय उसीके विरह में प्राधान्यक
 पीड़ा का अनुभव करते हैं । वे स्वयं या सहजरी द्वारा मान-मोचन का प्रयत्न करते
 हैं । इसके लिए साम भेद बीर नति विधियों का प्रयोग होता है । साम-निधि के अंतर्गत
 कृष्ण अपने विरह की बीड़ा उस्तैय कर मान लजने की प्रार्थना करते हैं । कभी वे
 राधा की मधुर बाणी की प्रार्थना करते हैं कभी अपने प्रेम का निवेदन करते हैं
 कभी अपने दोनों को एक कृत्रिम वा सत्ता सह करके मान भंग करने की प्रार्थना
 करते हैं । नाम से भी जब नाम नहीं बनता है तब हरिदासी सखी की कृपा प्राप्त
 कर कृष्ण मान-मोचन का प्रयत्न करते हैं । अनुर मती कृष्ण की विरह-पीड़ा का
 निवेदन करती है दोनों की प्रेमामावृत्ति वा उस्तैय करती है एक बार बोलने की
 प्राप्ति करती है मुरंग की बेला का गर्द है इसकी याद दिमागी है बीर उसके
 मान करने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि बीर ऐसी मारी है जो कि तुम्हारे
 गदुग है फिर क्यों मान करती हो । कभी-कभी कृष्ण स्वयं ब्रूयिका बन कर पाते हैं
 बीर राधा की मान भंग के लिए प्रार्थना करते समय उसकी आर्ति बंद कर बैठे
 हैं बीर तब कृष्ण की पहचानने से राधा का मान-भंग होता है ।

मान के इन प्रयोगों से प्रकट होता है कि यद्यपि इस संप्रदाय में स्वयं मान
 नहीं माना गया है, पर अतक अस्तव्य उपलब्ध है ।

राधा कभी-कभी मुझ मान कर बैठती है। किसी भी प्रकार से वह छूटता नहीं है। अन्त में कृष्ण उनके चरण पकड़ लेते हैं। अतुर सखी उन्हें समझाती है और उनका मान भंग होता है। ऐसे प्रसंग स्वल्प हैं। ऐसा ही एक पद निम्न लिखित है —

कब के बैठे बिली करत चरण धरत सुम्बर पर सुकुमार किशोर ।
प्रति ही आतुर आतुर अपल धीरज न करत बितबन छिन-छिन
तुम बिबु बदन धोर ।

प्रति जई करि सुबुद्धि किरन तृपित मोहक नम अकोर ।
बी बिहारी बिहारनिवाति पिय प्याह सुपारस जमोधि डरे
तन-भन धानम्ब न खोर ॥

मान क प्रसंग में राधा के उत्तर उनके मान क स्वरूप को बतसानेवासे है। मान-मोचन होने पर राधा कहती है कि यह तो झूठ-भूठ का मान था। तुम ठी मेरे प्रीतम और प्राण हो। तुमसे मान कैसा ?

तब ललित बचन सुनि इपाम के हों मंत्रनि में मुसिकाम ।
व्याकुल बिरह बिलोकि कें प्यारी निते हैं मान धर नाथ ॥
मैं मान कियौ तुम सौं कबै हो कसपि कसपि कित सेत ।
मेरे प्रीतम प्राण हो पिय बीचन तुमहि समेत ॥

मान का यह स्वरूप जग्य संप्रदायों में उपलब्ध नहीं है। मान-मोचन के बाद राधा-कृष्ण का मिलन होता है।

समस्त रूप में इस संप्रदाय में स्वल्प मात्रा में बिरह उपलब्ध है। वह बिरह आर्तकावगम या मानमय है। मान भी बचाने में भीड़ामक है यद्यपि वह कभी-कभी मुझ हो जाता है। इस संप्रदाय में कृष्ण-मठ में बिरह को अधिव्यक्ति है।

निवाक संप्रदाय

निवाक संप्रदाय में राधा-कृष्ण का पति-विली सम्बन्ध है। फिर भी इतने पूर्वराग और प्रवास का अभाव है। बिरह मान और भ्रम का भी यहाँ प्रबल नहीं है। फिर भी स्वल्प मात्रा में बिरह और मान क दुःख का इन संप्रदाय में अका कवियों ने कहे हैं। मान का स्वरूप संभ्रम या प्रसंग-रूप है। गाम भर और नति से यह भंग होता है। इसमें बिरह मुख्य रूप से राधा का है। राधा क बिरह का एक बड़ा ही नीचा-नारा मोहक हृदय-मंदिर और स्पष्ट पयन मन्त्राधीनार ने किया है। अपने बिरह का निवेदन करती हुई राधा बरग गयीं से कहती है मुझे पिय से मिला दो। मेरे प्राण हैं। मैं तैय न्दुन यहमान मानूँगी। मैं प्राणी की सग्रा बब तुमै है। क्या बरु बिना देते मुझ खीन नहीं बड़ता। मेरे,

बिन सनेहु नहि मान, मान बिना न सनेहु कछु ।
 बँसे रस मिष्ठान्न नोन सहित रोचक प्रबिक ॥
 बँसो कहीं सनेहु मान कहीं संसो बने ।
 क्यों बरपे मित मेहु सोय न सुर प्रकाश बिन ॥
 मिमी मान समान पूषत कर भागत कठिन ।
 सब कीबँ रस पान, तय जान रसना सरस ॥

(माधुरीनाथो पृ० ८२)

मान की इस स्वीकृति पर जो इस साहित्य में मान का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। मान का जो प्रयोग उपलब्ध है वह भी गंधम नाम का है जिसमें राधा कृष्ण के बनावस पर अपना प्रतिबिम्ब दर्शकर मान करती है। इस मान का मोक्ष सीमे पद द्वारा प्रतिबिम्ब को मिटा कर किया जाग है। मान के इन प्रयोगों में विरह का विशेष वर्णन नहीं है।

मप्रवास-मुक्त कृष्ण जहाँ में रममान धीन सीमा प्रभूत हैं। इनमें से रम-लान मुक्त संभोग श्रुतार के कवि हैं जिन्होंने नूने नटके ही विप्रलम्भ का वर्णन किया है। उनका अधिकतर विप्रलम्भ-वर्णन पूषराग का है। यह पूर्वराग कृष्ण के वर्णन से उत्पन्न है अथवा उनकी बँसी द्वारा। इनमें रूप का प्रभाव तथा नायिका के विरह का संकेत है। पूषराग का उनका एक ऐसा ही सबसे निम्न मिलित है —

घाह लखी बंद मंदन री, तकि काड़ी है क अनि की परिछाहीं ।
 मँब बिसाल ली कोहन को तर बेमि यनी द्वियरा जिय माहीं ॥
 बापस पूमि पुमार निरी रसपानि संमार राहो तन माहीं ।
 ता पर या मुसकानि की बँड़ी कनी पत्र में धबला दित पाहीं ॥

रसपान में मान का वर्णन कुछ एक पद में ही किया है जिसमें सखी राधा से कृष्ण के विरह का निवेदन कर मान मोक्ष के लिए कहती है।

प्रवास वा रममान ने बयन नहीं किया है। गंधारण गमय के विरह का उन्होंने उल्लेख किया है जिसमें नायिका की विरहाग्नि का संकेत है। इस विरह की अवस्था में जब नायिका कृष्ण के आगलन वा गगनार मुनती है तब आश्रया विषय से उसके तन की प्रतीति प्राप्त पठती है अथवा के रग टूटने समय है मानों किनीके दीये की बानी ही उकसा दी है। —

रसपानि मुयो है बियोग के ताप मसीन महादुति देहु तिया की ।
 बँदज सो मुख दो बुरभ्याइ लगे रापट विरहानि दिया की ॥
 ऐसे में बाबत काहू नूने तुलसी मु तनी तरली बँविया की ।
 यों जन कोति उठी तन की, उतावाइईई मनी बाती दिया की ॥

रसधान में बिरह की कसक को समझने की क्षमता थी, किंतु प्रेम के संयोग पक्ष में ही उनका मन अधिक रमा है।

मीरा

भक्तों में मीरा का स्थान अग्र्यतम है। संभवतः किसी संभवय में बोलिया नहीं थी। इसीलिए उनकी भक्ति-धारा स्वच्छन्द यति से प्रवाहित हुई है। उन्होंने गिरधर सोपान पर लज मन बार दिया है और अपने प्रेम में वे आरम किमोर हैं। उनके इन प्रेम में विप्रलम्ब की तीव्र वेदना और मिसन की चटक भाकांशा है। अग्य भक्त-कवियों के समान उन्होंने कृष्ण की सीमा में सखी रूप के प्रवेश नहीं चाहा है। उन्होंने ठा अरुने कृष्ण को प्रिय रूप में चाहा है। इस तरह ने उनकी भक्ति शब्दे अपों में गोपी भाव की है। इसमें भी वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व रमती है किसीसे उन्होंने तादात्म्य नहीं किया है। इन्हीं कारण उनके काव्य में शब्दी सरस और सरस प्रेमानुभूति है जो अम्यन दुर्लभ है।

मीरा का प्रेम प्रारम्भ से ही बिरहयुक्त है। अपाविध कृष्ण से प्रेम में संयोग के शत्रु स्वल्प और ताजिक ही हो सकते हैं। उसके बाद केवल बिरह ही बिरह बच जाता है और इन्हीं के जीवन भर रहीं। बिरह की यही वेदना छट पटाहट उनके काव्य में सर्वत्र व्यक्त हुई है।

मीरा का प्रेम पूर्णराम से विकसित होता है। यह पूर्वराग रूप-दर्शन से उलान्त हुआ है। कृष्ण की रूप-भाषुपी में मीरा का मन ऐसा अटका है कि उन्होंने उनके पीछे लाल-सज्जा और कुल-कानि आदि सभीका त्याग कर दिया है। मीरा ने इनके गाव-नाथ अपने प्रेम की 'बासावन की प्रीत' और 'जगम-जगम की प्रीत' भी कहा है। इनके अतिरिक्त एक पर में उन्होंने स्वप्न में अवशील से विवाह की चर्चा भी की है।

मीरा के इन प्रेम में बिरह-वेदना बहुत अधिक है। अपने बार-बार प्रिय के जाने प्रेम का और आगी पीड़ा का निवेदन किया है। उनके इस प्रेम-निवेदन में अविनाश विराग मूर्ति गुन-कवन आदि अनेक काम की बधाएँ दिवसाई पकती हैं।

मीरा में गान का पूर्ण समाय है। प्रथम के अनेक उद्देश्य उन्होंने किए हैं। प्रथम में प्रिय-मन सोच कर न जाने क्या अपनी पीड़ा आदि का उल्लेख है। मंगल उत्तारण और पापी का भी कवन मिसला है।

मीरा ने कृष्ण के मयरा मीर झारका दोनों ही प्रयाग का उल्लेख किया है। बहुत प्रयाग के प्रवर्ग में उनका मधुरन जाकर फिर न सीटना बहू की

पियों के प्रेम-सौंद में पँसकर उसे मूल जाने का संकेत किया है। इनमें उपामम है।

मीरों ने द्वारका-प्रवास को लेकर भी काफ़ी कहा है। अन्य मत्तों में इसका ब्यार है। कृष्ण जब तक मथुरा में थे तब तक भिसन की कुछ न कुछ आधा बचप्य थी। उनके द्वारका जाने से तो समस्त आचाएँ दूट गईं। द्वारका प्रस्थान करते समय उन्हें अपने तमाम पावों में से एक का भी प्यान न आया। मीरों का ऐसा सया मानों उसे टाला वे गए। कभी बहु अपन बचपन की प्रीति की याद दिमागी है और कभी प्रिय-विहीन संघकारमय मूढ़ की ओर उनका प्यान आकृष्ट करती है। अपन बचसापन की पुहाई देकर वह अपन स्वामी को बुलाती है। उनका एक ऐसा ही पद निम्नलिखित है —

निबर सर ग्हासो नाम जो हूँ तो बारे चरमा री बासो ।
 मैं प्रबला तुम सबला स्वामो, नहीं भिसपा की टासो रे ।
 फूँक-फूँक पय बहके परबी पर, मति सपास्यी कोई कासो रे ।
 घाप तो आइ द्वारका छाये हम सँ वे गया डासो रे ।
 बासपने को नाम लमहो, प्रीति बचन प्रतिपासो रे ।
 ध्यारि महिना मायो तिपासो ध्यार महिना जगिपासो रे ॥
 कृपा करि मोहि बरसन बीज्यो अब छतु मायो बरसासो रे ।
 सब अप भूरी निदा करत है कौन्हीं मूढ़ी कासो रे ॥
 तरन तुम्हारी सई लीबरा तुम भी दियो छँ ग्हासुँ टासो रे ।
 भूरो घर में भयो घंघेरो मान करो जगिपासो रे ।
 पीरा के प्रभु निरपर नागर, बिहू धगनि अत जासो रे ॥

(मीरों गृह्य पद संग्रह ७२)

प्रिय के प्रथम को अत्यंत कष्टप्रद समानेवासी उनकी कृपा की प्रीति है। मोक्षियों की मति मीरों को भा इसका बड़ा दुःख है। ऐसी प्रीति के कारण ही उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों अमून में तिय घाला जा रहा है। इसीसे वह कहती है कि निर्मोही से प्रीति नहीं जोड़नी चाहिए।

मीरों के बिहू वर्णन में प्रिय-वर्णन की छीज आकारण है। अपनी इन काकीता को वे अनेक प्रकार से व्यक्त करती हैं। कभी वे कहती हैं कि प्रिय के दर्पणों के बिना वेर दुगने मये हूँ तो नहीं प्रिय के न जाने के कारण दर्पणों के लिए तरलनी है। वे बार-बार पुकारकर प्रिय से दर्पण देने की प्रार्थना करती हैं। वे अपनी दर्पण बना का वर्णन बारहमासे में करते-पूछती हैं कि कब होवे। वे अपने अनन्य प्रेम, अपनी कुम-अग्र-रसाय की ओर घीत करती

और अपनी सुधि लेने के लिए कहती है। प्रिय-रूपा की आकांक्षा करते हुए वे बार-बार दर्पण की प्रार्थना करती हैं। उन्हें प्रिय-रूपा का ही भरोसा है।

अपने बिरह का उल्लेख उन्होंने पाती द्वारा किया है। इस पाती में वे अपने बिरह का उल्लेख करती हैं तथा माने का संदेश भेजती हैं। इसके अतिरिक्त वे शृंगार की पाठियों की भी बर्णना करती हैं। वे कहती हैं पाठियों का कीम बिरहास करे। हे हरि आकर तब तो। तुम तो झूठी पाठियाँ निक-सिगाकर भेजते हो उनसे क्या सखा-देना। इतना हाने पर भी वे प्रिय की पाती बार-बार पढ़ती हैं बयासि दिना पड़े मन नहीं मानता है। प्रिय की पाती पढ़कर तो बिरह और भी उद्दीप्त हो उठता है अशु प्रवाहित हान समते हैं, प्रसन्न होता है और पाती पढ़ी नहीं जाती है। इसलिए वे किनीसे पत्र बाँध कर मुताले को कहती हैं।

मीरी ने उपारम द्वारा भी अपने बिरह को व्यक्त किया है। ऐम उपा लोभों में वे कहती हैं बिद्वानपात कर तुम मुझे छोड़ गए। आकर मधुपुरी में रहने लगे। निरौंही मैं तुम्हारी प्रीत जान गई। बढाओ समूत पिसाकर बिय देना किन यौव की रीति है। तुम पाद के निज हो। साध संसाध मुझे लाने देना है और तुम बिदेस में छा गए हो। हे प्रिय तुम सोपियों के बासम हो फिर माग ही बगचारी क्यों बन गए हो? दूगरे प्रकार ने उपारम भ्रमरगीत से मन्दिना है जिनमें शृंगार की मिष्टरत्ना और अपने कुर्वाण्य का कथन है।

मीरी ने अपने पदों में अपने बिरह की वेदना की अभिव्यक्ति बार-बार की है। ऐम पर माया में अपिक और उल्लेखों के हैं। इनमें मन न लवने, दिन रात रोने निरन्तर रात काहने विषम में कापी-करवट लेने प्रकृति के दुःखवादी होने आदि का उल्लेख है। मीरी की इन प्रेम-व्याधि को कोई नहीं समझ पाता है। लीप दबा-दाक संकर दीकते हैं बीच कुसाठे हैं पर वह त्रिष रोप से पीड़ित है वह तो लभी जा सकना है जब कट्टेया बीच बनकर आया। इन सभी बिरह निबन्धों में संयोग की तीव्र कामना है। मीरी अपने पाठे हुए मोहन का उल्लेख करती हैं प्रिय के लिए सख गजाने का कहती हैं और फिर भी जब प्रिय नहीं आता है तो प्रेम न करने की ही नीत देने लगती हैं। मीरी की यह बिरहाभि व्यक्त करनेवालेक करने में दुर् है। यह हिन्दी साहित्य की निधि है।

रमर रम में हिन्दी भक्ति-श्रृंगार में विरमर की अभिव्यक्ति अत्यंत विचित्र रूप में हुई है। इसकी महत्ता का यही प्रमाण है कि प्रिय गजरावों में यैकीक रूप में विरमर को गीति नहीं है उन्होंने भी श्रुतम बिरह की कल्पना द्वारा अपने साहित्य का भी-गजानन किया है। यह विरमर अत्यंत उदात्त रूप में आता है और अपनी रमणीयता में यह अत्यंत है।

उपसंहार

हिन्दी भक्ति-श्रुतार के इस संक्षिप्त अवलोकन से दो-तीन तथ्य सामने आते हैं। सर्वप्रथम जो बात सामने आती है वह भक्ति श्रुतार की अत्यधिक स्वीकृति और महत्त्व है। इसका कारण धर्म और श्रुतार का ऐतिहासिक सम्बन्ध है। धर्म और श्रुतार का सम्बन्ध संसार के सभी धर्मों में प्राप्त है। हिन्दू धर्म में ही इसकी अत्यंत स्पष्ट और पुष्ट परंपरा रही है। धर्म के विकास की जिस पंर परा में भक्ति का अगम हुआ उसमें श्रुतार की स्वीकृति स्वयमेव आ गई। भक्ति-काल में इच्छेय के स्वरूप के कारण यह श्रुतारिकता और भी मिळरी है।

इस श्रुतार के सम्बन्ध में जो दूसरी बात सामने आती है वह है कामशास्त्र का आचार। भक्त-कवियों ने अपने श्रुतार-वर्षन में कामशास्त्र का अतिमा अधिक आचार लिया है उतना अधिक आचार न तो बर्मशास्त्रों का न साहित्य शास्त्र का और न ही भक्ति-साहित्य-शास्त्र का लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तों की कामशास्त्र में बहरी पैठ थी और उन्होंने कृष्ण रामा के श्रुतारिक स्वरूप को कामशास्त्रीय कसौटी पर करा उठारने का प्रयत्न किया है।

इस श्रुतार ने अपनी कथाएँ साहित्यिक एवं लौकिक दोनों परम्पराओं से ग्रहण की हैं। साहित्यिक परम्परा में वैदिक और लौकिक संस्कृत-साहित्य, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य हैं। लौक-साहित्य में जन-समाज में प्रचलित कथाएँ तथा हृद्य के लोक-प्रचलित एवं लोक-वाह्य रूप का ही इसमें चित्रण है। यथार्थ में इस साहित्य में साहित्यिक एवं लोक-तत्वों का ऐसा मधु-मिश्रण योग हुआ है जैसा कि अम्बुध दुर्लभ है।

इस भक्ति श्रुतार की श्रुतारिकता को प्रतीकों द्वारा समझाने का आचार्यों एवं विद्वानों द्वारा प्रयत्न किया गया है। यदि हम भक्त-कवियों की मूल भावनाओं पर ही नृत्तराजात करना नहीं चाहते हैं तो प्रतीकात्मक व्याख्या का यह आग्रह करना अनुचित है। ऐसा प्रतीत होता है कि नायक-नायिका के अलौकिक होने तथा उनकी लीला के अप्राकृत होने में भक्तों का विश्वास है पर इसके आये उनकी समस्त क्रियाएँ, लीलाएँ आदि यथार्थ हैं। वे सचमुच हुई हैं। उनकी आत्मा-व्यत्मा रमा रूप में व्यापना नहीं की जा सकती है। यथार्थ में नायक-नायिका की अलौकिकता मान देने के बाद उनकी लीलाओं का वर्णन पूर्वत लौकिक परछाया पर हुआ है। इसमें प्रतीकात्मकता योजना अनुचित है।

भक्ति-श्रुतार की रचना के समय एक और संस्कृत का रस-शास्त्र पृथक्ता को प्राप्त कर चुका था तो दूसरी ओर बोधिव बौद्धों ने अत्यंत पुरातनापूर्वक श्रुतार रस को अलौकिक रूप से बताया था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि

काल के कवियों ने श्रृंगार के पाश्चीम बल की कवेला करके उसके स्वाभाविक रूप का ही विकास किया है।

भरत-श्रृंगार की बलीलता और बरलीलता का प्रबल बटिल है। नक्तों ने इसकी रचना में उत्कालीन नैतिकता का प्रभाव नहीं रखा ऐसा कहा जा सकता है। पर काम ही साथ यह साहित्य भी सामाज्य जनता के लिए नहीं था। इतना ही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जनका यह सब बरलील साहित्य का निर्माण नहीं था। अपने भावों में बिमोर होकर नक्तों ने जो कुछ भी रचानाएँ की हैं उन्हें नैतिकता की कसौटी पर कसने की न उन्हें इच्छा थी न ही जागरणकता। इसलिए समझ है कि कुछ लीपों को वे बरलील मयें।

इस साहित्य में श्राव्य श्रृंगार अति विद्याम और विविध है। श्रृंगार का प्रामय ही कोई अर्थ इन नक्तों के श्रृंगार है। उनका यह श्रृंगार-वर्चन सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट है।



सहायक ग्रन्थ-सूची

अंग्रेजी

- | | | |
|-----|--|-------------------------|
| 1 | Ancient Symbol Worship | Westropp & Wake. |
| 2 | Bhagvat, its Philosophy its Ethics and its Theology | Bhaktivinode |
| 3 | Bhakti Cult in Ancient India | B K G Shastri. |
| 4 | Chaitanya and his Age | D C Sen |
| 5 | Chaitanya's Pilgrimage and Teaching | Jadunath Sarkar |
| 6 | Collected Papers of Friend | |
| 7 | Critical Study of 'Rasa' in the light of Modern Psychology | C. B. L. Gupta Rakesh' |
| 8 | The Dance of Siva | A Coomaraswamy |
| 9 | Elements of Hindu Iconography | T A Gopinath Rao |
| 10. | Emotions of Mens | F H Lund. |
| 11 | Encyclopaedia of Religion and Ethics | Hasting. |
| 12. | The Evolution of Indian Mysticism | N. S Ramaswami Shastri. |
| 13 | General Introduction to Tantra Philosophy | S N Das Gupta |
| 14 | Hindu Medieval Sculpture | R. Burnier |
| 15 | Hindu Mysticism | M. N Sarkar |
| 16. | Hindu Mysticism | S N Das Gupta |
| 17 | History of Religious Architecture | E. Short |
| 18 | History of Sanskrit Literature | S. N Das Gupta & S. N E |
| 19 | A History of Indian Philosophy | S. N Das Gupta |
| 20 | The Interpretation of Religious Experience | |

- | | | |
|-----|--|----------------------------|
| 21 | An Introduction to Cultural Anthropology | R. H. Lowie
Winterneitz |
| 22. | Indian Literature | F. L. Lucas |
| 23 | Literature and Psychology | E. Underhill |
| 24 | Mysticism | |
| 25 | Mysticism, Freudianism and Scientific Psychology | |
| 26 | Obscure Religious Cults | K. Dunlop. |
| 27 | Phallic Worship | S B Das Gupta |
| 28 | Philosophy of Analogy & Symbolism | G R Scott. |
| 29 | Philosophy in a New Key | S T Cargill. |
| 30. | Principles of Anthropology | S K. Langer |
| 31 | Principles of Tantra | Chapple & Coon. |
| 32 | Psychology and Religion | A. Avalon. |
| 33 | The Psychology of Emotions | C G Jung |
| 34 | Religion and Sex | Ribot. |
| 35 | Sex Symbolism in Religion | C Cohen |
| 36 | Sexual life in Ancient India | J B Hanny |
| 37 | Shakti & Shakta | J J Meyer |
| 38 | Studies in the Psychology of Sex | J Woodroffe. |
| 39 | Studies in the Tantra | H Ellis |
| 40. | Symbolism and Belief | P C Bagchi. |
| 41 | Symbolism | E. Bevan. |
| 42. | Vaisnavism Saivism & other Minor Systems | P Agarwal. |
| 43 | The Varieties of Religious Experience | Bhandarkar |
| 44 | Yuganaddha | W James
H V Guenther |

संस्कृत

- | | | | |
|---|---------------------|---|------------------------|
| १ | भगिन्युत्पत्तय | २ | पद्मिर्दुर्गम्य मंदिता |
| ३ | द्वैतस्य ब्राह्मण | ४ | धर्मस्य ब्राह्मण |
| ५ | वाग्देव महाब्राह्मण | ६ | श्रुत्येव |
| ७ | द्वैतस्य जगत्सिद्ध | ८ | बृहदारण्यक जगत्सिद्ध |

१	सैलिटरीयोपनिषद्	१०	संस्कृतोपनिषद्
११	श्वेतस्वतरुपनिषद्	१२	साटायन श्रौतसूत्र
१३	आत्पावन श्रौतसूत्र	१४	भापस्तम्ब श्रौतसूत्र
१५	भापस्तम्ब गृह्यसूत्र	१६	पापघर गृह्यसूत्र
१७	वास्मीकि रामायण	१८	महाभारत
१८	विष्णुपुराण	२०	पद्मपुराण
२१	भागवतपुराण	२२	ब्रह्मवैवर्त पुराण
२३	नारद भक्तिसूत्र	२४	शांख्य भक्तिसूत्र
२५	साहित्य दर्पण	२६	हरिश्चन्द्र रघुशतसिद्धि
२७	उदयन नीलमणि	२८	बसन्तक
२९	कामसूत्र	३०	घनम रत्न
३१	वीर गोविन्द	३२	षष्ठ शीका भाष्यवत्

हिन्दी

(क) सम्प्रदायित धीय-सर्वत्र

१	हिन्दी साहित्य में भाषिका श्रेष्ठ	डॉ० चक्रेश गुप्त
२	परमानन्द—बीबन और कृति	डॉ० स्वामिगुन्दर शीखिल
३	भक्तिकामीन कृष्ण-काव्य में उभा का स्वल्प	डॉ० इतरकाप्रसाद मीठल
४	स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय और उसका बाणी साहित्य	डॉ० गोपालचन्द्र धर्मा
५	कविचर परमानन्ददास और जनका साहित्य	डॉ० मोक्षद नाराय गुप्त
६	हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि	डॉ० पिरबादीशाल श्यात्री
७	हिन्दी समुदाय काव्य की सांस्कृतिक भूमिका	डॉ० रामनरेश वर्मा

(ख) हस्तलिखित भाषियाँ

- १ श्री रामदासदास सम्प्रदाय के भक्तों की भाषियाँ
- २ टट्टी सम्प्रदाय के पाचार्यों की भाषियाँ
- ३ मुक्त रस की टीका—मो० विठ्ठलनाथ

(ग) मुद्रित ग्रन्थ

१	बबीर दरदाबनी	डॉ० स्वामिगुन्दरदास
२	संत बबीर	डॉ० रामकृष्णार वर्मा
३	बबीर	डॉ० इबारीप्रसाद शिबेरी

४ हिन्दी काव्य में त्रिभुंज सम्प्रदाय

५ संत काव्य

६ ज्ञानपीठ प्रभावली

७ ज्ञानपीठ प्रभावली

८ पद्यावत

९ विद्यावती

१० मधुमासती

११ ईरान के सुफी कवि

१२ तुलसी प्रभावली

१३ तुलसीदास

१४ तुलसी धीर उलक्य मुन

१५ विद्यापति की पद्यावली

१६ सूरदासर

१७ नंददास प्रभावली

१८ बोंदरस्वामी

१९ कुंजनदास

२० परमानन्द दासर

२१ हित बीरासी

२२ व्यासीस सीसा

२३ भक्त-कवि व्यासजी

२४ मुनल दासक

२५ महाबाली

२६ बाबुरी बाली

२७ बल्लभ रतिक की बाली

२८ कैलियाल

२९ मीरां वृहत् पर संघह

३० रत्नमान

३१ मीरां एक सम्पदन

३२ पट्टपात्र धीर बल्लभ सम्प्रदाय

३३ पद्मावली सम्प्रदाय धीर साहित्य

३४ एक शक्ति में रतिक सम्प्रदाय

३५ कानिचरीक

३० पीठान्तरदास बड़प्पाल

परमुधम बहुरेदी

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

३० माताप्रसाद गुप्त

३० बामुरेवधरम प्रप्रवाल

ससमान

संपादक—श्री सरयबीबन बर्मा

मंगल

३० डॉ० शिवबोपाल मिश्र

बकिविहारी

३० माताप्रसाद गुप्त

३० राजपति दीक्षित

बनेन्द्रनाथ मिश्र

काशी नानदी प्रचारिणी समा

समापक शुक्ल

विद्या-विभाष कांकरौसी

विद्या-विभाष कांकरौसी

३० पोबर्द्धनाथ शुक्ल

हितहरिदास

ध्रुवदास

३० बामुरेव गोस्वामी

श्री बट्ट

श्री हरिभ्यासदेवाचार्य

३० बाबा कृष्णदास

३० बाबा कृष्णदास

स्वामी हरिदास

बदनाबती धरनम

३० बन्धुदेव कांठे

पद्मावती धरनम

३० दीनदयामु गुप्त

३० विजयेंद्र स्नातक

३० प्रपक्वतीप्रसाद तिहू

बड़पाल

